Notes

M.A- Political Science

SEMESTER -Ist

Indian Government and Politics -I

Course Code- 24POL201DS02

MA-POLITICAL SCIENCE

SEMESTER -Ist

Indian Government and Politics -I

Course Code- 24POL201DS02

Syllabus & Questions Paper Design

Maximum Marks- 70 Time of Examinations: 3 hours

Note: Examiner will set nine questions and the candidates will be required to attempt five questions in all. Question number one will be compulsory containing short answer type questions from all units. Further, examiner will set two questions from each unit and the candidates will be required to attempt one question from each Unit. All questions will carry equal marks.

Unit 1

National movement, Constitutional Developments, Political Legacies ad the Making of Indian Constitution.

Unit 2

Ideological basis of the Indian Constitution, Preamble, Fundamental Rights & Duties and Directive Principles.

Unit 3

Structure and Process-I : President, Prime Minister, Council of Ministers, Working of the Parliamentary System.

Unit 4

Structure and Process-II : Governor, Chief Minister, Council of Ministers, State Legislature.

Note- *Read Topics According to Syllabus*

UNIT-I

राष्ट्रीय आंदोलन (National Movement)

प्र ० उन घटकों का वर्णन कीजिए जो भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के उद्भव हेतु उत्तरदायी थे। (Describe the factors that led to the emergence of national movement in India.)

अथवा

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन की उत्पत्ति के मुख्य कारणों का विवेचन कीजिए। (Discuss the main causes of the rise of National Movement in India.)

उत्तर- हजारों वर्षों की गुलामी के बाद भारत ने 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त की। इस लंबे काल में भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद का शिकार तो रहा ही, साथ ही विदेशी आक्रमणों का शिकार भी हुआ। कुछ विदेशी आक्रमणकारी इसके आर्थिक स्रोतों को लूटकर वापस चले गए जब कि अन्य ने यहां पर शासन भी किया। अनेक मुस्लिम वंशों के नेतृत्व में यहाँ मुस्लिम शासन स्थापित रहा। बाबर से लेकर बहादुर शाह जफर यहाँ तक मुगलों का शासन रहा। इसी दौरान ब्रिटेन व अन्य यूरोपीयन देशों ने व्यापारी के रूप में यहाँ प्रवेश किया व धीरे-धीरे देश के शासक बन गए।

अन्ततः भारत विभिन्न कारणों से जनता में राजनीतिक चेतना का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप यहाँ राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 1857 के विद्रोह को राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत माना जाता है। देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत केवल किसी एक घटना का परिणाम नहीं थी। बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन एक ऐसे राष्ट्रवाद एवं पुनःजागरण (Renaissance) का परिणाम था, जिसको जन्म देने व विकसित करने में अनेक तत्त्वों व घटनाओं ने योगदान दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन को समझने के लिए आवश्यक है कि उन तत्त्वों व घटनाओं को जानना आवश्यक है, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया।

ये कारण प्रमुख रूप से निम्नलिखित ये-

1. सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पुनःजागरण (Socio, Religious and Cultural Renaissance)-19वीं शताब्दी में भारत में अनेक कारणों से पुनःजागरण हुआ। पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा एवं साहित्य के प्रभाव से भारत के हिन्दू व मुसलमानों ने यह अनुभव करना प्रारम्भ किया कि वे अपने समाज में फैली हुई कुरूतियों व अंधविश्वासों को दूर करें तथा लोगों को शिक्षित कर उनमें वैज्ञानिक सोच व भाईचारा विकसित करें।

निम्नलिखित आन्दोलनों ने हिन्दू व मुसलमान समाज में व्याप्त कुरूतियों, को दूर करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिय

(क) ब्रह्म समाज (Brahm Samaj)-19वीं शताब्दी के प्रमुख समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे-ऊँच-नीच, छुआछूत, जाति प्रथा, अंध-विश्वास, बाल-विवाह तथा सती प्रथा को दूर करते हुए शिक्षा के प्रसार से लोगों में वैज्ञानिक सोच का निर्माण करना था। राजा राममोहन राय के रास्ते में अनेक बाधाएँ आई, किन्तु उन्होंने इनकी परवाह नहीं की। उनके इस अभियान के परिणामस्वरूप तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाया। राजा राममोहन राय अंग्रेजी संस्कृति व अंग्रेजी भाषा के प्रशंसक थे। उन पर बेकन, ब्लैकस्टोन व मोण्टेस्क्यू जैसे प्रसिद्ध अंग्रेजी व फ्रांसीसी विद्वानों का प्रभाव था। वे भारतीय संस्कृति को अंग्रेजी संस्कृति के आधार पर निर्माण करना चाहते थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें भारतीय सांस्कतिक पुनःजागरण का जनक व भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत बताया है।

(ख) आर्य समाज (Arya Samaj) — सन् 1875 में स्वामी दयानन्द ने सामाजिक सुधार के उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना की। स्वामी जी पर वेदों का अत्यधिक प्रभाव था। उन्होंने 'वेदों की ओर लौटो' नारे का उद्घोष किया ।वे जात-पाँत, ऊँच

-नीच व छुआछूत के विरोधी और हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने आर्य समाज के माध्यम से बाल-विवाह, सती प्रथा व हुआछूत को दूर करने का प्रयास किया। वे भारतीय समाज का वैदिक संस्कृति व परम्परा के आधार पर निर्माण करना चाहते थे। वे अन्याय व अत्याचार के भी घोर विरोधी थे। स्वामी दयानंद ने आर्य समाज के आन्दोलन से लोगों में अद्भूत विश्वास व राष्ट्र-प्रेम पैदा किया।

(ग) रामकृष्ण मिशन (Ramkrishna Mission)- स्वामी रामकृष्ण परमहंस भारत की धरती पर जन्मे एक महान् संत थे। उन्होंने पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति का विरोध करते हुए भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति को श्रेष्ठ बताया और देश में ऐसा ही प्रचार किया। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे। उनकी मृत्यु के बाद स्वामी विवेकानन्द ने देश-विदेशी में भ्रमण करके रामकृष्ण मिशन का प्रचार किया। उन्होंने नौजवानों में चरित्र-निर्माण व त्याग की भावना का विकास करने पर बल दिया। उनके इस प्रचार से राष्ट्रवाद व राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नया आधार, बल व दिशा मिली। स्वामी जी कहते थे कि "गर्व से बोलो, मैं भारतवासी हूँ"। स्वामी जी का प्रचार व भाषा अत्यन्त जोशीली व प्रभावकारी होती थी।

(घ) मुस्लिम सुधार आन्दोलन (Muslim Reform Movements)- मुस्लिम समाज में फैली अनेक कुरीतियों को दूर करने के लिए कई सुधारवादी आन्दोलन शुरू किए गए, जिनके परिणामस्वरूप मुसलमानों में भी राष्ट्रवाद की भावना का विकास हुआ व उन्होंने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इन सुधारवादी आन्दोलनों में प्रमुख आन्दोलन थे-

(i) बहावी आन्दोलन (Behavi Movement)- बहावी आन्दोलन के संस्थापक मुहम्मद अब्दुल बहाव थे। बहावी आन्दोलन के नेताओं ने मुस्लिम समाज में फैली हुई कुरूतियों व अशिक्षा को दूर करने का प्रयास किया तथा लोगों को अंग्रेजों की चालों से दूर रहने की सलाह दी। भारत में इस आन्दोलन की अगुवायी बरेली के सैयद अहमद ने की।

(ii) अलीगढ़ आन्दोलन (Aligarh Movement)-अलीगढ़ आन्दोलन का मुस्लिम समाज में सामाजिक आर्थिक सुधार करके राजनीतिक चेतना का विकास करने में अत्यधिक योगदान रहा। इस आन्दोलन का नेतृत्व सर सैयद अहमद खां ने किया। उन्होंने इस्लाम को. एक नई दिशा दी। सैयद अहमद एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने हिन्दू व मुसलमानों को एक राष्ट्रीय सूत्र में बाँधने का कार्य किया। उन्होंने कहा था कि "हिन्दू एवं मुसलमान भारत की दो आँखें हैं।" उनका दृष्टिकोण उदारवादी था।

(iii) अहमदिया आन्दोलन (Ahmadia Movement)- अहमदिया आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में अपना स्थान है। इस आन्दोलन का प्रारंभ मिर्जा गुलाम अहमद ने किया था। डॉ. तारा चन्द ने लिखा है कि 19वीं शताब्दी में, "दोनों अर्थात् हिन्दू व मुसलमानों में सुधार आन्दोलन समान रूप से तीव्र ये।" इस प्रकार हिन्दू व मुसलमान समाजों में चलाए गए समाज सुधारक आन्दोलनों का राष्ट्रीय आन्दोलन की प्राथमिकता पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

आर्थिक कारक (Economic Factors)- जिन आर्थिक कारणों से देश में असंतोष जन्मा, उनमें से प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

2. अंग्रेजों की आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies of Britishers)- अंग्रेजों की प्रारंभ से ही 'फूट डालो व राज करो' की नीति रही। उन्होंने भारत को जाति, धर्म, भाषा व क्षेत्र के आधार पर बाँटा और इसी आधार पर उन्होंने आर्थिक नीतियाँ बनायीं। अंग्रेजों ने मुक्त व्यापार की नीति बनायी, जिससे भारतीयों के हितों की अनदेखी हुई। इस नीति से भारत के घरेलू उद्योगों को भारी नुकसान हुआ। गैरेट के अनुसार, "देश की बिगड़ती आर्थिक स्थिति, राष्ट्र विरोधी आर्थिक नीति तया भारतीयों को उच्च सरकारी पदों से वंचित करने की नीति ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों को अग्रसर तथा राष्ट्रवाद को विकसित किया।"

3. अंग्रेजों की फिजूलखर्ची (Extravagent Expenses of Britishers)- जब भारतीय जनता गरीबी व बेरोजगारी से ग्रस्त थी, तो अग्रेजों की फिजूलखर्ची पर कोई अंकुश नहीं था। बल्कि यह दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी, क्योंकि उनकी पार्टियों का क्रम जारी था। 1877 में लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया, जिसमें देश के राजा-महाराजाओं व नवाबों को आमंत्रित किया। इस आयोजन पर अत्यधिक धन व्यय किया गया, जब कि हजारों भारतीय भुखमरी से ग्रस्त थे।

4. भारतीयों का आर्थिक शोषण (Economic Exploitation of Indians)-वैसे तो अंग्रेजों की गलत आर्थिक नीतियों और पक्षपाती व असम्मानजनक व्यवहार के कारण भारतीय समाज के सभी वर्गों का शोषण हुआ, किन्तु किसान व मजदूर विशेष रूप से शोषित हुए। अंग्रेजों ने नियोजित तरीके से भारतीयों का शोषण किया। कृषि में प्राथमिकताओं व कर नीति से किसान गरीब हो गए। दादाभाई नौरोजी, आर. सी. दत्त, जी.बी. जोशी, एम. जी. रानाडे तथा गोपाल कृष्ण गोखले जैसे अर्थशास्त्रियों ने तत्कालीन आर्थिक स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। भारतीयों के इस आर्थिक शोषण ने देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में उत्प्रेरक का कार्य किया।

राजनीतिक कारक (Political Factors)- सामाजिक एवं आर्थिक कारकों की तरह अनेक राजनीतिक कारकों अथवा घटनाओं ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन के सूत्र-पात्र में उल्लेखनीय भूमिका निभायी। इस प्रकार के कुछ प्रमुख कारक हैं-

5. 1857 का विद्रोह (Revolt of 1857)-1857 के विद्रोह को इतिहासकारों व राजनीतिज्ञों ने कुछ भी नाम दिया हो, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन को दिशा व प्रेरणा देने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। 1857 में एक लम्बे समय में राजनीतिक व आर्थिक रूप से शोषित जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति नफरत व गुस्सा फूट पड़ा, जो आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोल में बदल गया।

6. अंग्रेजों की राजनीति व प्रशासनिक नीतियाँ (Politial And Administrative Policies of Britishers)- अंग्रेजों की राजनीतिक व प्रशासनिक नीतियों इस प्रकार की थीं, जिससे कि भारतीयों को विधान सभाओं, कार्यकारी परिषदों तथा उच्च पदों से वंचित रखा जा सके। इण्डियन सिविल सर्विस (ICS) जैसी उच्च परीक्षाओं के नियम इस प्रकार से तय किए जाते थे, जिससे भारतीय इन परीक्षाओं में हिस्सा न ले सकें। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं अरविन्द घोष ने इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा को उत्तीर्ण किया, किन्तु किसी-न-किसी आधार पर इनको भी इससे अलग रखा गया। इस प्रकार की नीतियों से अग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों में असंतोष बढ़ा।

7. लिटन की दमनकारी नीतियाँ (Repressive Policies of Litton)-लार्ड लिटन नामक साम्राज्यवादी व जिद्दी प्रशासक ने अनेक अविवेकपूर्ण व अत्याचारपूर्ण निर्णय लिए, जिससे भारतीयों में भारी असंतोष बढ़ गया। उसके प्रमुख अविवेकपूर्ण निर्णय थे-

(i) अफगानिस्तान पर आक्रमण (Attack on Afghanistan)

(ii) आर्म्स अधिनियम (Arms Act)

(iii) कपास सीमा शुल्क का अन्त अधिनियम, 1877 (End of Custom Duty on Cotton Act 1875)

(iv) 1875 वर्नाकुयलर प्रेस अधिनियम (Vernacullar Press Act 1875)

8. इलबर्ट विधेयक विवाद, 1883 (Illbert Bill Controversy, 1883)- लार्ड रिपन के कार्यकाल में हुए न्यायिक सुधार के रूप में इलबर्ट बिल विवाद ने भी भारतीयों में असंतोष को जन्म दिया। इस विधेयक का उद्देश्य भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपीयनों के विरुद्ध मुकदमें सुनने का अधिकार प्रदान करना था, किन्तु यह विधेयक कानून नहीं बन पाया।

अन्य कारक (Other Factors)- भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन एक लम्बे समय से चले आ रहे घटना चक्र का परिणाम था, जिसको कुछ कारकों व घटनाओं ने प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया, तो कुछ कारकों ने अप्रत्यक्ष रूप से। ऐसे कुछ कारक व घटनाएँ निम्नलिखित हैं-

9. राजनीति व प्रशासनिक एकता (Political and Administrative Unity)— भारत एक बहु-भाषीय, बहु-जातीय, बहुसांस्कृतिक व बहु-भौगोलिक राज्य था, जो अनेक राजाओं व नवाबों के शासन के अधीन विभिन्न क्षेत्रों में बँटा हुआ था। अंग्रेजों के शासन ने विभाजित भारत में राजनीतिक व प्रशासनिक समरूपता का लाने का कार्य किया, जिससे देश में राजनीतिक एकता स्थापित हुई। अंग्रेजों के एकल शासन में भारतीय अधिकारी व नागरिक एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित हुए और एक-दूसरे के संपर्क में आए और अन्ततः राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बंधे। इसने उन्हें राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों

पर विचार-विमर्श करने का भी अवसर प्रदान किया।

10. अंग्रेजी भाषा का प्रभाव (Impact of English Language)- भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाने के कारण भारतीयों में विचारों का आदान-प्रदान कम था। पूरे भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग से अंग्रेजी भाषा सभी की भाषा बन गई, जिससे सभी क्षेत्रों के लोगों में विचार-विमर्श व विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। अग्रेजी भाषा के प्रयोग से भारतीयों में शैक्षणिक जागरूकता भी बढ़ी, जिससे परिणामस्वरूप समाज में एक बौद्धिक वर्ग (Enlighted Class) का उदय हुआ। इस वर्ग ने समानता, न्याय, राष्ट्रवाद, मानव गरिमा, अधिकार व स्वदेशी जैसी धारणाओं को सही परिपेक्ष में समझा व उसी आधार पर भारतीय समाज और राष्ट्रीय आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया।

11. भारतीय साहित्य व प्रेस का विकास (Development of Indian Literature and Press)- बौद्धिक विकास होने पर भारतीय लोगों ने भारतीय साहित्य के महत्त्व को समझा। इसी कारण भारत में समाचार-पत्रों की शुरुआत हुई, जिससे देश-भक्ति की भावना का विकास हुआ। बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित 'आनन्दमठ' को क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद की गीता कहा गया। 'वन्देमातरम्' आनन्दमठ का ही गीत है। अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होने से भारतीयों ने न केवल अंग्रेजी साहित्य को पढ़ा, बल्कि भारतीय साहित्य के महत्त्व को भी समझा।

भारत में भारतीय साहित्य के पठन-पाठन के साथ-साथ अखबार व प्रेस का भी विकास हुआ, जिससे राष्ट्रीय भावना के विकास में भारी योगदान मिला। 'हिन्दू प्रेट्रियाट', व 'अमृत बाजार पत्रिका' जैसे प्रमुख अखबारों का राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय में उल्लेखनीय योगदान रहा। समाचार पत्रों ने ब्रिटिश सरकार की नीतियों को उजागर किया तथा भारतीय जनता को जागरूक किया।

12. यातायात के साधनों का विकास (Development of Means of Transport)-19वीं शताब्दी में रेल के निर्माण, डाक व्यवस्था के विकास और इस यातायात व संचार के अन्य माध्यमों के विकास ने भारत के सभी क्षेत्रों के लोगों को एक-दूसरे के नजदीक ला दिया और वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सामूहिक तौर पर भाग लेने लगे। तार के प्रयोग से विभिन्न क्षेत्रों के लोगों में संपर्क सरल हो गया। देश में 1861 से 1911 तक लगभग 63000 मील लम्बी तार की लाइन बिछाई गई तथा 2711 तार घरों की स्थापना की गई। डॉ. ताराचन्द के अनुसार, "यातायात एवं संचार व्यवस्था के प्रसार ने भारत की आर्थिक एकता को अग्रसर किया।"

13. विदेशी घटनाएँ (Foreign Events)- जिस समय भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रारंभ हुआ, उस समय विश्व के अनेक भागों में ऐसे आन्दोलन चल रहे थे, जिनसे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को एक प्रेरणा मिली, जैसे-

1. 1789, 1830 व 1848 की क्रान्तियाँ (Revolutions 1789, 1830 and 1848.)

2. 1870 में इटली व जर्मनी की एकीकरण (Unification of Italy and Germany in 1870.)

3. 1904 में जापान के हाथों रूस की पराजय (Defeat of Russia at the Hands of Japan in 1904)

4. 1917 की रूसी क्रान्ति और (Russian Revolution of 1917.)

5. अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विलसन द्वारा प्रतिपादित 14-सूत्री कार्यक्रम (Fourteen-point Programme of American President Woodro Wilson.)

संवैधानिक विकास (Constitutional Development)

प्रश्न — भारतीय संविधान की रचना बनाने में सवैधानिक विकास की व्याख्या कीजिए।

(Discuss the constitutional development leading to the making of the Indian

Constitution.)

अथवा

संवैधानिक विकास तथा भारतीय संविधान के निर्माण के विभिन्न चरणों की व्याख्या कीजिए ।

(Discuss major landmarks in the constitutional developments and making of Indian Constitution.)

(इनमें 1909, 1919, 1935 के अधिनियम महत्वपूर्ण हैं।)

उत्तर- भारतीय संविधान के विकास का प्रारंभ 1773 के रेग्यूलेटिंग अधिनियम और अन्त 1947 के भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम के साथ हुआ माना जाता है। भारतीय संविधान के विकास में योगदान देने वाले प्रमुख अधिनियमों अथवा भारत के संवैधानिक विकास की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है-

1. रेग्युलेटिंग अधिनियम (1773)- इस अधिनियम का अत्यधिक संवैधानिक महत्त्व है, क्योंकि भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यों को नियमित और नियंत्रित करने की दिशा में ब्रिटिश सरकार द्वारा उठाया गया यह पहला कदम था। इसके द्वारा पहली बार ईस्ट इण्डिया कंपनी के प्रशासनिक और राजनीतिक कार्यों को मान्यता मिली थी एवं इसके द्वारा भारत में केन्द्रीय प्रशासन की नींव रखी गयी थी। इस अधिनियम की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ हैं-

(i) इस अधिनियम द्वारा बंगाल के गवर्नर को 'बंगाल का गवर्नर जनरल' पद नाम दिया गया था एवं उसकी सहायता के लिए एक चार-सदस्यीय कार्यकारी परिषद का गठन किया गया था। ऐसे पहले गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स थे।

(ii) इस अधिनियम के द्वारा मद्रास एवं बंबई के गवर्नर, बंगाल के गवर्नर जनरल के अधीन हो गए थे, जब कि इससे पहले सभी प्रेसिडेसियों के गवर्नर एक-दूसरे से अलग थे।

(iii) इस अधिनियम के अंतर्गत कलकत्ता में 1774 में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई, जिसमें मुख्य न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश थे।

(iv) इस अधिनियम के तहत कंपनी के कर्मचारियों को निजी व्यापार करने और भारतीय लोगों से उपहार व रिश्वत लेना प्रतिबंधित कर दिया गया।

(v) इस अधिनियम के द्वारा 'कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स' (कंपनी की गवर्निंग बॉडी) के माध्यम से ब्रिटिश सरकार का ईस्ट इण्डिया कंपनी पर नियंत्रण सशक्त हो गया। इसके द्वारा भारत में कम्पनी के राजस्व, नागरिक और सैन्य मामलों की जानकारी ब्रिटिश सरकार को देना आवश्यक कर दिया गया।

2. पिट्स इंडिया अधिनियम (1784)- रेग्युलेटिंग अधिनियम, 1773 की कमियों को दूर करने के लिए ब्रिटिश संसद ने एक संशोधित अधिनियम, 1781 में पारित किया, जिसे 'एक्ट ऑफ सैटलमेंट' के नाम से भी जाना जाता है। इसके बाद एक अन्य महत्त्वपूर्ण अधिनियम पिट्स इंडिया अधिनियम (1784) अस्तित्व में आया। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ हैं-

(i) इसने ईस्ट इण्डिया कंपनी के राजनीतिक और वाणिज्यिक कार्यों को एक-दूसरे से पृथक कर दिया।

(ii) इसने निदेशक-मंडल को ईस्ट इण्डिया कंपनी के व्यापारिक मामलों के अधीक्षण की अनुमति तो अवश्य दी, लेकिन राजनीतिक मामलों के प्रबंधन के लिए नियंत्रण बोर्ड (बोर्ड ऑफ कंट्रोल) नाम से एक नए निकाय का गठन किया। इस प्रकार इसके द्वारा द्वैध शासन का शुभारंभ किया गया।

(iii) नियंत्रण बोर्ड को यह शक्ति थी कि वह ब्रिटिश नियंत्रित भारत में सभी नागरिक, सैन्य व राजस्व गतिविधियों का अधीक्षण एवं नियंत्रण करे।

यह अधिनियम दो कारणों से महत्त्वपूर्ण था-प्रथम, भारत में कंपनी के अधीन क्षेत्र को पहली बार 'ब्रिटिश आधिपत्य का क्षेत्र कहा गया और द्वितीय, ब्रिटिश सरकार को भारत में कंपनी के कार्यों और इसके प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण प्रदान किया गया।

3. चार्टर अधिनियम (1833)— ब्रिटिश भारत के केन्द्रीयकरण की दिशा में यह अधिनियम निर्णायक कदम था। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) इसने बंगाल के गवर्नर जनरल को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया, जिसमें सभी नागरिक और सैन्य शक्तियां निहित कर दी गईं। इस प्रकार, इस अधिनियम ने पहली बार एक ऐसी सरकार का निर्माण किया, जिसका ब्रिटिश आधिपत्य वाले सम्पूर्ण भारतीय क्षेत्र पर पूर्ण नियंत्रण था। लॉर्ड विलियम बैंटिक भारत के प्रथम गवर्नर जनरल बने।

(ii) इसने मद्रास और बंबई के गवर्नरों को वैधानिक शक्ति से वंचित कर दिया। इसके द्वारा भारत के गवर्नर जनरल को पूरे ब्रिटिश भारत में कानून निर्माण के असीमित अधिकार प्रदान किए गए। इसके अंतर्गत पहले बनाए गए कानूनों को नियामक कानून कहा गया और नए कानून के तहत बने कानूनों को अधिनियम कहा गया।

(iii) ईस्ट इंडिया कंपनी की एक व्यापारिक निकाय के रूप में की जाने वाली गतिविधियों को समाप्त कर दिया गया। अब यह विशुद्ध रूप से प्रशासनिक निकाय बन गई। इसके तहत ईस्ट इण्डिया कंपनी के अधिकार वाले क्षेत्र ब्रिटिश राजशाही और उसके उत्तराधिकारियों के विश्वास के तहत ही कब्जे में रह गए।

(iv) इसने लोक सेवकों के चयन के लिए खुली प्रतियोगिता का आयोजन शुरू करने का प्रयास किया। इसमें कहा गया कि ईस्ट इण्डिया कंपनी में भारतीयों को किसी पद, कार्यालय और रोजगार को हासिल करने से वंचित नहीं किया जाएगा। हालांकि कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के विरोध के कारण इस प्रवधान को. समाप्त कर दिया गया।

4. चार्टर अधिनियम (1853)-1793 से 1853 के दौरान ब्रिटिश संसद द्वारा निर्मित चार्टर अधिनियमों की श्रृंखला में यह अंतिम अधिनियम था। सवैधानिक विकास की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण अधिनियम था। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) इसने पहली बार गवर्नर जनरल की परिषद के वैधानिक एवं प्रशासनिक कार्यों को एक-दूसरे से अलग कर दिया। इसके तहत गवर्नर जनरल की परिषद में छह नए पार्षद और जोड़े गए, जिन्हें विधान पार्षद कहा गया। दूसरे शब्दों में, इसने गर्वनर जनरल के लिए नई विधान परिषद का गठन किया, जिसे भारतीय (केन्द्रीय) विधान परिषद कहा गया। गवर्नर जनरल की परिषद की इस शाखा ने छोटी संसद की तरह कार्य किया। इसमें वहीं प्रक्रियाएं अपनाई गई, जो ब्रिटिश संसद में अपन जाती थीं। इस प्रकार, इस विधान परिषद को पहली बार सरकार के विशेष कार्य के रूप में जान गया, जिसके लिए विशेष मशीनरी और प्रक्रिया की जरूरत थी।

(ii) इसने लोक सेवकों की भर्ती एवं चयन हेतु खुली प्रतियोगिता का शुभांरभ किया। इस प्रकार विशिए लोक सेवा भारतीय नागरिकों के लिए भी खोल दी गई और इसके लिए 1854 में (भारतीय सिसि सेवा के संबंध में) मैकाले समिति की नियुक्ति की गई।

(iii) इसने कंपनी के शासन को विस्तृत कर दिया और भारतीय क्षेत्र को ब्रिटिश राजशाही के विश्वास के तहत कब्जे में रखने का अधिकार दिया। लेकिन पूर्व अधिनियमों के विपरीत, इसमें किलो निश्चित समय का निर्धारण नहीं किया गया था। इससे

स्पष्ट था कि ब्रिटिश संसद द्वारा इंस्ट इण्डिया कंपनी का शासन किसी भी समय समाप्त किया जा सकता था।

(iv) इसने प्रथम बार केन्द्रीय विधान परिषद में स्थानीय प्रतिनिधित्व प्रारंभ किया। गवर्नर जनरल डी परिषद में छह नए सदस्यों में से, चार का चुनाव बंगाल, मद्रास, बंबई और आगरा की स्थानीय प्रांतीय सरकारों द्वारा किया जाना था।

5. भारत सरकार अधिनियम (1858)- इस अधिनियम का निर्माण 1857 के विद्राह के बाद किया गया, जिसे भारत का प्रथम 'स्वतंत्रता संग्राम' या 'सिपाही विद्रोह' भी कहा जाता है। भारत के शासन को उत्तम बनाने वाला अधिनियम नाम से प्रसिद्ध इस अधिनियम ने ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन को समाप्त कर दिया और गवर्नरों, क्षेत्रों और राजस्व संबंधी शक्तियां ब्रिटिश राजशाही को हस्तांतरित कर दीं। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं हैं-

(i) इसके तहत भारत का शासन सीधे महारानी विक्टोरिया के अधीन चला गया। भारत के गवर्नर जनरल का पदनाम बदलकर वायसराय कर दिया गया। वह (वायसराय) भारत में ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि बन गया। इस प्रकार लार्ड कैनिंग भारत के प्रथम वायसराय बने।

(ii) इस अधिनियम ने बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल और कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स समाप्त करके भारत में दैय शासन-प्रणाली समाप्त कर दी।

(iii) इस अधिनियम द्वारा भारत सचिव नामक एक नए पद का सजून किया गया, जिसमें भारतीय प्रशासन पर संपूर्ण नियंत्रण की शक्ति निहित की गई थी। भारत सचिव ब्रिटिश कैबिनेट का सदस्य था और ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी था।

(iv) इसके तहत भारत सचिव की सहायता के लए 15 सदस्यीय परिषद का गठन किया गया, जो एक सलाहकार समिति थी। इस परिषद का अध्यक्ष भारत सचिव को बनाया गया।

(v) इस अधिनियम के तहत भारत सचिव की परिषद का गठन किया गया, जो एक नियमित निकाय थी और जिसे भारत और इंग्लैण्ड में मुकदमा करने का अधिकार था। इस पर भी मुकदमा किया। जा सकता था।

1858 के अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य, प्रशासनिक मशीनरी में सुधार था, जिसके माध्यम से इंग्लैण्ड में भारतीय सरकार का अधीक्षण और उसका नियंत्रण हो सकता है। इसने भारत में प्रचलित शासन-प्रणाली में विशेष परिवर्तन नहीं किया।

6. भारतीय परिषद अधिनियम (1861)-1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार ने अनुभव किया कि भारत में शासन चलाने के लिए भारतीयों का सहयोग लेना आवश्यक है। सहयोग की इस नीति के तहत ब्रिटिश संसद ने, भारतीय परिषद अधिनियम, 1861 पारित किया। भारतीय परिषद अधिनियम 1861, भारतीय संवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अधिनियम था, जिसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(i) इसके द्वारा कानून बनाने की प्रक्रिया में भारतीय प्रतिनिधियों को शामिल करने की शुरुआत हुई। अब वायसराय कुछ भारतीय को विस्तारित विधान परिषद में गैर-सरकारी सदस्यों के रूप में नामांकित कर सकता था। 1862 में लॉर्ड कैनिंग ने तीन भारतीयों बनारस के राजा, पटियाला के महाराजा और सर दिनकर राव को विधान परिषद में मनोनीत किया।

(ii) इस अधिनियम ने मद्रास और बंबई प्रेसिडेंसियों को पुनः वैधानिक शक्तियां देकर विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत की। इस प्रकार इस अधियिम ने रेग्युलेटिंग अधिनियम, 1773 द्वारा शुरू हुई केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति को उलट दिया और 1833 के चार्टर अधिनियम के साथ ही अपने चरम पर पहुंच गया। वैधानिक विकास की इस नीति के कारण 1937 तक प्रांतों को पूर्ण आंतरिक स्वायत्तता प्राप्त हो गई।

(iii) इसके तहत बंगाल, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत और पंजाब में क्रमशः 1862, 1866 और 1897 में विधान परिषदों का गठन हुआ।

(iv) इसने वायसराय को परिषद के कार्य-संचालन के लिए अधिक नियम और आदेश बनाने की शक्तियां प्रदान कीं। इसने लॉर्ड

कैनिंग द्वारा 1859 में प्रारंभ की गई पोर्टफोलियों प्रणाली को भी मान्यता दी। इसके अंतर्गत वायसराय की परिषद का एक सदस्य एक या अधिक सरकारी विभागों का प्रभारी बनाया जा सकता था तथा उसे इस विभाग में परिषद की ओर से अंतिम आदेश पारित करने का अधिकार था।

(v) इसने वायसराय को आपातकाल में बिना परिषद की संस्तुति के अध्यादेश जारी करने के लिए अधिकृत किया। ऐसे अध्यादेश की अवधि मात्र छह माह होती थी।

7. भारतीय परिषद अधिनियम (1892)- यह अधिनियम 1857 की क्रांति के पश्चात् निर्मित एक प्रमुख अधिनियम था। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं-

(i) इसके माध्यम से केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों में अतिरिक्त (गैर-सरकारी) सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई, हालांकि इनमें बहुमत सरकारी सदस्यों का ही रहता था।

(i) इसने विधान परिषदों के कार्यों में वृद्धि कर उन्हें बजट पर बहस करने और कार्यपालिका के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अधिकृत किया।

(iii) इसमें केन्द्रीय विधान परिषद और बंगाल चैंबर्स ऑफ कॉमर्स में गैर-सरकारी सदस्यों के नामांकन के लिए वायसराय की शक्तियों का प्रावधान किया गया। इसके अलावा, प्रांतीय विधान परिषदों में गवर्नर को जिला परिषद, नगरपालिका, विश्वविद्यालय, व्यापार संघ, जमींदारों और चैम्बर ऑफ कामर्स की सिफारिशों पर गैर-सरकारी सदस्यों को नियुक्त करने की शक्ति दी गई।

इस अधिनियम ने केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान परिषदों दोनों में गैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिए एक सीमित और परोक्ष रूप से चुनाव का प्रावधान किया, हालांकि चुनाव शब्द का अधिनियम में प्रयोग नहीं हुआ था। इसे निश्चित निकायों की सिफारिश पर की जाने वाली नामांकन की प्रक्रिया कहा गया।

8. भारत सरकार अधिनियम (1909)- इस अधिनियम को मॉर्ले-मिंटो सुधार के नाम से भी जाना जाता है (उस समय लार्ड मार्ले इंग्लैंड में भारत सचिव थे और लॉर्ड मिंटो भारत में वायसराय थे।) इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं-

(i) इसने केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान परिषदों के आकार में काफी वृद्धि की। केन्द्रीय परिषद की सदस्य संख्या 16 से 60 हो गई। प्रांतीय विधान परिषदों की सदस्य-संख्या एक समान नहीं थी।

(ii) इसने केन्द्रीय विधान परिषद में सरकारी बहुमत को बनाए रखा, लेकिन प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों के बहुमत को अनुमति दी।

(iii) इसने दोनों स्तरों पर विधान परिषदों के कार्यों का दायरा बढ़ाया। उदाहरण के लिए अनुपूरक प्रश्न पूछना, बजट पर संकल्प रखना आदि।

(iv) इस अधिनियम के अंतर्गत पहली बार किसी भारतीय को वायसराय की कार्य कारिणी परिषद के साथ एसोसिएशन बनाने का प्रावधान किया गया। सत्येन्द्र प्रसाद सिन्हा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के प्रथम भारतीय सदस्य बने। उन्हें विधि सदस्य बनाया गया।

(v) इस अधिनियम ने पृथक निर्वाचन के आधार पर मुस्लिमों के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व लागू किया। इसके अंतर्गत मुस्लिम सदस्यों का चुनाव मुस्लिम मतदाता ही कर सकते थे। इस प्रकार इस अधिनियम ने सांप्रदायिकता को वैधानिकता प्रदान की। इस नाते लॉर्ड मिंटो को सांप्रदायिक निर्वाचक के जनक के रूप में जाना गया।

(vi) इसने प्रेसिडेंसी कॉरपोरेशन, चैंबर्स ऑफ कॉमर्स, विश्वविद्यालयों और जमींदारों के लिए अलग प्रतिनिधित्व का प्रावधान भी किया।

9. भारत सरकार अधिनियम (1919)-20 अगस्त, 1917 को ब्रिटिश सरकार ने पहली बार घोषित किया कि उसका उद्देश्य भारत में क्रमिक रूप से उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना है। इस क्रम में भारत शासन अधिनियम, 1919 बनाया गया, जो 1921 से लागू हुआ। इस अधिनियम को माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता है। (माटेग्यू इंग्लैण्ड भारत सचिव थे और चेम्सफोर्ड भारत के वायसराय थे) इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) केन्द्रीय और प्रांतीय विषयों की सूची की पहचान कर एवं इन्हें एक-दूसरे से पृथक् कर राज्यों पर केन्द्रीय नियंत्रण कम किया गया। केन्द्रीय और प्रांतीय विधान परिषदों को, अपनी सूचियों के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया, लेकिन सरकार का ढांचा एकात्मक ही बना रहा।

(ii) इसने प्रांतीय विषयों को पुनः दो भागों में विभक्त किया-हस्तांतरित विषय और आरक्षित विषय। हस्तांतरित विषयों पर गवर्नर का शासन होता था और इस कार्य में वह उन मंत्रियों की सहायता लेता था, जो विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी थे। दूसरी ओर आरक्षित विषयों पर गवर्नर अपनी कार्यकारिणी परिषद की सहायता से शासन करता था, जो विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। शासन की इस व्यवस्था को द्वैध शासन कहा गया, हालांकि यह व्यवस्था काफी हद तक असफल ही रही।

(iii) इस अधिनियम ने पहली बार देश में द्वि-सदनीय विधानपालिका और प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था प्रारंभ की। केन्द्रीय विधान परिषद के दोनों सदनों के बहुसंख्यक सदस्यों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था लागू की गई।

(iv) इसके अनुसार, वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के छह सदस्यों में से (कमांडर-इन-चीफ को छोड़कर) तीन सदस्यों का भारतीय होना आवश्यक किया गया।

(v) इसने सांप्रदायिक आधार पर सिक्खों, भारतीय ईसाईयों, आंग्ल-भारतीयों और यूरोपीयों के लिए भी पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त को विस्तारित कर दिया।

(vi) इस अधिनियम ने संपत्ति, कर या शिक्षा के आधार पर सीमित संख्या में लोगों को मताधिकार प्रदान किया।

(vii) इस अधिनियम ने लंदन में भारत के उच्चायुक्त के कार्यालय का सृजन किया और अब तक भारत सचिव द्वारा किए जा रहे कुछ कार्यों को उच्चायुक्त को स्थानांतरित कर दिया।

(viii) इसके द्वारा एक लोक सेवा आयोग का गठन किया गया। इस प्रकार 1926 में लोक सेवकों की भर्ती के लिए केन्द्रीय लोक सेवा आयोग का गठन किया गया।

(ix) इसने पहली बार केन्द्रीय बजट को राज्यों के बजट से अलग किया और राज्य विधान परिषदों को अपना बजट स्वयं बनाने के लिए अधिकृत किया।

(x) इसके अंतर्गत एक वैधानिक आयोग का गठन किया गया, जिसका कार्य दस वर्ष बाद जांच करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना था।

10. साइमन कमीशन (1927)- ब्रिटिश सरकार ने नवंबर, 1927 में अर्थात् निर्धारित समय से दो वर्ष पूर्व भारत की स्थिति का पता लगाने के लिए सर जॉन साइमन के नेतृत्व में सात-सदस्यीय आयोग के गठन की घोषणा की। इस आयोग के सभी सदस्य ब्रिटिश थे, इसलिए सभी राजनीतिक दलों ने इसका बहिष्कार किया।

इस आयोग ने 1930 में अपनी रिपोर्ट पेश की तथा द्वैध शासन-प्रणाली, राज्यों में सरकारों का विस्तार, ब्रिटिश भारत के संघ की स्थापना एवं सांप्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था को जारी रखने जादि की सिफारिशें कीं। साइमन कमीशन के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ तीन गोल मेज सम्मेलन किए। इन सम्मेलनों में हुयी चर्चा के आधार पर, संवैधानिक सुधारों पर 'श्वेत-पत्र' तैयार किया गया, जिसे विचार के लिए ब्रिटिश

संसद की संयुक्त प्रवर समिति के समक्ष रखा गया। इस समिति की सिफारिशों को कुछ संशोधनों के साथ भारत सरकार अधिनियम, 1935 में शामिल कर दिया गया।

11. साम्प्रदायिक अवार्ड (1932) — ब्रिटिश प्रधान मन्त्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने अगस्त, 1932 में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर एक योजना की घोषणा की, जिसे 'सांप्रदायिक अवार्ड' के नाम से जाना जाता है। इस अवार्ड ने न सिर्फ मुस्लिमों, सिखों, ईसाईयों, यूरोपियनों और आंग्ल-भारतीयों के लिए पृथक निर्वाचक व्यवस्था का विस्तार किया, बल्कि इसको दलितों के लिए भी विस्तारित कर दिया गया। दलितों के लिए अलग निर्वाचन व्यवस्था से गांधी जी बहुत व्यथित हुए और उन्होंने इस अवार्ड में संशोधन के लिए पूना की यरवदा जेल में अनशन प्रारंभ कर दिया। अंततः कांग्रेस नेताओं और दलित नेताओं के बीच एक समझौता हुआ, जिसे पूना समझौते के नाम से जाना जाता है। इसमें संयुक्त हिंदू निर्वाचन व्यवस्था को बनाए रखा गया और दलितों के लिए स्थान भी आरक्षित कर दिए गए।

12. भारत सरकार अधिनियम (1935)- यह अधिनियम भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार के गठन में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। यह एक लंबा और विस्तृत दस्तावेज था, जिसमें 321 धाराएं और 10 अनुसूचियां थीं। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) इसने अखिल भारतीय संघ की स्थापना की, जिसमें राज्य और रियासतों को एक इकाई की तरह माना गया। इस अधिनियम ने केन्द्र और इकाइयों के बीच तीन सूचियों संघीय सूची (59 विषय), राज्य सूची (54 विषय) और समवर्ती सूची (36 विषय) के आधार पर शक्तियों का विभाजन कर दिया। इस अधिनियम के तहत अवशिष्ट शक्तियां वायसराय को दे दी गई। हालांकि यह संघीय व्यवस्था कभी अस्तित्व में नहीं आई, क्योंकि देसी रियासतों ने इसमें शामिल होने से इन्कार कर दिया था।

(ii) इसने प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली समाप्त करते हुए प्रांतीय स्वयात्तता का शुभारंभ किया। राज्यों को अपने दायरे में रह कर स्वायत्त तरीके से तीन पृथक क्षेत्रों में शासन का अधिकार दिया गया। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम ने राज्यों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की अर्थात् गवर्नर के लिए प्रान्तीय विधान परिषदों के लिए उत्तरदायी मंत्रियों की सलाह पर काम करना आवश्यक था। यह व्यवस्था 1937 में शुरू की गई और 1939 में इसे समाप्त कर दिया गया।

(iii) इसने केन्द्र में द्वैध शासन-प्रणाली का शुभारंभ किया, जिसके परिणामस्वरूप संघीय विषयों को स्थानांतरित और आरक्षित वर्गों में विभक्त करना पड़ा। हालांकि यह प्रावधान कभी लागू नहीं हो सका।

(iv) इसने 11 राज्यों में से छह राज्यों में द्वि-सदनीय व्यवस्था प्रारंभ की। इस प्रकार बंगाल, बंबई, मद्रास, बिहार, संयुक्त प्रांत और असम में विधान परिषद् और विधान सभा बन गई। हालांकि इन पर कई प्रकार के प्रतिबंध थे।

(v) इसने दलित जातियों, महिलाओं और मजदूर वर्ग के लिए अलग से निर्वाचन की व्यवस्था करते हुए सांप्रदायिक निर्वाचन व्यवस्था का विस्तार किया।

(vi) इसने भारत शासन अधिनियम, 1858 द्वारा स्थापित भारत परिषद को समाप्त कर दिया। इंग्लैण्ड में भारत सचिव को सलाहकारों की टीम मिल गई।

(vii) इसने मताधिकार का विस्तार किया। इसके तहत लगभग दस प्रतिशत जनसंख्या को मत का अधिकार मिल गया।

(viii) इसके अंतर्गत देश की मुद्रा और साख पर नियंत्रण के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। (ix) इसने न केवल संघीय लोक सेवा आयोग की स्थापना की, बल्कि प्रांतीय लोक सेवा आयोगों और दो या अधिक राज्यों के लिए संयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थापना भी की।

(x) इसके तहत 1937 में संघीय न्यायालय की स्थापना हुई। . 13 भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (1947)-20 फरवरी 1947 को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री क्लीमेंट एटली ने घोषणा की कि 30 जून, 1947 को भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाएगा और सत्ता उत्तरदायी भारतीय हाथों में सौंप दी जाएगी। इस घोषणा पर मुस्लिम लीग ने आन्दोलन छेड़ दिया और भारत के

विभाजन की बात कही। 3 जून, 1947 को ब्रिटिश सरकार ने फिर स्पष्ट किया कि 1946 में गठित संविधान सभा द्वारा बनाया। गया संविधान उन क्षेत्रों में लागू नहीं होगा, जो इसे स्वीकार नहीं करेंगे। उसी दिन 3 जून 1947 को वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन ने विभाजन की योजना पेश की, जिसे 'माउंटबेटन योजना' कहा जाता है। इस योजना को कब्रिस और मुस्लिम लीग ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 बनाकर उसे लागू कर दिया गया। भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, 1947 की मुख्य विशेषताएं हैं-

(i) इसने भारत में ब्रिटिश राज समाप्त करके 15 अगस्त, 1947 को इसे स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र घोषित कर दिया।

(ii) इसने भारत का विभाजन करके दो स्वतन्त्र डोमिनयनों भारत और पाकिस्तान का सृजन किया, जिन्हें ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग होने की स्वतंत्रता दी गई।

(iii) इसने वायसराय का पद समाप्त कर दिया और इसके स्थान पर दोनों डोमिनयन राज्यों में गवर्नर जनरल के पद का सृजन किया। गवर्नर जनरलों की नियुक्ति नए राज्यों की कैबिनेट की सिफारिश पर ब्रिटेन के ताज को करनी था। इन पर ब्रिटेन की सरकार का कोई नियंत्रण नहीं होना था।

(iv) इसने दोनों डोमिनयन राज्यों की संविधान सभाओं को अपने-अपने देश का संविधान बनाने और इसके लिए किसी भी देश के संविधान को अपनाने की शक्ति दी। संविधान सभाओं को यह भी शक्ति दी गई कि वे किसी भी ब्रिटिश कानून को समाप्त करने के लिए कानून बना सकती थीं, यहां तक कि इन्हें स्वतंत्रता अधिनियम को भी निरस्त करने का अधिकार था।

(v) इसने दोनों डोमिनयन राज्यों की संविधान सभाओं को यह शक्ति प्रदान की कि वे नए संविधान के निर्माण एवं कार्यान्वित होने तक अपने-अपने सम्बन्धित क्षेत्रों के लिए विधान सभा बना सकती हैं। 15 अगस्त, 1947 के बाद ब्रिटिश संसद द्वारा निर्मित कोई भी कानून दोनों डोमिनियन पर तब तक लागू नहीं होगा, जब तक कि दोनों डोमिनियन इस कानून को मानने के लिए कानून नहीं बना लेंगे।

(vi) इस अधिनियम ने ब्रिटेन में भारत सचिव का पद समाप्त कर दिया। इसकी सभी शक्तियां राष्ट्रमंडत मामलों के राज्य सचिव को स्थानांतरित कर दी गई।

(vii) इसने 15 अगस्त, 1947 से भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश संप्रभुता की समाप्ति की भी घोषणा की। इसके साथ ही आदिवासी क्षेत्रों पर ब्रिटिश हस्तक्षेप समाप्त हो गया।

(viii) इसने भारतीय रियासतों को इस बात की स्वतन्त्रता दी वे चाहें तो भारत डोमिनियन के साथ मिल जाएँ या पाकिस्तान डोमिनियय के साथ या फिर स्वतन्त्र बनी रह सकती हैं।

(ix) इसने नए संविधान बनने तक दोनों डोमिनियनों के शासन-संचालन करने व भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत् इनके प्रांतों में शासन-संचालन की व्यवस्था की। वैसे दोनों डोमिनियन इस अधिनियम में सुधार कर सकते थे।

(x) इसने ब्रिटिश शासकों को विधेयकों पर मतदान और उन्हें स्वीकृत करने के अधिकार से वंचित कर दिया। लेकिन ब्रिटिश शासकों के नाम पर गवर्नर जनरल किसी विधेयक को स्वीकार कर सकते थे।

(xi) इसके तहत भारत के गवर्नर जनरल व प्रान्तों के गवर्नरों को अपने-अपने क्षेत्राधिकार में संवैधानिक प्रमुख नियुक्त किया गया। इस नाते इन्हें सभी मामलों में अपनी-अपनी मन्त्रि-परिषद के परामर्श से कार्य करना था।

(xii) इसने भारत के राज्य सचिव द्वारा लोक सेवकों के लिए नियुक्ति करने और पदों का आरक्षण करने की व्यवस्था समाप्त कर दी। 15 अगस्त, 1947 से पहले नियुक्त लोक सेवकों को वही सुविधाएँ मिलने की व्यवस्था की गई, जो उन्हें पहले से मिलती आ रही थीं।

इस अधिनियम के लागू होने पर भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त हो गया और समस्त शासन-शक्तियों दोनों नव-स्वतन्त्र

डोमिनियनों को सौंप दी गईं। साथ ही 1946 में गठित संविधान सभा को भारत की संसद के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक लंबी संवैधानिक प्रक्रिया की उपज है। इसको वर्तमान रूप प्रदान करने में समय-समय ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियमों का उल्लेखनीय योगदान रहा है।

प्र०— भारतीय संविधान 1935 के अधिनियम का गौरवपूर्ण संस्करण है। व्याख्या कीजिए। (The Indian Constitution is a glorified edition of 1935 Act. Explain.)

अथवा

भारतीय संविधान 1935 के एक्ट की प्रतिलिपि है। टिप्पणी कीजिए। (The Indian Constitution is a carbon copy of the act of 1935. Comment.)(Imp)

उत्तर- भारत के संविधान का अधिकांश भाग भारत सरकार अधिनियम, 1935 पर आधारित है। इस विषय में राबर्ट एल. हार्डग्रेब का मत है कि, "भारतीय संविधान के 395 अनुच्छेदों में से लगभग 250 अनुच्छेद ऐसे हैं, जो 1935 के अधिनियम से या तो शब्दशः लिए गए हैं या फिर उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया है।" हार्डग्रेव की तरह, डॉ. डी.डी. बसु की भी धारणा है कि भारतीय संविधान का 75 प्रतिशत भाग, अनुभवों पर आधारित किन्हीं संशोधनों सहित, भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 से लिया गया है। निःसंदेह भारतीय संविधान की भाषा, विषय-सूची एवं आकार पर 1935 के इस अधिनियम का बहुत अधिक प्रभाव है। इसीलिए भारतीय संविधान को भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 की प्रतिलिपि (Carbon Copy) कहा गया है। यह तथ्य भारतीय संविधान की निम्नलिखित व्यवस्थाओं से स्पष्ट है-

1. एक लम्बा-लेख (A Lengthy Document)- भारत सरकार अधिनियम, 1935 एक बहुत लम्बा लेख था। ब्रिटिश संसद द्वारा 1773 के रेग्यूलेटिंग अधिनियम से लेकर तब तक जितने भी अधिनियम बनाए गए थे, यह अधिनियम उन सभी से लम्बा लेख था। इसमें 321 धाराएं तथा 10 अनुसूचियां थीं, जिन्हें लगभग 450 पृष्ठों में लिखा गया था। इस अधिनियम के बहुत अधिक विस्तृत होने का मुख्य कारण यह था कि इसमें केन्द्र सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों दोनों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया था। इसके अतिरिक्त, इसमें भारत संघ के संचालन में संरक्षणों तथा रक्षाकवचों (Reservations and Safeguards) का भी विस्तार से वर्णन किया गया था। भारतीय संविधान भी एक विस्तृत प्रलेख है, जो 22 भागों में विभक्त है। इसमें 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ शामिल हैं।

2. केन्द्र में द्वैध शासन (Dyarchy at the Centre)-1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली को समाप्त करके इसे केन्द्र में लागू कर दिया गया था। केन्द्रीय विषयों को आरक्षित (Reserved) तथा हस्तांतरित (Transferred) वर्गों में बांट दिया गया था। प्रतिरक्षा, विदेशी मामले तथा धार्मिक मामले आदि आरक्षित विषय रखे गए, जिनका प्रबन्ध गवर्नर जनरल अपनी कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों की सहायता से करता था। ये सदस्य भारत सचिव के द्वारा नियुक्त किए जाते थे और केन्द्रीय विधान परिषद् के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। हस्तांतरित विषयों का प्रबन्ध गवर्नर जनरल मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों के परामर्श पर करता था। ये मन्त्री विधानमण्डल से लिए जाते थे और वे विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी थे।

इस अधिनियम द्वारा आंशिक उत्तरदायित्व की जो व्यवस्था लागू थी, उसे भारतीय संविधान में पूर्ण उत्तरदावी व्यवस्था में बदल दिया गया।

3. विधानमण्डल के सदस्यों की संख्या तथा मताधिकार का विस्तार (Increase in the Number of Members of Legislative Councils and the Voters)-1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार केन्द्र तथा प्रान्तों की विधान परिषदों की संख्या में वृद्धि की गई। संघीय विधान सभा के सदस्यों की संख्या 144 से बढ़ाकर 375 तथा राज्य विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या 60 से बढ़ाकर 260 कर दी गई। भारतीय संविधान में लोक सभा की सदस्य संख्या 550 और राज्य सभा की 250 है, जो इस अधिनियम में वर्णित केन्द्रीय विधान परिषद् की संख्या से काफी मिलती-जुलती है।

4. अखिल भारतीय संघ (All India Federation)-1935 के अधिनियम द्वारा भारत में ब्रिटिश प्रान्तों तथा देशी रियासतों को मिलाकर एक संघ की स्थापना करने की व्यवस्था की गई थी। यह संघ ब्रिटिश (गवर्नर) प्रान्तों, चीफ कमिश्नर प्रान्तों तथा ऐसी देशी रियासतों से मिलकर बनता था, जो अपनी इच्छानुसार संघ में शामिल होने के लिए तैयार हो गए थे। इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश प्रान्तों के लिए संघ में शामिल होना अनिवार्य था, किन्तु देशी रियासतों के लिए यह ऐच्छिक था। भारतीय संविधान में भी भारत को राज्यों संघ (Union of States) घोषित किया है, जिसमें वर्तमान में 29 राज्य और सात संघीय क्षेत्र शामिल हैं। का

5. शक्तियों का विभाजन (Division of Powers)-1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार केन्द्र व प्रान्तों के बीच शक्तियों के विभाजन की व्यवस्था की व्यवस्था की गई थी। शासन सम्बन्धी विषयों को तीन सूचियों में बाँट दिया गया-संघ सूची (Union List) प्रान्तीय सूची (Provincial List) तथा समवर्ती सूची (Concurrent List)। संघ सूची में 54 विषय थे, जिनमें सेना, विदेशी मामले, मुद्रा तथा डाक व तार प्रमुख थे। प्रान्तीय सूची (Provincial List) में 59 विषय शामिल थे, जिनमें शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य तथा न्याय प्रबन्ध आदि थे। समवर्ती सूची में 36 विषय थे, जिनमें विकह-तलाक तथा उत्तराधिकार आदि प्रमुख थे। संघीय सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र को, प्रान्तीय सूची में दिए गए विषयों पर प्रान्तों को तथा समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र व प्रान्तों दोनों को कानून बनाने का अधिकार था। भारतीय संविधान में भी समस्त विषयों में तीन सूचियों-संघ सूची, राज्य सूची व समवर्ती सूची में रखा गया है। संघ सूची में 97 विषय, राज्य सूची में 66 विषय तथा समवर्ती सूची में 47 विषय शामिल हैं। संघ सूची में दिए गए विषयों पर केन्द्र को, राज्य सूची में दिए गए विषयों पर राज्यों को और समवर्ती सूची में दिए गए विषयों पर दोनों को कानून-निर्माण की शक्ति दी गई है। अन्य शब्दों में, 1935 के भारतीय सरकार अधिनियम की तरह, भारतीय संविधान के तहत राज्यों की तुलना में केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है।

6. गवर्नर जनरल तथा प्रान्तीय गवर्नरों के विशेषाधिकार (Special Powers of Governor General And provincical Governors)-1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल तथा प्रान्तीय गवर्नरों को विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गए थे, जिससे कि वे अपने स्वविवेक (Discretion) से कार्य कर सकते थे। इन अधिकारों के कारण केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों पर बहुत सीमाएं लगाई गई। गवर्नरों जनरल व प्रान्तों के गर्वनरों को मंत्रियों के परामर्श के विरुद्ध कार्य करने तथा उनके कार्यों में हस्तक्षेप करने की शक्तियाँ प्राप्त थीं। भारतीय संविधान में राज्यपाल को स्व-विवेकी शक्तियां दी गई हैं, जिनका प्रयोग वह स्वयं करता है।

7. संघीय न्यायालय की स्थापना (Establishment of Ferderal Court)-1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा भारत में एक संघीय न्यायालय की स्थापना की व्यवस्था की गई थी। इस न्यायालय को केन्द्र तथा प्रान्तों के झगड़ों को निपटारा करने तथा इस अधिनियम की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया था। भारतीय संविधान में भी सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई है। यह भी केन्द्र व राज्यों के मध्य विवादों का निपटारा व संविधान की व्याख्या करने का कार्य करता है।

8. द्वि-सदनीय विधानपालिका (Bi-cameral Legislature)-1935 के भारतीय सरकार अधिनियम की तरह भारत के संविधान में द्वि-सदनीय विधानपालिका की व्यवस्था को अपनाया गया है। वर्तमान संविधान के अंतर्गत संसद के दो सदन-लोक सभा व राज्य सभा-हैं और राज्य विधानमण्डलों के भी दो सदन-विधान सभा और विधान परिषद-हैं, किन्तु सभी राज्यों ने द्वि-सदनीय व्यवस्था को नहीं अपना रखा है।

9. संकटकाल की व्यवस्था (Provision for Emergency) - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू करने की जो व्यवस्था की गई है, वह व्यवस्था भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 के अनुच्छेद 93 में मौजूद थी। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 352 में राष्ट्रपति की जिन संकटकालीन शक्तियों का उल्लेख किया गया है, उनका वर्णन भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 के अनुच्छेद 10 में किया गया था।

10. केन्द्र व राज्यों के मध्य प्रशासनिक सम्बन्ध (Administrative Relations between Centre and States) - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 256 में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार से करेगा, जिससे कि संसद द्वारा निर्मित कानूनों का निश्चित रूप से पालन हो और संघ की कार्यपालिका को इस संबंध

में समुचित निर्देश देने का भी अधिकार होगा। इसी प्रकार की व्यवस्था भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 के अनुच्छेद 126 में की गई थी। केन्द्र तथा राज्य के कानूनों में विरोध की स्थिति से निपटने की भारतीय संविधान के अनुच्छेद 251 में जो व्यवस्था की गई है, वह भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुच्छेद 107 से मिलती-जुलती है।

11. विशिष्ट वर्गों के लिए संरक्षण (Safeguards for Certain Categories) - भारतीय सरकार अधिनियम, 1935 की तरह भारतीय संविधान में कुछ विशिष्ट वर्गों के लिए संरक्षणों (Safe guards) की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 29 अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि व संस्कृति बनाए रखने का अधिकार व अनुच्छेद 30 अपनी शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार देता है।

राजनीतिक विरासतें [Political Legacies]

1. भारतीय संविधान की ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विरासत की व्याख्या कीजिए। (Explain the historical, political and cultural legacy of Indian Constitution.)

अथवा

भारत की राजनीतिक विरासतों का उल्लेख कीजिए। (Describe the Political Legacies of India.)

अथवा

मोरिस जोन्स द्वारा भारत के शासन तया राजनीति की किन विरासतों का वर्णन किया गया है? (Which Legacies of Indian Government and Politics have been described by Morris Jones ?)

अथवा

भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की विरासतों की विवेचना कीजिए। (Discuss the legacies of British imperialism in India.)

उत्तर. -भारत की राजनीतिक विरासतों को मुख्य रूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है-

1. प्राचीन भारत की देन (Legacy of Ancient India)

2. मुस्लिम युग की देन (Legacy of Muslim Period)

3. ब्रिटिश युग की देन (Legacy of British Period)

1. प्राचीन भारत की देन (Legacy of Ancient India)-प्राचीन भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण देन समाज को चार वर्गों में बंटा होना था, मूल रूप से यह विभाजन कर्म के आधार पर था, न कि जन्म के आधार पर, परन्तु धीरे-धीरे जाति-व्यवस्था कठोर होती चली गई। आज की भारतीय राजनीति में जातिवाद का बहुत प्रभाव है। कई शताब्दियों तक उच्च जातियों निम्न जातियों के साथ दुर्व्यवहार करती रहीं तथा उसका शोषण करती रहीं, परन्तु अब निम्न जातियाँ, उच्च जातियों में मिल जाने की कोशिश कर रही हैं और उच्च जातियाँ इसका विरोध कर रही हैं। निम्न जातियों की संख्या बहुत होने के कारण उसका राजनीतिक महत्त्व बहुत बढ़ा है। सभी राजनीतिक दल चुनावों में उनका समर्थन प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, जिसके कारण उन्हें उभरने का मौका मिला है।

2. मुस्लिम युग की देन (Legacy of Muslim Period)-मुस्लिम युग की भी भारतीय राजनीति को महत्त्वपूर्ण देन है। मुस्लिम युग की कई विशेषताएँ अंग्रेज़ी शासन में लाई गईं जो आज भी मौजूद हैं। मुस्लिम युग में लगान (मालगुजारी) वसूल करने के तीन आधार थे- क्षेत्र के माप के आधार पर, किस वस्तु का उत्पादन होता है तथा भूमि कितनी उपजाऊ है। अंग्रेजों ने भी इन तीनों आधारों को अपनाया और आज भी इन्हीं को माना जाता है। मुगलों के शासनकाल में शासन के तीन केन्द्र थे- केन्द्र, प्रान्त तथा जिला। आज भी शासन की यही तीन इकाइयों हैं।

3. ब्रिटिश युग की देन (Legacy of British Period)-स्वतंत्रता प्राप्त करने पर भारत को सबसे महत्त्वपूर्ण देन ब्रिटिश युग की विरासतें हैं। अंग्रेज, जो भारत में व्यापारी बनकर आए थे और यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए थे, सन् 1947 में भारत को छोड़कर गए, तो भारत को अनेक विरासतें दे गए। प्रो० मोरिस जोन्स (Prof. Morris Jones) ने अपनी पुस्तक "भारतीय शासन और राजनीति" (The Government and Politics of India) में बताया है कि सन् 1947 में ब्रिटेन से स्वतन्त्रता प्राप्त करते समय भारत को अंग्रेज़ों से विरासत में क्या मिला। भारत को ब्रिटिश शासन से मिली मुख्य विरासतें निम्नलिखित हैं-

1. राजनीतिक एकता (Political Unity)-भारत को ब्रिटिश शासन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन एकीकृत भारत (Unified India) था। अपने शासन काल में अंग्रेजों ने भारतीय उप-महाद्वीप के सभी प्रदेशों व क्षेत्रों को एक केन्द्रीय दरकार के अधीन ला दिया था। जितना बड़ा क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल रहा, उतना कभी भी किसी हिन्दू अथवा मुसलमान राजा के अधीन नहीं था। रियासतों के ऊपर ब्रिटिश अधिराजसत्ता (British Paramountcy) थी। समस्त भारतीय साम्राज्य का शासन-केन्द्र दिल्ली था और प्रभुसत्ता का निवास ब्रिटिश सम्राट तथा संसद में था ताकि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक समान कानून लागू किया जा सके।

2. सरकार (शासन व्यवस्था) (Government) — ब्रिटिश शासन काल की दूसरी महत्त्वपूर्ण देन भारत की आधुनिक शासन-व्यवस्था है। विदेशी शासकों ने सम्पूर्ण भारत के लिए एक केन्द्रीय प्रशासन तथा विभिन्न प्रदेशों में एक जैसी शासन-व्यवस्था कायम की। इतने बड़े प्रशासन-तन्त्र को चलाने के लिए भारतीय सिविल सर्विस, प्रान्तीय तथा अधीनस्थ सेवाओं (Subordinate Services) का विकास हुआ। इन सेवाओं की प्रमुख विशेषता इनकी कार्य-कुशलता थी। जब अंग्रेज शासक भारत से गए, वे देश में एक सुदृढ़ प्रशासन-तन्त्र छोड़ गए, जिसे स्वतन्त्र भारत में कुछ थोड़े-से संशोधित रूप में जारी रखा गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S) काफी हद तक 'इण्डियन सिविल सर्विस' (I.C.S.) के नमूने पर ही गठित की गई है। निःसन्देह स्वतन्त्रत भारत के लिए ब्रिटिश विरासतों में भारतीय सिविल सर्विस सबसे अधिक मूल्यवान है।"

अंग्रेजों ने सभी प्रान्तों को जिलों में तथा जिलों को तहसीलों (Tehsils) में बांटा था। प्रत्येक तहसील में कई गाँव होते थे और गाँव में पटवारी सरकार का प्रतिनिधित्व करते थे। इसी प्रशासनिक ढाँचे को स्वतन्त्र भारत में भी अपनाया गया है।

2. आन्दोलन (Movement)- भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए ब्रिटिश शासन की दूसरी प्रमुख देन, राष्ट्रीय आन्दोलन है, जो भारतीयों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए चलाया।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को निम्नलिखित विरासतें प्राप्त हैं-

(i) अखिल भारतीय दृष्टिकोण का विकास वास्तव में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का ही परिणाम है। प्रारंभ में भले ही राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप क्षेत्रीय रहा हो, किन्तु आगे चलकर इसका स्वरूप राष्ट्रीय हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन ने अखिल भारतीय दृष्टिकोण का विकास किया।

(ii) राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान मध्मय वर्ग का न केवल विकास हुआ, बल्कि मध्यम वर्ग ने पूरे समाज को नेतृत्व भी प्रदान किया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने आम व खास व्यक्तियों के बीच की दूरी को कम किया।

(iii) गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान प्रयोग किए गए स्वदेशी, सत्याग्रह व बहिष्कार के साधनों ने भारतीयों को सरकार की गलत नीतियों का विरोध करने की ट्रेनिंग दी। आज ये साधन एक विरासत के रूप में प्रयोग किए जा रहे हैं। आज स्वतन्त्र भारत में जनता इन तरीकों का प्रयोग, सरकार की गलत नीतियों का विरोध करने के लिए करती है।

(iv) दलीय प्रणाली का विकास भी एक प्रकार से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की एक विरासत है, क्योंकि कांग्रेस का एक राजनीतिक दल के रूप में विकास राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में ही हुआ। कांग्रेस ने राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में ही एक प्रकार से प्रशासनिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लिया था, जिसका लाभ इसे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद प्राप्त हुआ।

(v) सरकार व राजनीतिक दलों के बीच सम्बन्ध का आधार भी राष्ट्रीय आन्दोलन से प्राप्त हुआ।

3. मध्यस्थता करने वाली संस्थाएँ (Mediating Institutions)- मोरिस जोन्स के अनुसार ब्रिटिश युग की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन मध्यस्थता करने वाली (बिचौलिया) संस्थाएँ हैं। मोरिस जोन्स ने इन संस्थाओं में डाक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, इंजीनियरों आदि को शामिल किया है। इस वर्ग के लोगों को महत्त्वपूर्ण इसलिये पाया गया है क्योंकि इनमें लगभग सभी भारतीय थे। उनमें से बहुत सरकारी नौकरियां करते थे और कांग्रेस को भी इन्हीं वर्गों ने नेतृत्त्व प्रदान किया था। उनका कहना

है कि ब्रिटिश सरकार और राष्ट्रीय आन्दोलन ये दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ थीं और उनके बीच संवाद (Dialogue) अथवा सम्पर्क स्थापित करने की जिम्मेवारी इन वर्गों के लोगों की थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ उनकी पूरी सहानुभूति थी, परन्तु उसका व्यवसाय इस प्रकार का था कि उनका अंग्रेजी शासकों के साथ भी सम्पर्क बना रहता था, अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी कानून, अंग्रेजी इतिहास तथा अंग्रेजी मूल्यों (English values) से उनका विशेष लगाव था, उनमें भी सबसे अधिक महत्त्व वकीलों का था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भी यह वर्ग राजनीति में बहुत प्रभावशाली रहा है।

इन वर्गों के अतिरिक्त मोरिस जोन्स (Moris Jones) ने दो अन्य विचौलिया संस्थाओं (Mediating Institution) का वर्णन किया है। वे हैं-

(i) विधानसभाएं तथा विधानपरिषदें (Legislative Assemblies and Legislative Councils), (ii) कानून की प्रणाली तथा न्यायपालिका (System of Law and Judiciary)।

(i) विधानसभाएँ तथा विधानपरिषदें (Legislative Assemblies and Legislative Councils)-विधानसभाओं तथा परिषदों में सरकार तथा आन्दोलन दोनों के नेता मिलते थे, आपस में विचार-विमर्श करते थे तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेते थे। इससे दोनों पक्षों को महत्त्वपूर्ण अनुभव प्राप्त हुआ।

(ii) कानून तथा न्याय-व्यवस्था- भारत की न्याय-व्यवस्था का स्वरूप अंग्रेजी शासन द्वारा ही निर्धारित हुआ था और यह व्यवस्था बहुत हद तक ब्रिटिश व्यवस्था से मिलती-जुली थी। ब्रिटिश साम्राज्य कानून (Common Law) के अनेक सिद्धान्त भारत में ज्यों-के-त्यों लागू कर दिए गए। उन दिनों न्यायालयों में अंग्रेजी भाषा का जो दबदबा था, वह आज तक भी बना हुआ है। इंग्लैण्ड की भाँति भारत में भी न्याय-प्रक्रिया, बहुत उलझी हुई जटिल है। गवाहों (Witnesses) सम्बन्धी नियम इतने पेचीदे तथा तकनीकी हैं, कि मुकदमे सालों तक लम्बे खिंचे चले जाते हैं। न्यायाधीशों की मई-जून के महीनों में गर्मी की छुट्टियों की व्यवस्था भी ब्रिटिश शासन काल की देन है।

4. समस्याएँ तथा आशाएँ (Problems and Promises) - ब्रिटिश युग से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को विरासत के रूप में कुछ समस्याएँ व कुछ आशाएँ भी मिली हैं, जैसे-

1. योजनाबद्ध विकास, सरकारी क्षेत्र का विकास, स्थानीय संस्थाओं का विकास व लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया।

2. देशी रियासतों की समस्या भी ब्रिटिश युग की देन है। इससे निपटने के लिए भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया।

3. वर्तमान संविधान का आधार नेहरू रिपोर्ट व भारत सरकार अधिनियम, 1935 प्रमुख रूप से हैं।

4. दलीय व्यवस्था ब्रिटिश युग की विरासत है।

5. भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता, भाषावाद व क्षेत्रवाद की समस्याएं भी ब्रिटिश युग की देन हैं। मॉरिस जोन्स के अनुसार उपर्युक्त विशेषताएँ, ब्रिटिश युग की भारतीय राजनीति में प्रमुख विरासतें हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के तत्त्वों की जड़ें ब्रिटिश युग की व्यवस्था से जुड़ी हैं।

भारतीय संविधान का निर्माण (Making of Indian Constitution)

1. संविधान सभा बनाने की क्या पृष्ठभूमि थी? इसके कार्य की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। (Discuss the background of the formulation of the Constituent Assembly of India. Discuss critically its working.)

अथवा

उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनमें कि संविधान सभा बनी और इसने काम किया। संविधान सभा की रचना का भी वर्णन कीजिए।

(Describe the circumstances under which the Constituent Assembly came into being and worked. Also explain its composition.)

उत्तर-

संविधान सभा का अर्थ (Meaning of Constituent Assmbly)- संविधान सभा का सिद्धान्त दुनिया की महान क्रान्तियों का योगदान है। 17 वीं एवं 18वीं शताब्दियों की लोकतांत्रिक क्रान्तियों ने इस विचार को जन्म दिया कि शासन के मौलिक कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक प्रतिनिधि सभा द्वारा होना चाहिए।

संविधान सभा उस सभा को कहते हैं, जो किसी देश के संविधान का निर्माण करती है। यह किसी राज्य के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का एक संगठन होता है।

संविधान सभा की माँग (Demand for the Constituent Assembly)— सबसे पहले 1922 में महात्मा गाँधी ने भारत के लिए एक संविधान सभा की माँग की। 1935 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने बड़े जोर से संविधान सभा की स्थापना के लिए प्रस्ताव पास किया। 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस माँग को दोहराया तथा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी हुई एक ऐसी संविधान सभा का विचार प्रस्तुत किया, जो बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के स्वतंत्र भारत का संविधान बनाए। मोहम्मद अली जिन्नाह ने दिसम्बर, 1939 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की इस माँग का विरोध किया। उनका यह विचार था कि ऐसी संविधान सभा भारत के अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिए कुछ नहीं कर सकेगी, क्योंकि ऐसी संविधान सभा कांग्रेस का (जिसको वे केवल हिन्दुओं का संगठन समझते थे) एक और बड़ा रूप होगी। 1940 में मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के बहुसंख्यक क्षेत्रों के लिए पृथक् संविधान सभा की माँग की। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि संविधान सभा की स्थापना के विषय में मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण आरम्भ से ही अलग था।

मार्च, 1940 में लाहौर के अपने वार्षिक अधिवेशन में मुस्लिग लीग ने पाकिस्तान की स्थापना को अपना राजनीतिक लक्ष्य घोषित किया। 1940 के लाहौर अधिवेशन के पश्चात् मुस्लिम लीग भी संविधान सभा की स्थापना के बारे में सहमत हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1940 में देश के दो बड़े राजनीतिक दलों ने संविधान सभा के विचार को स्वीकार कर लिया, जिसका अभिप्राय: यह हुआ कि देश में संविधान का निर्माण केवल संविधान सभा द्वारा ही हो सकता है।

संविधान सभा की माँग की स्वीकृति (Acceptance of the Demand for the Constituen! Assembly)-द्वितीय विश्व युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी सरकार काफी प्रयास कर रही थी। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसे भारतीयों के सहयोग की आवश्यकता थी। अत: अंग्रेजी सरकार ने अपनी इच्छा के खिलाफ जाकर भारतीय जनता की इस माँग को स्वीकार करने का मन बनाया। 1940 में सरकार ने अगस्त प्रस्ताव के द्वारा यह स्पष्ट किया कि द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद वह एक समिति गठित करेगी, जिसमें भारतीय जनता के सभी वर्गों के प्रतिनिधि शामिल होंगे। यह समिति भारत के संविधान की रूप रेखा तैयार करेगी और इस कार्य में अधिक से अधिक सहायता देगी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जब जापान भारत की तरफ बढ़ रहा था, तो 11 मार्च, 1942 को भारत की संवैधानिक समस्या को

सुलझाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने मंत्रिमंडल के सदस्य सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। उसने सम्राट् की तरफ से यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीयों को अपना संविधान बनाने की आज्ञा दे दी जाएगी और इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाएगा।

15 मार्च, 1946 को ब्रिटिश प्रधान मंत्री सर एटली ने ब्रिटिश कामन सभा में अपने भाषण में यह स्वीकार कर लिया कि भारतवासियों को अपना संविधान बनाने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इस लक्ष्य हेतु उसने अपने मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों का एक दल भारत भेजा। इस दल ने 16 मई, 1946 को एक योजना प्रस्तुत की, जो '**कैबिनेट मिशन योजना**' (Cabinet Mission Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इस मिशन ने भारतीय लोगों की अपने संविधान बनाने की माँग को स्वीकार करते हुए एक संवैधानिक सभा की स्थापना करने की सिफारिश की। इस मिशन की सिफारिश पर भारत का संविधान बनाने के लिए संविधान सभा की स्थापना की गई।

संविधान सभा की रचना (Composition of the Constituent Assembly)- 24 मार्च, 1946 को कैबिनेट मिशन दिल्ली पहुँचा और 16 मई, 1946 को इस मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित की। इसने संविधान सभा के गठन के बारे में निम्नलिखित सिफारिशें कीं-

(i) इस संविधान सभा में 389 सदस्य होंगे, जिनमें 292 ब्रिटिश प्रान्तों के प्रतिनिधि, चार चीफ कमिश्नर क्षेत्रों के प्रतिनिधि और 93 देशी रियासतों के प्रतिनिधि होंगे।

(ii) प्रान्तों के प्रतिनिधियों के लिए जनसंख्या को आधार बनाना होगा और 10 लाख व्यक्तियों पर एक प्रतिनिधि होगा।

(iii) प्रतिनिधियों को चुनने के लिए प्रान्तों में स्थित जनसंख्या को तीन श्रेणियों सामान्य, मुसलमान और सिख में बाँटा जाएगा।

(iv) जनसंख्या के आधार पर विभिन्न प्रान्तों के लिए निर्धारित स्थान इन तीनों श्रेणियों में इनकी जनसंख्या के अनुपात में विभक्त किए जाएँगे।

इस प्रकार, ब्रिटिश प्रान्तों से संविधान सभा में चुनकर आने वाले कुल 292 सदस्यों की, मतदाताओं की तीनों श्रेणियों के आधार पर जो संख्या तय हुई, उसमें सामान्य सदस्यों की संख्या 210, मुस्लिम सदस्यों की संख्या 78 और सिख सदस्यों की संख्या चार रखी गई।

कैबिनेट मिशन योजना के अन्तर्गत जुलाई, 1946 में संविधान सभा के चुनाव हुए, जिसमें ब्रिटिश प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों ने साम्प्रदायिक आधार पर मतदान किया। मुस्लिम लीग ने चुनावों में भाग लिया और उसने 78 मुस्लिम सीटों में से 73 सीटों पर जीत हासिल की। इन चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। वह 210 सामान्य सीटों में से 199 सीटों पर विजयी रही। शेष 11 सीटों पर निर्दलीय व अन्य राजनीतिक दलों के उम्मीदवार सफल रहे। अपनी स्थिति को परखकर मुस्लिम लीग ने संविधान सभा के बहिष्कार का निश्चय किया और वह 9 दिसम्बर, 1946 को इसके प्रथम अधिवेशन में शामिल नहीं हुई।

अब मुस्लिम लीग पाकिस्तान के लिए अलग संविधान सभा की माँग पर अडिग हो गयी। देश के विभाजन के बाद संविधान सभा में ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की सदस्य-संख्या 232 रह गई, जिनमें सामान्य सदस्य 197, मुस्लिम सदस्य 31 और सिख सदस्य चार थे। संविधान सभा के प्रथम अधिवेशन में 289 में से केवल 210 सदस्य उपस्थित थे। डॉ. सच्चिदानन्द सिन्हा को संविधान सभा का अस्थायी अध्यक्ष चुना गया। 11 दिसम्बर, 1946 को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान सभा का स्थायी अध्यक्ष चुना गया। सर बी. एन. राव संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बनाए गए।

उद्देश्य-सम्बन्धी प्रस्ताव (Objective Resolution)-13 दिसम्बर, 1946 को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने संविधान सभा के समक्ष अपना उद्देश्य-प्रस्ताव प्रस्तुत किया। 19 दिसम्बर तक इस पर विचार-विमर्श हुआ। इसे संविधान सभा ने 22 दिसम्बर, 1947 को सर्वसम्मति से पारित कर दिया।

इस उद्देश्य-प्रस्ताव में निम्नलिखित बातें शामिल थीं-

(i) भारत एक पूर्ण एवं प्रभुत्वसम्पन्न गणराज्य होगा। इसे स्वयं अपने संविधान का निर्माण करना होगा।

(ii) ब्रिटिश भारत के क्षेत्र, भारतीय रियासतों के क्षेत्र एवं इन दोनों से बाहर के क्षेत्र जो भारत में सम्मिलित होना चाहते हैं, सभी को मिलाकर एक संघ का निर्माण किया जाएगा।

(iii) संघ के अन्तर्गत आने वाले सभी क्षेत्र स्वायत्तशासी इकाई होंगे, जिनकी सीमाओं का निर्धारण संविधान के द्वारा होगा।

(iv) संघ अथवा राज्यों की समस्त शक्ति का स्रोत भारत की जनता होगी।

(v) राजनीतिक न्याय, पद, अवसर एवं कानूनों की समता, विचार, भाषण-अभिव्यक्ति, व्यवसाय, संघ निर्माण और कार्य की स्वतंत्रता कानून और सामाजिक नैतिकता के अधीन प्रदान की जाएगी।

(vi) अल्पसंख्यक वर्गों, पिछड़ी जातियों एवं अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा की समुचित व्यवस्था की जाएगी।

(vii) भारत राज्य-क्षेत्र की भूमि, जल एवं वायु पर इसकी अखण्डता की रक्षा का प्रबन्ध किया जाएगा।

(viii) भारत विश्व शान्ति और मानव कल्याण के लिए हमेशा कोशिश करेगा।

संविधान सभा की समितियों का गठन (Formation of Committees of the Constituent Assembly)-उद्देश्य-प्रस्ताव को 22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा की स्वीकृति मिल जाने के बाद संविधान-निर्माण का कार्य शुरू हुआ। उद्देश्य प्रस्ताव पारित होने के बाद संविधान के विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया, जैसे- संघीय शक्तियों की समिति, संघीय संविधान समिति, प्रान्तीय संविधान-सम्बन्धी समिति, अल्पसंख्यकों एवं मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित सलाहकार समिति तथा संघ एवं राज्यों की वित्तीय सम्बन्धों की समिति। इन समितियों की रिपोटों के आधार पर सर बी.एन. राव ने संविधान की रूप-रेखा तैयार की।

मसौदा समिति का गठन (Formation of Drafting Committee)-29 अगस्त, 1948 के संविधान सभा ने अपने पाँचवें अधिवेशन के दौरान एक मसौदा समिति का गठन किया। इस समिति में निम्नलिखित सात सदस्य थे।

(i) डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

(ii) श्री के. एम. मुन्शी

(iii) श्री आलादी कृष्णास्वामी अय्यर

(iv) सैय्यद मुहम्मद सादुल्ला

(v) श्री गोपाल स्वामी आयंगर

(vi) श्री बी. आर. मित्तर

(vii) श्री डी. पी. खैतान

मसौदा समिति की प्रथम बैठक के बाद बी. आर मित्तर इसमें भाग न ले सके, क्योंकि उनको संविधान सभा की सदस्यता समाप्त हो गई थी। उनके स्थान पर 5 दिसम्बर, 1947 को एन. माधव राय को नियुक्त किया गया।

5 फरवरी, 1947 को खेतान की मृत्यु हो जाने पर टी. टी. कृष्णामाचारी को मसौदा समिति का सदस्य बनाया गया। मसौदा समिति ने अपनी प्रथम बैठक में ही डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को सर्वसम्मति से अपना अध्यक्ष चुन लिया।

संविधान सभा में नेतृत्व की भूमिका (Role of Leadership in the Constitueni Assembly) - संविधान सभा में पंडित जवाहर लाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, के. एम. मुंशी, गोपालस्वामी आयंगर, अल्तादी कृष्णास्वामी अय्यर, पट्टाभि सीतारमैया, श्रीमती दुर्गाबाई, ठाकुर दास भार्गव, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद का योगदान उल्लेखनीय रहा। संविधान सभा में संवैधानिक वाद-विवादों में सदस्यों द्वारा भाग लेने के बावजूद भी यह एक तथ्य है कि संविधान-निर्माण से सम्बन्धित अधिकतर कार्य लगभग 50 व्यक्तियों ने ही किया। इनमें भी 12 से कम लोगों ने मजबूत नेतृत्व प्रदान किया और महत्त्वपूर्ण फैसले लिए।

संविधान सभा का दर्जा (Status of the Constituent Assembly)- जब 1946 में संविधान सभा की स्थापना की गई थी, तो तब वह एक प्रभुसत्तासम्पन्न संस्था नहीं थी, किन्तु 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के पारित होने के पश्चात् यह पूरी तरह से प्रभुसत्तासम्पन्न संस्था बन गई।

संविधान सभा की समीक्षा (Criticism of Constituent Assembly)-2 वर्ष, 11 माह और 18 दिनों तक कठिन परिश्रम के उपरान्त स्वतंत्र भारत के लिए संविधान का निर्माण हुआ, लेकिन आलोचकों की नजर में संविधान सभा के संगठन और क्रियाकलाप के तरीके दोषपूर्ण थे। इनके अनुसार इसमें निम्नलिखित दोष थे-

(i) संविधान सभा का गठन सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था और इसने कांग्रेस का वर्चस्व था। आलोचकों का यह कहना गलत है, क्योंकि इसको सभी वर्गों, जातियों, राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व हासिल था।

(ii) संविधान-निर्माण की प्रक्रिया दोषपूर्ण थी, क्योंकि इसमें विधि-विशेषज्ञों की बातों को ही सुना जाता था, अन्य लोगों की बातों को नहीं। संविधान निर्माण में नेहरू, पटेल और अम्बेडकर की ही प्रमुख भूमिका रही, आलोचकों की इस बात में सत्य का अंश है।

(iii) भारतीय संविधान को जन-समर्थन प्राप्त नहीं था, क्योंकि न तो संविधान सभा का गठन प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा हुआ था और न इस सभा द्वारा निर्मित संविधान को जनमत संग्रह द्वारा अनुसमर्थित कराया गया था। आलोचकों की यह बात कुछ हद तक ठीक है।

(iv) आलोचकों का यह भी कहना कि भारतीय संविधान को कांग्रेस द्वारा देश पर थोप दिया गया था, जो कि उचित नहीं था।

अतः यही कहा जा सकता है कि संविधान सभा में सभी वर्गों, हितों, और दलों के प्रतिनिधि रखे गए थे। इसमें कांग्रेस पार्टी का बहुमत अवश्य था, लेकिन देश के हितों के प्रति इसके सदस्य काफी सचेत थे। यह बात भी काफी सटीक है कि यदि संविधान पर जनमत संग्रह कराया जाता, तो वह और अधिक लोकप्रिय हो जाता।

निष्कर्ष (Conclusion) - भारत की संविधान सभा की आलोचना करना निराधार है, क्योंकि जिन हालातों से तब देश गुजर रहा था, उनमें संविधान सभा का गठन होना ही एक बहुत बड़ी बात थी। देसी रियासतों को साथ में लेने के लिए उनको प्रतिनिधित्व देना भी आवश्यक था, जो मनोनयन (Nomination) के अतिरिक्त संभव नहीं था। इसे कांग्रेसी संस्था कहना भी उपयुक्त नहीं है, क्योंकि उस समय अधिकतर भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने वाली केवल कांग्रेस ही थी।

प्र० भारतीय संविधान के निर्माण में संविधान सभा द्वारा अपनाए गए सहमति तथा समायोजन के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

(Describe the principle of "Consensus and Accommodation" as adopted by the Constituent Assembly in framing the Indian Constitution.)

अथवा

क्या आप इस बात से सहमत हैं कि संविधान सभा ने भारतीय संविधान बनाते समय सर्वसम्मति तया समझौते के तरीके को अपनाया?

(Do you agree with the view that the Constitutional Assembly, while framing the Indian Constitution, followed the process of Consensus and Accommodation?)

उत्तर- भारतीय संविधान सभा के सदस्य ऐसे संविधान का निर्माण करना चाहते थे, जो व्यावहारिक हो। वैचारिक मतभेदों के बावजूद संविधान सभा में निर्णय लेते समय सदस्यों में न तो गम्भीर मतभेद देखने को मिले और न ही निर्णय लेते समय किसी विषय पर मतदान की नौबत आई। वास्तव में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेते समय सर्वसम्मति तथा समझौते की प्रक्रिया अपनाई गई। ग्रेनविल ऑस्टिन का भी विचार है कि संविधान सभा का दृष्टिकोण तीन सिद्धान्तों पर आधारित था। ये सिद्धान्त थे-सर्वसम्मति, समझौता तथा परिवर्तन के साथ चयन (Selection with Modification)

उपर्युक्त सिद्धान्त पूर्ण रूप से भारतीय हैं। ग्रेनविल आस्टिन ने इन की उत्तम माना है। इन का क्रम से उल्लेख इस प्रकार है-

1. सर्वसम्मति का सिद्धान्त (Principle of Consensus)- इसका अर्थ यह है कि सभी फैसले एक मत (unanimity) अथवा लगभग एक मत से लिए जाएँ। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सदस्यों से कहा था, "आप जल्दबाजी न करें और यवासम्भव एक राय से फैसला करें।" इसी कारण संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद बहस रोककर समझौते के लिए समय दिया करते थे, ताकि किसी सदस्य पर कोई फैसला न थोपा जाए। इन नेताओं का पूर्ण विश्वास था कि बहुमत के आधार पर लिए गए फैसलों से बना संविधान चिरस्थायी नहीं होगा। इसलिए बहुमत की जीत की प्रवृत्ति अपनाते हुए भी किसी सदस्य को यह अनुभव नहीं होने दिया गया कि उसके सुझाव का निरादर किया जा रहा है।

सर्वसम्मति से फैसला लेने के तरीके को सरल बनाने के लिए संविधान सभा के कांग्रेसी सदस्यों की बैठकें हुआ करती थीं, जिनमें संविधान-सम्बन्धी प्रत्येक प्रश्न पर खुलकर विचार होता था।

संविधान सभा में सर्वसम्मति से फैसले लिए जाने के मुख्य उदाहरण हैं-संविधान की प्रस्तावना, संसद का संगठन, भाषायी प्रावधान और संघीय व्यवस्था, जिनका उल्लेख इस प्रकार है-

(i) संविधान की प्रस्तावना (Preamble to Constitution)-संविधान सभा ने प्रस्तावना और उद्देश्य प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार किया।

(ii) संसद का गठन (Organisation of Parliament)-संसद के संगठन, कार्यों एवं शक्तियों पर खुले रूप से विचार किया गया और अन्त में सर्वसम्मति से फैसला लिया गया।

(iii) भाषा संबंधी व्यवस्था (Arrangment Related to Language)-भाषा से संबंधित प्रावधान भी सर्वसम्मति से लिए फैसलों का महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। भाषा की समस्या का ऐसा समाधान खोजने की कोशिश की गई, जिसे सभी सामान्य रूप से स्वीकार कर लें और यह कोशिश तीन वर्षों तक जारी रही। संविधान सभा की अन्तिम बैठक के प्रारम्भ में इसके अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था कि वह भाषायी प्रावधानों को मतदान के लिए नहीं रखेंगे; क्योंकि यदि कोई फैसला सम्पूर्ण देश को स्वीकार न हुआ, तो उसको लागू करना कठिन होगा। लम्बे वाद-विवाद के बाद भाषा की समस्या पर फैसला लिया गया।

(iv) संघीय व्यवस्था (Federal Set-up)-संविधान सभा ने भारत की संघीय व्यवस्था पर फरवरी, 1947 में विचार-विमर्श करना प्रारम्भ किया और नवम्बर, 1949 तक इस पर विचार-विमर्श होता रहा। संघीय व्यवस्था से संबंधित प्रावधानों को इस प्रकार निश्चित करना था, जिससे कि संघ के प्रतिनिधियों और प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों को सन्तुष्ट किया जा सके। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश की गई कि न तो कोई प्रान्त संघ से अलग हो सके और न ही संघ को उसे संघ में बनाए रखने के लिए दमन शक्ति का प्रयोग करना पड़े। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'संघीय शक्तियाँ समिति' (Union Powers

Committee) तथा 'प्रान्तीय संविधान समिति' (Provincial Constitution Committee) में प्रान्तों के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को शामिल किया गया।

2. समायोजन का सिद्धान्त (Principle of Accommodation)-समायोजन अथवा समझौते से हमारा तात्पर्य ऐसे दो सिद्धान्तों को मिलाने से है, जो भारतवासियों को और विशेषतः यूरोपियन व अमेरिकी पर्यवेक्षकों को विरोधी दिखाई देते हों। निम्नलिखित बातों के बारे में समयोजन का सिद्धान्त अपनाया गया-

(i) राष्ट्रमंडल की सदस्यता (Membership of Commonwealth of Nations)-1946 में संविधान सभा ने भारत को गणतन्त्र (Republic) बनाने का निश्चय किया और उसने 1949 में भारत को राष्ट्रमंडल का सदस्य बनाए रखने का फैसला भी लिया। राष्ट्रमंडल का अध्यक्ष ब्रिटिश सम्राट् होता है। इस प्रकार भारत ऐसा पहला देश था, जिसने गणतन्त्र व गणतन्त्र विरोधी व्यवस्थाओं में मेल स्थापित किया।

(ii) संघात्मक एवं एकात्मक तत्त्वों का समन्वय (Accommodation of Federal and Unitary Elements)- भारतीय संविधान सभा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उसने संघात्मक प्रणाली का एकात्मक प्रणाली के साथ समन्वय किया। भारत में सामान्यतः संघीय प्रणाली की सरकार है, किन्तु संविधान संघात्मक राज्य को एकात्मक राज्य में परिवर्तित होने के लिए समर्थ बनाता है। ऐसा संकटकाल में संघ द्वारा राज्यों की शक्तियाँ ग्रहण करके किया जाता है।

(iii) केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीयकरण के बीच तालमेल (Harmony between Centralisation and Decentralisation) -संविधान सभा के कुछ सदस्य पंचायती राज के समर्थक थे, जब कि कुछ शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में थे। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद तथा कुछ अन्य सदस्य पंचायती राज व्यवस्था को अपनाने का समर्थन करते थे। दूसरी ओर पं. जवाहर लाल नेहरू तथा संविधान सभा के अधिकांश सदस्य शक्तिशाली केन्द्र सरकार के पक्ष में थे और वे वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा संसद की स्थापना करना चाहते थे। अन्त में समायोजन के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए शक्तिशाली केन्द्र और पंचायती राज व्यवस्था के बीच समन्वय किया गया। संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों में पंचायती राज की स्थापना की बात कही गई।

(iv) मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)-मौलिक अधिकारों की व्यवस्था के बारे में भी दो परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण पाए जाते थे। पहले दृष्टिकोण के अनुसार संविधान में जितने भी अधिकार सम्भव हो सकें, शामिल किए जाने चाहिएं। दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार मौलिक अधिकारों की श्रेणी में कुछ मुख्य एवं अति आवश्यक अधिकार ही रखे जाने चाहिएं। बहुत विचार-विमर्श के बाद बीच का मार्ग निकाला गया, जो वास्तव में श्रेष्ठ मार्ग था।

(v) राष्ट्रपति का चुनाव (Election of the President)- राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में संविधान सभा में काफी वाद-विवाद हुआ। संविधान सभा के कुछ सदस्य राष्ट्रपति का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा कराना चाहते थे, लेकिन कुछ सदस्य इस मत से सहमत नहीं थे, क्योंकि वे संसद के सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव कराने के पक्ष में थे। अन्त में दोनों विचारधाराओं वाले सदस्यों में तालमेल किया गया और यह निश्चित किया गया कि राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचक मंडल के द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें लोक सभा, राज्य सभा एवं प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्य सम्मिलित होंगे।

(vi) समाजवाद (Socialism)-प्रो. के. टी. शाह ने भारत को एक समाजवादी संघ घोषित करने की माँग की थी, लेकिन ऐसा करना उस समय सम्भव न था। फिर भी, उनके समाजवाद के विचार की अपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। अन्ततः राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत कुछ समाजवादी तत्त्वों की व्यवस्था की गई।

(vii) विदेशी संविधानों का प्रभाव (Impact of Foreign Constitutions)-समायोजन के सिद्धान्त के आधार पर विश्व के अनेक संविधानों की विभिन्न व्यवस्थाओं को भारतीय संविधान में अपनाया गया, जैसे-ब्रिटेन के संविधान से संसदीय प्रणाली तथा अमेरिका के संविधान से संघात्मक व्यवस्था को अपनाया गया।

3. परिवर्तन के साथ चयन की कला (Art of Selection with Modification) - संविधान बनाने का कार्य परिवर्तन के

साथ चयन की कला के आधार पर किया गया। संविधान निर्माता ने विदेशी संविधानों की अच्छी में प्रयुक्त विशेषताओं में आवश्यक परिवर्तन करके भारतीय संविधान में शामिल करने का प्रयास किया। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि विदेशी संविधानों से जो भी कुछ प्राप्त किया, बहुत अध्ययन के बाद ही किया और सभी व्यवस्थाओं को भारत की परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लिया गया। इसी कारण इसको अच्छा एवं संविधान की विशेषता बताया जा सकता है।

सर्वसम्मति व समझौते के सिद्धान्तों की सफलता के कारण (Reason for the Success of the Principle of Consensus and Accommodation)- सर्वसम्मति एवं समझौते के सिद्धान्त की सफलता के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण थे। हम इनका उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं-

1. कांग्रेस पार्टी का बहुमत (Majority of Congress Party)— संविधान सभा में कांग्रेस के सदस्यों की संख्या इतनी अधिक थी कि ग्रेनविल आस्टिन ने भी कह डाला कि, "एक दलीय देश में संविधान सभा एक दलीय संस्था थी।" प्रारंभ में संविधान सभा में कांग्रेस को 69 प्रतिशत स्थान प्राप्त हुए थे, किन्तु देश के विभाजन के बाद यह संख्या 82 प्रतिशत हो गई थी। अपने वर्ग के हितों की सुरक्षा के लिए मुस्लिम लीग के सदस्य भी कांग्रेस के साथ थे, क्योंकि वे कांग्रेस के सहयोग से ही मुस्लिम हितों की रक्षा कर सकते थे। ऐसी स्थिति में संविधान-संबंधी मामलों पर कांग्रेस की बैठकों में पूर्ण विचार-विमर्श कर लिया जाता था और वहाँ लिए गए फैसले संविधान सभा में प्रायः स्वीकार कर लिए जाते थे।

2. प्रमुख कांग्रेस नेताओं की भूमिका (Role of Leading Congressmen)— संविधान सभा में चार व्यक्तियों का विशेष प्रभाव था। ये चार व्यक्ति थे-पंडित नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद एवं मौलाना आजाद। ये चारों नेता कांग्रेस कार्यकारिणी परिषद के सदस्य थे। इनके फैसले समिति के फैसले ही माने जाते थे। संविधान सभा में आठ समितियों का गठन किया गया था, जिनमें से मसौदा समिति को छोड़कर शेष अन्य समितियों की अध्यक्षता का दायित्व नेहरू, पटेल या आजाद को सौंपा गया था। संविधान सभा में इस प्रक्रिया की सफलता का कारण इन व्यक्तियों के व्यक्तित्त्व का प्रभाव ही था।

3. विरोधी दल का अभाव (Absence of Opposition)-भारत के बँटवारे तक पूर्व मुस्लिम लीग एक सशक्त विरोधी दल की भूमिका निभाती थी। लेकिन देश के विभाजन के बाद उसकी स्थिति बहुत कमजोर पड़ गई थी। संविधान सभा में इसके मात्र 28 सदस्य कांग्रेस के सहयोग से ही अपने हितों की रक्षा कर सकते थे। सिक्ख प्रतिनिधि पहले से ही कांग्रेस के साथ थे। बाकी राजनीतिक दलों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त न था। देशी रियासतों के नरेश भी आपस में संगठित न थे। ऐसी स्थिति में विरोध की कोई सम्भावना न थी।

4. दोषपूर्ण प्रक्रिया (Defective Procedure)- संविधान सभा द्वारा अपनाए गए दोषपूर्ण तरीके ने भी सर्वसम्मति एवं समझौते की प्रक्रिया को अप्रत्यक्ष रूप से सफल बनाने में योगदान दिया, क्योंकि जब भी महत्त्वपूर्ण विषयों पर वाद-विवाद होता था, तब कांग्रेस पार्टी के नेता सचेतक जारी कर देते थे, जिसके कारण कांग्रेस के सभी सदस्य उस फैसले का समर्थन करने में बाध्य हो जाते थे। क्योंकि कांग्रेस के सदस्यों की संख्या अधिक होती थी, इसलिए संशोधन उन्हीं के पक्ष में होते थे। अन्य दल कोई भी ठोस कार्य नहीं कर सकते थे और उन्हें विवश होकर कांग्रेस के फैसलों पर ही सहमति देनी पड़ती थी।

5. राष्ट्रीय उत्तरदायित्व संबंधी चेतना (Consciousness of National Responsibility)-संविधान सभा के अधिकतर सदस्य स्वतंत्रता सेनानी थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि किस प्रकार ब्रिटिश सरकार चतुराई एवं चालाकी से देश की संवैधानिक समस्या के समाधान हेतु टालमटोल करती थी। इस कारण वे संविधान सभा में किसी गम्भीर मतभेद को पैदा न होने देने के लिए विरोधी विचारों को यथासम्भव मान लेते थे। गैर-कांग्रेसी सदस्य भी अपने देश के भाग्य-निर्माण का अवसर खोना नहीं चाहते थे। राष्ट्रीय उद्देश्य संबंधी उनकी यह चेतना सर्वसम्मति व समझौते की प्रक्रिया की सफलता के लिए उत्तरदायी थी।

निष्कर्ष (Conclusion)- संविधान सभा ने भारत के लिए एक श्रेष्ठ संविधान बनाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। संविधान-निर्माताओं ने भारत के संविधान में संसदीय लोकतन्त्र, केन्द्रोन्मुखी संघात्मक व्यवस्था, मौलिक अधिकारों एवं राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों, धर्म-निरपेक्षता, सामाजिक न्याय तथा विश्व-शान्ति जैसी विचारधाराओं को सम्मिलित करके इसे न केवल देश की जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक बना दिया, बल्कि इसे दुनिया के विलक्षण संविधान के रूप में प्रतिष्ठित भी किया।

Unit-2

भारतीय संविधान की आधारभूत आदर्शवादिता [Ideological Basis of the Indian Constitution)

1. भारत के भावी राज्य-प्रबंध के संबंध में संविधान निर्माताओं की क्या अवधारणाएँ यी? (What were the perceptions of the constitution makers on future Indian Polity.)

अथवा

भारतीय संविधान की आधारभूत आदर्शवादिता की व्याख्या कीजिए। (Discuss the ideological basis of the Indian Constitution.)

अथवा

भारतीय राज्य व्यवस्या के विषय में संविधान सभा के दृष्टिकोण का परीक्षण कीजिए। (Examine Constituent Assembly's perspective on the Indian polity.)

उत्तर- संविधान सभा की भावी भारतीय शासन-व्यवस्था की परिकल्पनाओं/ आधारभूत आदर्शवादिता को 1928 ई. में प्रकाशित नेहरू रिपोर्ट में देखा जा सकता है। डॉ. जकारिया ने तो नेहरू रिपोर्ट को भारत के भावी संविधान की रूप-रेखा माना है। इसी प्रकार संविधान सभा में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने जो 'उद्देश्य प्रस्ताव' (Objective Resolution) प्रस्तुत किया वह भी संविधान सभा के सदस्यों के विचारों का दर्पण था। इसी तरह संविधान की प्रस्तावना में भी संविधान सभा के भावी भारत के राज्य प्रबन्ध से सम्बन्धित धारणाओं के दर्शन किए जा सकते थे। संविधान सभा के सदस्यों की भारत की भावी शासन-व्यवस्था से सम्बन्धित **परिकल्पनाओं या वैचारिक आधारों का** वर्णन निम्नलिखित है-

1. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य की परिकल्पना (Perception of Sovereign State)- भारतीय नेता मुख्य रूप से उस वर्ग से सम्बन्धित थे जिन्होंने अंग्रेजों की गुलामी देखी थी। इसलिए उनकी इच्छा भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राज्य के रूप में देखने की थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने प्रस्तावना में भारत को प्रभुत्व सम्पन्न राज्य घोषित किया। इसका अभिप्राय यह है कि भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। यह किसी भी बाहरी शक्ति के अधीन नहीं है।

2. प्रजातन्त्र की कल्पना (Perception of Democracy)-भारतीय संविधान सभा की विचार यह था कि भारत में प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना की जाए। साथ की संविधान सभा के अधिकांश सदस्य प्रजातन्त्र के समर्थक थे। अतः उन्होंने भारत के लिए प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था को अपनाया जाए। इसका अर्थ यह है कि शासन की अन्तिम शक्ति जनता के हाथ में ही रहेगी।

3. समाजवाद की परिकल्पना (Perception of Socialism)-भारतीय संविधान सभा के सदस्यों पर समाजवाद की अवधारणा का प्रभाव था, इसलिए वे भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। उनका कहना था कि भारत के विकास का मार्ग केवल समाजवाद में ही निहित है। यद्यपि संविधान की मूल प्रस्तावना में समाजवाद शब्द को नहीं रखा गया था लेकिन सन् 1976 में संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद को जोड़ दिया गया। वास्तविकता में कांग्रेस पहले से ही भारत में प्रजातन्त्रीय समाजवाद की स्थापना का लक्ष्य घोषित कर चुकी थी।

4. भारत के एक गणराज्य होने की परिकल्पना (Perception of Republic)-संविधान सभा के सदस्यों ने भारत में गणराज्य स्थापित करने का निर्णय लिया। गणराज्य की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसमें राज्य का मुखिया नाममात्र का अधिकारी होता है जिसे जनता द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पद्धति से निर्वाचित किया जाता है।

5. धर्म-निरपेक्ष राज्य व्यवस्था की परिकल्पना (Perception of Secular Polity)- संविधान सभा के सदस्य इस बात से

भली-भांति परिचित थे कि भारत में अनेक प्रकार के धर्म, वर्ग व जाति के लोग रहते हैं। इन सभी लोगों में मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का एकमात्र साधन धर्म-निरपेक्षता है। इसलिए उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि भारत की भावी शासन-व्यवस्था धर्म-निरपेक्षता की नींव पर आधारित हो। अतः भारतीय संविधान की धारा 25 के अन्तर्गत धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। यही नहीं, धर्म-निरपेक्ष शब्द को 42वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में भी जोड़ा गया है।

6. गाँधीवादी परिकल्पना/विचारधारा (Gandhian Perception)-गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गाँधी जी का संविधान सभा के सदस्यों पर पूरा प्रभाव था। संविधान सभा के सदस्यों ने गाँधीवादी विचारधारा को संविधान में महत्वपूर्ण स्थान दिया। संविधान में सामाजिक समानता स्थापित की गई है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संविधान की धारा 17 के द्वारा छुआछूत को गैर-कानूनी घोषित किया गया है। सरकार द्वारा 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। नशीली वस्तुओं, जैसे-शराब, अफीम आदि के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा की व्यवस्था की गई है। गाँवों में पंचायतों की व्यवस्था की गई है, आदि।

7. कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना (Perception of Welfare State)-राष्ट्रीय आन्दोलन राजनीतिक आन्दोलन होने के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक आन्दोलन भी था। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत नेताओं द्वारा भारतीयों के सामाजिक व आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए। इन सभी प्रयत्नों का संविधान सभा के सदस्यों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने कामना की कि भारत एक ऐसा कल्याणकारी राज्य होना चाहिए जिसमें सभी को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय मिले। संविधान के अनुसार भारत एक कल्याणकारी राज्य है। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक न्याय को उद्देश्य- प्रस्ताव और संविधान की प्रस्तावना में भी देखा जा सकता है।

8. शक्तिशाली केन्द्र की परिकल्पना (Perception of Strong Centre)-भारतीय संविधान में कुछ ऐसे तत्त्व पाए जाते हैं जिनके आधार पर भारतीय शासन-व्यवस्था संघात्मक है। इसके साथ-साथ कुछ ऐसे तत्त्व भी पाए जाते हैं जिनके आधार पर भारतीय शासन-व्यवस्था एकात्मक है। इसी सन्दर्भ में के.सी. बीयर ने कहा है, "भारत एक एकात्मक राज्य है जिसमें संघात्मक लक्षण हैं।" इसी प्रकार जैनिंग्स (Jennings) ने विचार व्यक्त किए हैं, "भारत शक्तिशाली केन्द्रीयकरण की प्रवृत्तियों वाला संघात्मक राज्य है।" पंडित नेहरू ने भी संविधान सभा में बोलते हुए शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना का समर्थन किया था।

9. स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व की परिकल्पना (Perception of Liberty, Equality and Fraternity)-मनुष्य की उन्नति व विकास के लिए केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही काफी नहीं है, बल्कि अन्य स्वतन्त्रताएँ, समानता व बन्धुत्व भी आवश्यक हैं। संविधान सभा के सदस्य स्वतन्त्रता, तमानता व बन्धुत्व की भावना के महत्व से भली-भांति अवगत थे। अतः वे भारत के संविधान में इनका समावेश करने के पक्ष में थे। उद्देश्य प्रस्ताव व संविधान की प्रस्तावना में स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व के महत्व पर बल दिया गया है। संविधान में नागरिकों को कई प्रकार की स्वतन्त्रताएँ एवं मौलिक अधिकार प्रदान किए गए हैं।

10. राष्ट्र की एकता तया अखण्डता की परिकल्पना (Perception of Unity and Integrity of the Nation) संविधान को बनाने वाले अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' (Divide and Rule) की नीति से भली-भांति परिचित थे। अंग्रेजों की इसी नीति के आधार पर भारत का विभाजन हुआ था। इसलिए संविधान-निर्माता भारत की एकता को बनाए रखने के पक्ष में थे। वस्तुतः संविधान की प्रस्तावना में राष्ट्र की एकता को बनाए रखने की घोषणा की गई तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भारत को धर्म-निरपेक्ष राज्य बनाया गया। सभी नागरिकों को भारत की नागरिकता प्रदान की गई। समस्त भारत के लिए एक ही संविधान को अपनाया गया तथा 18 भारतीय भाषाओं को मान्यता दी गई।

11. व्यक्तिगत गौरव विषयक परिकल्पना (Perception Regarding Dignity of the Individuals)-संविधान की प्रस्तावना के द्वारा भारत के व्यक्तिगत गौरव को स्थापित किया जाएगा। भारतीय संविधान द्वारा सब व्यक्तियों को मौलिक अधिकार समान रूप से प्रदान करना, भारतीयों के व्यक्तिगत गौरव को ऊँचा उठाने के लिए महत्वपूर्ण कदम है। मौलिक अधिकारों के अलावा मताधिकार तथा चुनाव लड़ने का अधिकार भी भारतीयों में व्यक्तिगत गौरव एवं स्वाभिमान को

प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करता है।

12. संयुक्त चुनाव-प्रणाली विषयक परिकल्पना (Perception Regarding Joint Electorate System)-संविधान सभा के सदस्य स्वतन्त्रता से पूर्व प्रचलित साम्प्रदायिक चुनाव प्रणाली के कुप्रभावों से अवगत थे। मुस्लिम मतदाता मुस्लिम उम्मीदवार को तथा हिन्दू मतदाता हिन्दू उम्मीदवार को वोट डालते थे। इस चुनाव प्रणाली के आधार पर हिन्दुओं और मुसलमानों में घृणा की भावना पैदा हुई, जिसके फलस्वरूप भारत का विभाजन हुआ तया पाकिस्तान की स्थापना हुई। संविधान निर्माता इत्त प्रणाली को समाप्त करने के पक्ष में थे। भारतीय नवीन संविधान के द्वारा इस प्रणाली को समाप्त करके संयुक्त चुनाव प्रणाली का प्रावधान किया गया है। अब भारत में सभी सम्प्रदाय मिल-जुलकर अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करते हैं।

13. राष्ट्रीय भाषा विषयक परिकल्पना (Perception Regarding National Language)-राष्ट्रभाषा किसी भी देश के लिए सम्मान का विषय है। स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेजी भाषा को ही राष्ट्रभाषा माना जाता था। फिर भी संविधान सभा के सदस्य भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा का चयन करने के पक्ष में थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जितने विवाद का विषय राष्ट्रभाषा थी, अन्य कोई भी विषय नहीं था। जब निर्णय के लिए मतदान किया गया तो संविधान सभा में हिन्दी के पक्ष और विपक्ष में 78-78 मत पड़े। भारत के नए संविधान में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है और 'हिन्दी की देवनागरी लिपि' Hindi in Devnagri Script) को राष्ट्रीय भाषा घोषित किया गया है। हिन्दी भाषा के विकास के लिए केन्द्र तया राज्य सरकारों को विशेष उत्तरदायित्व सौंपा गया है ताकि हिन्दी देश में अंग्रेजी का स्थान ग्रहण कर सके।

14. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा विषयक परिकल्पना (Perception Regarding Safeguarding the Interests of Minorities) स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में अनेक अल्पसंख्यक वर्ग थे और आज भी पाए जाते हैं। अल्पसंख्यकों को धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। विभाजन के समय अल्पसंख्यकों पर हुए अत्याचारों के कारण संविधान सभा के सदस्य भयभीत थे और वे स्वतन्त्र भारत में इसकी पुनरुक्ति नहीं चाहते थे। इसलिए संविधान सभा की एक समिति का गठन किया गया जो भारतीय अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा सम्बन्धी समस्या पर विचार करेगी। भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा हेतु विभिन्न प्रावधान किए गए हैं।

15. अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों के हितों की रक्षा सम्बन्धी परिकल्पना (Perception Regarding the Protection of Rights of Scheduled Castes and Backward Classes)-स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में पिछड़ी जातियों व वर्गों की संख्या भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 1/5 भाग थी जिन्हें अपमान व तिरस्कार की नजरों से देखा जाता था। भारतीय संविधान में अनुसूचित तया पिछड़ी जातियों के हितों की सुरक्षा के लिए विशेष अनुच्छेद लिखे गए हैं। इन श्रेणियों के लोगों के लिए संविधान में यह लिखा गया है कि केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें उनके लिए कुछ सरकारी नौकरियाँ आरक्षित रखेंगी। इसी तरह उनके लिए संसद तथा प्रान्तीय विधानपालिकाओं की कुछ सीटें भी आरक्षित की गई हैं।

16. विश्व शान्ति तया अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की परिकल्पना (Perception of World Peace and International Security)-संविधान सभा के सदस्य दो विश्व युद्धों का कटु-अनुभव अपने साथ लिए हुए थे जिसमें लाखों लोगों की जानें गई थीं। इनकी इच्छा थी कि धरती पर ऐसा युद्ध फिर से न हो। वे जापान की युद्ध-त्याग की नीति से भी प्रभावित हुए थे। इसलिए उन्होंने विश्व-शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा स्थापित करने का संकल्प लिया। नवीन भारतीय संविधान विश्व-शान्ति का प्रतीक है। संविधान की धारा 51 के अनुसार, भारत राष्ट्रों के बीच न्याय तथा समानतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करेगा, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए विधि एवं सन्धि बन्धनों के प्रति आदर निर्माण करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता के द्वारा सुलझाने का प्रयास करेगा।

निष्कर्ष (Conclusion)-उपरोक्त परिकल्पनाओं व दृष्टिकोणों का विस्तृत अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में नवीन भारत की एक कल्पना थी जिसे वे कार्य रूप देना चाहते थे तथा उसी कल्पना के आधार पर उन्होंने एक संविधान का निर्माण किया।

प्रस्तावना [Preamble]

प्रस्तावना से हमारा अभिप्रायः उस कथन से होता है. जिसे संविधान के प्रावधानों के आरम्भ होने से पूर्व अंकित किया जाता है। प्रस्तावना एक ऐसा कथन होता है जिसमें संविधान के मुख्य उद्देश्यों, मौलिक सिद्धांतों एवं आदर्शों का समावेश होता है। प्रस्तावना में राज्य के संवैधानिक ढाँचे का चित्र दिया होता है. जिससे हमें आभास मिल जाता है कि राज्य की शासन प्रणाली किस प्रकार की है। **के. एम. मुंशी** के शब्दों में, "भारतीय संविधान की प्रस्तावना संविधान निर्माताओं के मनों को जानने की कुंजी है।"

संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसा पहला देश है, जिसने 1787 में निर्मित अपने देश के संविधान में प्रस्तावना को शामिल किया था। इसके बाद विश्व में जिन संविधानों का निर्माण किया गया, उनमें से अधिकतर संविधानों का प्रारम्भ प्रस्तावना से होता है। भारतीय संविधान को प्रस्तावना जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत 'उद्देश्य प्रस्ताव' पर आधारित है। पण्डित नेहरू ने उद्देश्य प्रस्ताव 13 दिसम्बर, 1946 को संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया था। संविधान सभा ने 13 से 19 दिसम्बर तक इस पर विचार किया था और 22 जनवरी 1947 को इसे स्वीकार किया था।

संविधान की प्रस्तावना को **42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा** संशोधित किया गया। इस संशोधन अधिनियम द्वारा इसमें 'समाजवाद' 'धर्मनिरपेक्ष एवं 'अखंडता' शब्द जोड़े गए।

प्रस्तावना का पाठ (Text of the Preamble), "हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए और इसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय विचार अभिव्यक्ति, धर्म, विश्वास एवं उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए और उन सभी में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्पित होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित एवं आत्म-अर्पित करते हैं।"

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालती है-

1. भारतीय संविधान के निर्माता कौन है?

2. भारतीय शासन प्रणाली का रूप कैसा है?

3. भारतीय संविधान के उद्देश्य क्या है?

यहाँ इन तीनों बातों की व्याख्या प्रस्तुत है।

1. संविधान के निर्माता (Framers of the Constitution)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना के पाठ का प्रारम्भ, 'हम भारत के लोग' और अन्त 'इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित एवं आत्म अर्पित करते हैं', शब्दावली से होता है। इन शब्दावलियों से स्पष्ट हो जाता है कि इस संविधार की निर्माता भारत की जनता है। इसका निहितार्थ यह है कि यह संविधान स्वयं भारत की जनता द्वारा बनाया गया है; किसी बाह्य सत्ता द्वारा भारत की जनता पर नहीं थोपा गया है। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए **डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** लिखते हैं, "प्रस्तावना स्पष्ट करती है कि इस सदन (संविधान सभा) के प्रत्येक सदस्य की क्या इच्छा है; यह संविधान अपनी सत्ता एवं सम्प्रभुता जनता से प्राप्त करता है।

2. शासन-प्रणाली का रूप (Form of the Government) — संविधान की प्रस्तावना में प्रयुक्त शब्द 'सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य', देश की शासन प्रणाली पर प्रकाश डालते हैं। यहाँ इन शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत है।

(i) संप्रभु (Sovereign) - संप्रभु शब्द का आशय यह है कि भारत न तो किसी अन्य देश पर निर्भर है और न ही यह किसी अन्य देश का डोमिनियन है। भारत स्वयं का प्रभु है। इसके ऊपर कोई शक्ति नहीं है, अतः यह अपने आंतरिक एवं बाहरी मामलों में स्वतंत्र है। यद्यपि 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल (Commonwealth of Nations) की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना था, किन्तु सरकार का यह निर्णय किसी भी तरह से भारत की संप्रभुता को प्रभावित नहीं करता है। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता भारत की संप्रभुता को किसी भी मायने में सीमित नहीं करती है। एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत किसी देश के पक्ष में अपनी सीमा के भीतर के किसी हिस्से पर से अपना दावा नहीं छोड़ सकता है।

(ii) समाजवादी (Socialist)— 42वें संशोधन अधिनियम (1976) से पहले भी भारत के संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धांतों के रूप में समाजवादी तत्व मौजूद थे। दूसरे शब्दों में, जो बात पहले संविधान में अंतर्निहित थी, उसे 42वें संशोधक अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से इसमें जोड़ दिया गया। उल्लेखनीय है कि भारतीय समाजवाद 'लोकतांत्रिक समाजवाद' है; न कि "साम्यवादी समाजवाद', जिसमें उत्पादन एवं वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी संपत्ति का उन्मूलन शामिल होता है। लोकतांत्रिक समाजवाद मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है।

(iii) धर्मनिरपेक्ष (Secular) - 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द को भी 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया। यद्यपि 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द का भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया था. फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान-निर्माता देश में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसीलिए सविधान में धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28) शामिल किया गया था। भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता की सभी विशेषताएं विद्यमान है अर्थात् इसमें सभी धर्मों को समान माना गया है और किसी भी धर्म को राजकीय धर्म घोषित नहीं किया गया है।

(iv) लोकतांत्रिक (Democratic)- संविधान की प्रस्तावना में देश में लोकतांत्रिक शासन की स्थापना की बात कही गयी है। लोकतन्त्र लोक संप्रभुता के सिद्धान्त पर आधारित होता है अर्थात् लोकतंत्र में सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित होती है। लोकतंत्र दो प्रकार का होता है-प्रत्यक्ष लोकतन्त्र एवं अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से करते हैं; जैसे स्विट्जरलैंड में। इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधिक लोकतंत्र भी कहा जाता है। प्रतिनिधिक लोकतंत्र भी दो प्रकार का होता है संसदीय लोकतन्त्र एवं अध्यक्षीय लोकतन्त्र।

संविधान द्वारा भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी है। यहाँ कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधानपालिका के प्रति जवाबदेह है। वयस्क मताधिकार, समयबद्ध चुनाव कानून की सर्वोच्चता न्यायपालिका की स्वतन्वता एवं भेदभाव का अभाव भारतीय लोकतन्त्र के प्रमुख लक्षण है। संविधान की प्रस्तावना में 'लोकतान्त्रिक' शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में किया है। इसमें न केवल राजनीतिक लोकतन्त्र, बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक लोकतन्त्र भी शामिल हैं।

(v) गणतंत्र (Republic)- विश्व में मौजूद लोकतांत्रिक शासनों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है-राजतन्त्र एवं गणतन्त्र। राजतन्त्र में राज्य के प्रमुख का चयन वंशानुगत आधार पर किया जाता है; जैसा कि ब्रिटेन में जब कि गणतन्त्र में राज्य का प्रमुख जनता द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में निश्चित समय के लिए चुना जाता है; जैसा कि अमेरिका में। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में गणतंत्र का अर्थ यह है कि राज्य प्रमुख अर्थात् राष्ट्रपति चुनाव के माध्यम से सत्ता में आता है। उसका चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है। गणतंत्र के अर्थ में दो और बातें भी शामिल है-प्रथम, सत्ता किसी एक व्यक्ति के हाथों में नहीं होती है और द्वितीय, इसमें कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग मौजूद नहीं होता है, बल्कि, बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक पद, सभी नागरिकों के लिए खुले होते हैं।

संविधान के उद्देश्य (Objectives of the Constitution)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संविधान के निम्नलिखित उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है-

1. न्याय (Justice)- संविधान की प्रस्तावना में न्याय के तीन रूपों समाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक को शामिल किया गया है और इसकी सुरक्षा मौलिक अधिकारों एवं नीति-निदेशक सिद्धांतों के विभिन्न उपबंधों के द्वारा की गयी है। सामाजिक न्याय

का अर्थ है व्यक्तियों के साथ धर्म, नस्ल जाति या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए । इसका अर्थ है- समाज में किसी विशेषाधिकारों प्राप्त वर्ग की अनुपस्थिति और अनसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों पिछड़े वर्गों एवं महिलाओं की स्थिति में सुधार। आर्थिक न्याय का अर्थ है-आर्थिक रूप से किसी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा शोषण नहीं किया जाना। इसमें संपदा आय एवं संपत्ति की असमानता को दूर करना भी शामिल है। राजनीतिक न्याय का अर्थ है- सभी व्यक्तियों की शासन में भागीदारी अर्थात् राजनीतिक पद किसी वर्ग विशेष के लिए आरक्षित न होना।

2. स्वतन्त्रता (Liberty) - स्वतन्त्रता का अर्थ है-व्यक्तियों की गतिविधियों पर किसी प्रकार के बन्धन की अनुपस्थिति के साथ ही व्यक्ति को विकास के लिए अवसर प्रदान करना। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों को विचार अभिव्यकि विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। इनके हनन की स्थिति में पीड़ित व्यक्ति द्वारा सर्वोच्च न्यायाल या संबंधित उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है। प्रस्तावना में कहा गया है कि लोकतांत्रिक शासन के सप संचालन के लिए स्वतन्त्रता नितान्त आवश्यक है। किन्तु स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह नहीं कि व्यक्ति को कुछ भी करने लाइसेंस मिल गया है। व्यक्ति द्वारा स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग संविधान में वर्णित सीमाओं के तहत ही किया जा सकता।

3. समानता (Equality)- समानता का अर्थ है-समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकारों का न होना क बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर उपलब्ध होना। भारतीय संविधान की प्रस्तावना नागरिकों को प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता प्रदान करती है। इस उपबंध में समानता के तीन आयाम शामिल हैं-नागरिक समानता, राजनीतिक समानता एवं आर्थिक समानता।

4. बंधुत्व (Fraternity)— बंधुत्व का अर्थ है- भाईचारे की भावना। भारतीय संविधान एकल नागरिकता के माध्यम से भाइचारे की भावना को प्रोत्साहित करता है। मौलिक कर्तव्य (अनुच्छेद 51 क) इस बात पर बल देते हैं कि हर नागरिक धार्मिक भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्गीय विविधताओं से ऊपर उठकर सौहार्द एवं आपसी भाइचारे की भावना को प्रोत्साहित करे। संविधान की प्रस्तावना के अनुसार बंधुत्व के लिए दो बातों को सुनिश्चित करना जरूरी है-प्रथम, व्यक्ति का गौरव द्वितीय, देश की एकता एवं अखंडता। 'अखंडता' शब्द को 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया है।

प्रस्तावना की आलोचना (Criticism of the Preamble)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना विश्व के अन्य संविधानों की प्रस्तावनाओं की तुलना में श्रेष्ठ है। यह विचार, आदर्श एवं अभिव्यक्ति को दृष्टि से अनूठी है. फिर भी विद्वानों द्वारा इसकी निम्नलिखित आलोचनाएँ की गयी हैं-

1. 'हम भारत के लोग' की शब्दावली (Phrase of The People of India')- कुछ विद्वानों का मत है कि प्रस्तावना में जिस 'हम भारत के लोग' शब्दावली का प्रयोग किया गया है, वह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि संविधान का निर्माण करने वाली सविधान सभा के सदस्यों का चुनाव भारत की जनता द्वारा नहीं, बल्कि प्रांतीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वा किया गया था। ये लोग यह भी कहते हैं कि 1935 के जिस भारतीय शासन अधिनियम के तहत प्रान्तीय विधान सभाओं को गठन किया गया था उसके तहत केवल अल्पसंख्यक धनी वर्ग को ही मताधिकार प्राप्त था। सभी वयस्क लोगों को नहीं ।

2. न्यायिक शक्ति नहीं (not Judicial Sanction)- आलोचकों का यह भी कहना है कि प्रस्तावना में अंकित सिद्धांत पवित्र घोषणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, क्योंकि इन्हें लागू कराने के लिए न्यायालय का सहारा नहीं लिया जा सकता है। न्यायिक शक्ति के अभाव में सरकार इन सिद्धान्तों को लागू करने के लिए बाध्य नहीं है।

3. 'समाजवाद' एवं 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द (Socialist and Secular Words)- आलोचकों का यह भी कहना है कि 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवाद' एवं 'धर्मनिरपेक्ष' नामक जो दो शब्द जोड़े गए हैं, उनका अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक दल एवं संगठन इनकी अपने-अपने तरीके से व्याख्या करके इनका दुरुपयोग कर सकते हैं।

प्रस्तावना का महत्त्व (Significance of the Preamble)

प्रस्तावना में उस आधारभूत दर्शन और राजनीतिक, धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का उल्लेख है, जो हमारे संविधान के आधार हैं। इसके अलावा यह संविधान की नींव रखने वालों के सपनों एवं इच्छों को दर्शाती है। संविधान निर्माण में महत्त्वूपर्ण भूमिका निभाने वाले सदस्य सर अलादी कृष्णास्वामी अय्यर के शब्दों में, "संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है।" संविधान सभा की प्रारूप समिति के सदस्य के. एम. मुशी के अनुसार, "प्रस्तावना संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य का भविष्यफल है।" संविधान सभा के एक अन्य सदस्य पंडित ठाकुर दास भार्गव संविधान की प्रस्तावना के संबंध में कहते हैं, "प्रस्तावना संविधान का सबसे कीमती भाग है। यह संविधान की आत्मा है... यह संविधान की कुंजी है। यह संविधान का आभूषण है। यह सुन्दर गद्य-काव्य है। यह स्वयं में एक आदर्श है। सुप्रसिद्ध अंग्रेज राजनीति शास्त्री सर अर्नेस्ट बार्कर संविधान की प्रस्तावना लिखने वालों को राजनीतिक पण्डित कहकर सम्बोधित करते हैं। वे प्रस्तावना की 'संविधान की कुंजी' कहते हैं।

क्या प्रस्तावना संविधान का एक भाग है? (Is Preamble a Part of the Constitution?)

प्रस्तावना को लेकर एक विवाद यह है कि यह संविधान का एक भाग है या नहीं। बेरूबाड़ी मुकदमे (1960) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान में निहित सामान्य प्रयोजनों को दर्शाती है और इसलिए संविधान-निर्माताओं के मस्तिष्क की एक कुंजी है। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद में प्रयोग की गयी व्यवस्थाओं के अनेक अर्थ निकलते हैं। इन अर्थों को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना को संविधान में जोड़ा गया है। प्रस्तावना की विशेषता को स्वीकारते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान का भाग नहीं है, किन्तु केशवानंद भारती मुक़दमे (1973) में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी पहली व्याख्या को अस्वीकार कर दिया और यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। यह महसूस किया गया कि प्रस्तावना संविधान का अति महत्त्वपूर्ण भाग है, इसीलिए इसमें वर्णित विचारों को ध्यान में रखकर संविधान का अध्ययन किया जाना चाहिए। भारतीय जीवन बीमा निगम मुक़दमे (1995) में पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का भाग है।

क्या प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है? (Can Preamble Be Amended?)

क्या प्रस्तावना में संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन किया जा सकता है? यह प्रश्न पहली बार केशवानंद भारती मामला (1973) में उठा। सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख यह विचार रखा गया कि इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह संविधान का भाग नहीं है। याचिकाकर्ता ने कहा कि अनुच्छेद 368 के द्वारा संविधान के मूल तत्त्व एवं मूल विशेषताएँ, जो प्रस्तावना में उल्लेखित हैं, को ध्वस्त करने वाला संशोधन नहीं किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का भाग है और इस नाते प्रस्तावना को संशोधित किया जा सकता है, किन्तु इसमें वर्णित 'संविधान के मूलभूत ढाँचे' में सशोधन नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि प्रस्तावना में निहित संविधान की मूलभूत विशेषताओं को अनुच्छेद 368 के तहत संशोधित नहीं किया जा सकता है। अब तक संविधान की प्रस्तावना को केवल एक बार अर्थात 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संशोधित किया गया है। इसके द्वारा इसमें तीन नए शब्दों 'समाजवादी' 'धर्मनिरपेक्ष' एवं 'अखण्डता' को जोड़ा गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संशोधन को अवैध नहीं बताना यह सिद्ध करता है कि संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना पर एक निबन्ध लिखिए। (Write an essay on the Preamble of Indian Constitution.)

2. "भारत एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणतन्त्र है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। ("India is a Sovereign, Socialist, Secular, Democratic Republic." Explain this statement.)

3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना की व्याख्या कीजिए।

   (Explain the Preamble of Indian Constitution.)

मौलिक अधिकार [Fundamental Rights]

भारतीय संविधान के तीसरे भाग में मौलिक अधिकारों को शामिल किया गया है। भारतीय संविधान के 24 अनुच्छेदों (अनुच्छेद 12 से 35 तक) में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी है।

मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करने के कारण (Reasons for Inclusion of Fundamental Rights in the Constituion)

मौलिक अधिकार व्यक्ति के वे अधिकार होते हैं, जो उसके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए अति आवश्यक होते हैं और जिनको संविधान में शामिल करके समुचित न्यायिक संरक्षण प्रदान किया जाता है, ताकि विधानपालिका एवं कार्यपालिका या अन्य किसी संस्था द्वारा इनका उल्लंघन न किया जा सके। इसके अलावा, मौलिक अधिकार न्यायसंगत होते हैं. जिसका अर्थ यह है कि इनके पीछे न्यायपालिका की शक्ति होती है और वह इनकी रक्षा के लिए आवश्यक कदम उठा सकती है। मौलिक अधिकारों के अर्थ से ही स्पष्ट है कि इनको संविधान में शामिल करना क्यों जरूरी है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है. मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करने के कुछ विशेष कारण रहे हैं; जैसे-

1. अन्य देशों का प्रभाव (Impact of Other Countries)- भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल करने का एक कारण यह भी रहा है कि संविधान निर्माता अन्य देशों के संविधानों से प्रभावित थे। भारत से पहले विश्व के अनेक देश मौलिक अधिकारों को अपने संविधानों में शामिल कर चुके थे। अमेरिका अपने संविधान में प्रथम 10 संशोधन करके इन अधिकारों को संविधान का अभिन्न अंग बना चुका था। इसके अलावा, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड, जापान, चीन आदि देश भी मौलिक अधिकारों को अपने संविधानों में शामिल कर चुके थे। संविधान निर्माताओं ने अनेक देशों के संविधानों का अध्ययन करने के उपरान्त मौलिक अधिकारों को भारतीय संविधान में शामिल करने का निर्णय लिया।

2. अतीत का अनुभव (Past Experience)- भारतीय संविधान का निर्माण करने वाली संविधान सभा के अधिकांश सदस्य ऐसे थे, जो स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा कभी-न-कभी प्रताड़ित अवश्य किए गए थे। ये लोग भारत में एक ऐसी शासन प्रणाली स्थापित करना चाहते थे, जो नागरिकों के अधिकारों एवं स्वतन्त्रता का हनन न कर पाए। इस बात को ध्यान में रखते हुए इन्होंने मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करके इनके संरक्षण की समुचित व्यवस्था की। संविधान सभा द्वारा जिन विभिन्न समितियों का गठन किया गया था, उनमें से एक समिति मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित थी।

3. लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य (Compulsory for Demoracy)- भारत लम्बे समय तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकार रहा था इसलिए यहाँ लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास नहीं हो पाया था। लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली को सफल बनाने के लिए लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास होना आवश्यक है। भारत में लोकतान्त्रिक परम्पराओं का विकास नहीं हुआ था। ऐसे में मौलिक अधिकारों को सरकार के भरोसे छोड़ना ठीक न था क्योंकि वह इनका हनन कर सकती थी। इस विषय में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने लिखा है, "इन परिस्थितियों में विधानपालिका पर प्रशासन का रूप निर्धारित करने के बारे में विश्वास न करना बुद्धिमानी है। इनको (मौलिक अधिकारों) संविधान में शामिल करने का यही औचित्य है।"

4. सत्तारूढ़ दल के अत्याचारों से सुरक्षा (Protection from the Tyranny of Ruling Party) संविधान- निर्माता इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि सत्तारूढ़ दल सत्ता के नशे में जनता पर अत्याचार करने लगता है। वे जनता की सत्तारूढ़ दल के अत्याचारों से रक्षा करना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने सविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश किया। अन्य शब्दों में, यदि मौलिक अधिकारों को कानूनी अधिकार का दर्जा प्राप्त होता, तो सत्तारूढ़ दल इनमें आसानी से परिवर्तन कर सकता था। अतः सत्तारूढ़ दल द्वारा मौलिक अधिकारों के दुरुपयोग को रोकने की दृष्टि से इन्हें संविधान में शामिल करना अनिवार्य था और संविधान निर्माताओं ने ऐसा ही किया।

5. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा (Safeguard of the Interests of Minorities)- भारत में मौलिक अधिकार अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने का कार्य करते हैं, क्योंकि ये इनके हितों को न्यायिक संरक्षण प्रदान करते हैं। आज भारत में अल्पसंख्यक अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति को कायम रख सकते हैं और अपनी शिक्षण संस्थाएँ भी स्थापित कर सकते

हैं। सरकार ऐसी शिक्षण संस्थाओं के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं कर सकती है।

6. कानून के शासन की स्थापना (Establishment of Rule of Law)— भारत में मौलिक अधिकार कानून के शासन की स्थापना करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 14 में स्पष्ट किया गया है कि सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान है अर्थात बिना इस बात पर ध्यान दिए कि व्यक्ति का सामाजिक दर्जा क्या है। कानून सभी के साथ समान व्यवहार करता है।

7. न्याय एवं जीवन की सुरक्षा की गारण्टी (Guarantee for Justice and Security of Life)- मौलिक अधिकार नागरिकों को न्याय एवं जीवन की सुरक्षा की गारण्टी प्रदान करते है। क्योंकि इनके रहते हुए व्यक्ति के साथ न तो किसी प्रकार का अन्याय हो सकता है और न ही उसके जीवन को किसी प्रकार का कोई खतरा हो सकता है। संविधान के अनुच्छेद 21 के द्वारा नागरिकों को जीवन एवं दैहिक स्वतंत्रता की सुरक्षा दी गयी है।

मौलिक अधिकारों की मुख्य विशेषताएँ (Main Characteristics of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकारों की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. विस्तृत अधिकार-पत्र (Detailed Charter)- भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का विस्तार से वर्णन किय गया है। यहाँ तक कि 24 अनुच्छेदों (अनुच्छेद 12 से 35) वाला संविधान के तृतीय भाग में मौलिक अधिकार का वर्णन किया गया है। मौलिक अधिकारों-संबंधी कुछ अनुच्छेद तो विशेष रूप से लंबे हैं; जैसे-अनुच्छेद 19 में न केवल छ: प्रकार की स्वतन्त्रताओं का, बल्कि इन पर लगाए गए प्रतिबन्धों का भी वर्णन किया गया है। वस्तुतः मौलिक अधिकारों की पूर्ण एवं स्पष्ट व्याख्या करने के प्रयास में ही यह अधिकार पत्र इतना विस्तृत हो गया है।

2. दोहरी प्रकृति (Dual Nature)— भारतीय संविधान में वर्णित समस्त मौलिक अधिकारों को दो भागों विभक्त किया जा सकता है— सकारात्मक अधिकार एवं नकारात्मक अधिकार। जहाँ एक ओर सकारात्मक अधिकार सरकार को कुछ कार्य करने के लिए निर्देश देते हैं, वहीं दूसरी ओर नकारात्मक अधिकार राज्य को कुछ कार्य करने से मनाही करते हैं। अनुच्छेद 16 के तहत राज्य एक ओर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष व्यवस्था करता है, तो दूसरी ओर अनुच्छेद 14 के तहत राज्य नागरिकों को कानून के समक्ष समानता के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता है।

3. सभी को समान रूप से उपलब्ध नहीं (Not Equally Available to All)- भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों की एक विशेषता यह है कि ये सभी व्यक्तियों को समान रूप से उपलब्ध नहीं है. क्योंकि ये भारती नागरिकों एवं विदेशियों में पर्याप्त भेद करते हैं। एक ओर कुछ मौलिक अधिकार भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों एवं को उपलब्ध हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ मौलिक अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 14 में वर्णित 'कानून के समक्ष समानता' एवं 'कानून का समान संरक्षण' एवं अनुच्छेद 21 में वर्णित 'जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता' के अधिकार भारतीय नागरिकों एवं विदेशियों दोनों को उपलब्ध हैं किन्तु अनुच्छेद 19 में दिए गए विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रताएँ केवल भारतीय नागरिकों को ही उपलब्ध हैं।

4. निरपेक्षता का अभाव (Lack of Absoluteness)- अमेरिकी संविधान की भाँति, भारतीय संविधान में निरपेक्ष व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के आदर्श को नहीं, बल्कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सामाजिक हित में सीमित करना स्वीकार किया गया है। इस विषय में डॉ. गजेन्द्र गड़कर लिखते हैं, "संविधान में मौलिक अधिकारों को निरपेक्ष बनाने का इरादा सभी का था, यही कारण है कि संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ-साथ, उन पर लगने वाले प्रतिबन्धों का उल्लेख भी किया गया है। राज्य इन अधिकारों को राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था, स्वास्थ्य एवं नैतिकता के आधार पर प्रतिबन्धित लगा सकता है।

5. परिवर्तनीय (Changeable)- ये स्थायी नहीं हैं, क्योंकि संसद कभी भी संविधान में निर्दिष्ट प्रक्रिया द्वारा इनको परिवर्तित कर सकती है। डॉ. गजेन्द्र गड़कर के शब्दों में. "संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा संसद को प्रदान की गयी शक्ति में मौलि अधिकारों को संशोधित करने की शक्ति भी शामिल है। ये न्यायसंगत हैं किन्तु अपरिवर्तनशील नहीं। अनेक इनको, विशेषकर सम्पत्ति के अधिकार को, सरकार द्वारा संशोधित किया गया। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा जनता पार्टी सरकार ने

'सम्पत्ति के अधिकार' को मौलिक अधिकारों की सूची से निकालकर इसे कानूनी अधिकार का दर्जा दिया था , तो 86वें संशोधन अधिनियम (2002) द्वारा शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकारों में जोड़ दिया गया।

6. अस्पष्ट (Ambiguous)- मौलिक अधिकारों की एक विशेषता है इनका अस्पष्ट होना, जो समय-समय पर संवैधानिक विवादों को जन्म देता रहता है। उदाहरण के लिए इनमें प्रयुक्त 'सार्वजनिक उद्देश्य' 'मानव शरीर का व्यापार' 'सार्वजनिक हित', 'सार्वजनिक व्यवस्था', 'नैतिकता एवं स्वास्थ्य' 'सामाजिक कल्याण' आदि शब्दों को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। इसके अलावा कुछ अधिकारों का बार-बार और भिन्न-भिन्न भागों में आना भी भ्रान्तियों को जन्म देता है।

7. प्राकृतिक अधिकारों का अभाव (Lack of Natural Rights)- अमेरिकी जनता के विपरीत, भारतीय जनता संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अलावा किसी अन्य अधिकार की माँग नहीं कर सकती है। भारतीय संविधान में प्राकृतिक अधिकारों के नाम पर किसी अस्पष्ट मौलिक अधिकार की मांग की गुंजाइश नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा छः मौलिक अधिकार ही व्यक्ति को प्रदान किए गए है। उल्लेखनीय है कि अमेरिका के संविधान में किए गए नौवें संशोधन में यह व्यवस्था की गयी है कि अमेरिकी नागरिकों को संविधान में दिए मौलिक अधिकारों के साथ-साथ उन अधिकारों से भी वंचित नहीं किया जा सकता है, जिनका संविधान में उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु भारत में ऐसा नहीं है।

8. व्यावहारिकता पर आधारित (Based on Pragmatism) - भारतीय संविधान में वणित मौलिक अधिकार कोरे सिद्धान्त नहीं है, बल्कि ये सामाजिक यथार्थ पर आधारित और सामाजिक दृष्टि से उपयोगी है। उदाहरण के लिए समानता के आदर्श को स्वीकार करते हुए भी सविधान में पिछड़े एवं दलित वगों के कल्याण की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार स्वतन्त्रता के अधिकार को मान्यता देते हुए भी इस पर कई प्रतिबन्ध लगा दिए गए है, ताकि व्यक्तियों द्वारा इसका दुरुपयोग न किया जा सके।

9. आर्थिक अधिकारों का अभाव (Lack of Economic Rights)- संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार देश में राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना को सुनिश्चित करते हैं; आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना को नहीं। ये नागरिकों को केवल भाषण एवं विचार -अभिव्यक्ति की, शान्तिपूर्ण इकट्ठा होने की, समुदायों या संघों के निर्माण की, भ्रमण एवं निवास की और व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। भूतपूर्व सोवियत संघ की भाँति ये नागरिकों को रोजगार, विश्राम, आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा आदि प्रदान नहीं करते हैं।

10. संवैधानिक संरक्षण (Constitutional Safeguard)— भारतीय संविधान द्वारा मौलिक अधिकारों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया गया है। यदि राज्य किसी व्यक्ति को उसके किसी मौलिक अधिकार से वंचित करता है, तो वह व्यक्ति इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय या अपने राज्य के उच्च न्यायालय में जा सकता है और अपने अधिकारों की सुरक्षा की माँग कर सकता है।

11. निलम्बन (Suspension)- संविधान निर्माता इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि देश में कभी भी असामान्य परिस्थितियाँ (आपातकाल) उत्पन्न हो सकती हैं, अतः उन्होंने राष्ट्रीय हित में संविधान में व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के निलम्बन की व्यवस्था की है। यही कारण है कि राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 19 में वर्णित स्वतंत्रताएँ स्वतः निलम्बित हो जाती हैं। साथ ही, राष्ट्रपति अधिसूचना जारी करके अनुच्छेद 20 एवं 21 में वर्णित अधिकारों के अलावा शेष मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु सक्षम न्यायालय में जाने के अधिकार को भी निलम्बित कर सकता है।

12. विभिन्न पदाधिकारियों पर प्रतिबन्ध (Check on Various Officials)- अमेरिका की भाँति मौलिक अधिकार केन्द्र सरकार को ही नहीं, बल्कि उन समस्त संस्थाओं को भी प्रतिबन्धित करते हैं, जिन्हें कानून निर्माण का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, नगरपालिकाएँ एवं पंचायती राज संस्थाएँ सभी इनका पालन करने के लिए बाध्य हैं।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार (Fundamental Rights in the Indian Constitution)

मूल भारतीय संविधान द्वारा नागरिकों को सात मौलिक अधिकार प्रदान किए गए थे किन्तु 44 वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा सम्पत्ति के अधिकार को मौलिक अधिकारों की श्रेणी से निकालकर कानूनी अधिकार का दर्जा दे दिया गया। इसीलिए अब नागरिकों के पास निम्नलिखित छः मौलिक अधिकार रह गए है-

1. समानता का अधिकार (Right to Equality) - भारतीय संविधान के पांच अनुच्छेदों (अनुच्छेद 14 से 18 तक) में समानता के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इस अनुच्छेदों में निम्नलिखित पांच प्रकार की समानताओं का उल्लेख किया गया है-

(1) कानून के समक्ष समानता (Equality before Law)- **अनुच्छेद 14** के अनुसार, "भारत के क्षेत्र में गम किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता एवं कानूनों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।" इस अनुच्छेद की शब्दावली 'कानून के समक्ष समानता' ब्रिटेन के सामान्य कानून (Common Law) से ली गयी है। इसका अर्थ यह है कि कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। अन्य शब्दों में, किसी व्यक्ति की स्थिति अथवा दर्जा कुछ भी हो, वह कानून है के अधीन होगा। इसके विपरीत, 'कानूनों का समान संरक्षण' शब्दावली अमेरिकी संविधान से ली गयी है और इससे अभिप्रा यह है कि समान लोगों के लिए समान कानून होना चाहिए अर्थात समान लोगों के लिए समान व्यवहार किया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, समान परिस्थितियों में व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

(ii) सामाजिक समानता (Social Equality) — **अनुच्छेद 15** के अनुसार, राज्य धर्म, नस्ल, जाति, लिंग एवं जन्म स्थान के आधारों पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा। इसका अभिप्राय यह हुआ कि नागरिकों के साथ जीवन के किसी क्षेत्र में पक्षपात नहीं किया जाएगा। इस अनुच्छेद के द्वारा यह निश्चिर किया गया है कि नागरिकों के साथ दुकानों, होटलों एवं सार्वजनिक स्थानों अर्थात् कुओं, तालाबों, स्नान घरों, सड़कों और पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा, बल्कि ये सभी के लिए खुले रहेंगे। लेकिन सरकार बच्चों एवं स्त्रियों के लिए पार्क स्नान-गृह आदि की अलग से व्यवस्था कर सकती है।

(iii) समान अवसर की समानता (Equal Opportunity)- अनुच्छेद 16 के अनुसार, सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में सभी नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध होंगे और धर्म नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान एवं निवास स्थान के आधारों या इनमें से किसी एक आधार पर पद प्राप्त करने के विषय में कोई भी नागरिक अयोग्य नहीं होगा। किन्तु इस अनुच्छेद के अंतर्गत राज्य सार्वजनिक सेवाओं हेतु आवश्यक योग्यता निर्धारित कर सकता है। इसके अलावा, संसद राज्य सेवाओं अथवा स्थानीय सेवाओं के लिए निवास स्थान को शर्त लगा सकती है। साथ ही, संसद लोक सेवाओं में सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए वर्गों के लिए कुछ स्थान आरक्षित कर सकती है।

(iv) अस्पृश्यता की समाप्ति (Abolition of Untouchability)— **अनुच्छेद 17** के द्वारा अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया है। आज किसी भी रूप में इसका आचरण निषिद्ध है। अस्पृश्यता निवारण अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत किसी भी रूप में अस्पृश्यता का लागू किया जाना दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।

(2) उपाधियों की समाप्ति (Abolition of Titles)- अनुच्छेद 18 के अंतर्गत राज्य नागरिकों को सेना अथवा शिक्षा-संबंधी उपाधियों के अतिरिक्त कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं कर सकता। इसके साथ ही यह भी व्यवस्था की गई है कि कोई भी नागरिक राष्ट्रपति की आज्ञा के बिना विदेशी राज्य द्वारा मिलने वाली कोई उपाधि स्वीकार नहीं कर सकता है। इस अनुच्छेद द्वारा ब्रिटिश शासन काल में दी जाने वाली उपाधियों, जैसे-राय बहादुर, राय साहब, खान साहब एवं सर आदि को प्रतिबन्धित कर दिया गया है. किन्तु सरकार राज्य के प्रति की गयी सेवाओं के उपलक्ष में व्यक्तियों को भारत रत्न, पद्मविभूषण, पद्मभूषण एवं पद्मश्री की उपाधियाँ एवं सैनिक अलंकरण प्रदान कर सकती है।

2. स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom) - भारतीय संविधान के अनुच्छेदों - 19-22 में स्वतन्त्रता के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इन अनुच्छेदों में वर्णित स्वतन्त्रताएँ नागरिक स्वतन्त्रताएँ हैं, राजनीतिक स्वतंत्रताएँ नहीं अर्थात् ये नागरिकों की वे 'निजी स्वतन्त्रताएँ' हैं, जो उनके विकास से सम्बन्धित हैं। स्वतन्त्रता के अधिकार की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—

(i) मूल अनुच्छेद 19 में नागरिकों को सात स्वतन्त्रताएँ प्रदान की गयी थीं. किन्तु 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा 'सम्पत्ति की स्वतन्त्रता' को समाप्त कर दिया गया, अतः अब नागरिकों को निम्नलिखित छः स्वतन्त्रताएँ प्राप्त हैं-

(क) भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता (Freedom of Speech and Expression)- अनुच्छेद 19(1)-क के अन्तर्गत नागरिकों को भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। प्रेस की स्वतन्त्रता भी विचारों की अभिव्यक्ति का एक साधन होने के नाते इसी स्वतन्त्रता में आती है। किन्तु भाषण एवं विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अपमान , बुरे शब्द , झूठा आरोप , न्यायालय के अपमान, शिष्टाचार या सदाचार पर संकट, राज्य की सुरक्षा ,सार्वजनिक व्यवस्था और विदेशी राज्यों से मित्रतापूर्ण सम्बन्धों के हित में रोक लगाई जा सकती है।

(ख) सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता (Freedom to Assemble)- अनुच्छेद 19(1)-ख के अन्तर्गत नागरिकों को शान्तिपूर्वक एवं बिना शस्त्रों के सभा या सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता दी गयी है। साथ ही नागरिक जुलूस या प्रदर्शन का आयोजन भी कर सकते हैं। किन्तु नागरिकों की यह स्वतन्त्रता भी निर्बाध नहीं है. क्योंकि राज्य द्वारा देश की सम्प्रभुता एवं अखण्डता या सार्वजनिक व्यवस्था के दृष्टिगत इस स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित किया जा सकता है।

(ग) समुदायों, संघों या सहकारी समितियों के निर्माण की स्वतन्त्रता (Freedom to Form Association Unions or Co-operative Socities) अनुच्छेद 19(1)-ग द्वारा नागरिकों को समुदायों संघों या सहकारी समितियों के निर्माण की स्वतन्त्रता दी गयी है, किन्तु नागरिकों की यह स्वतन्त्रता भी असीमित नहीं है, क्योंकि राज्य देश की सम्प्रभुता एवं अखण्डता, सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता भंग करने वाले समुदायों एवं सघों पर उचित प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(घ) अबाध भ्रमण की स्वतन्त्रता (Freedom to Move Freely) अनुच्छेद 19(1)-घ के तहत सभी नागरिक बिना किसी प्रतिबन्ध या विशेष अधिकार पत्र के सम्पूर्ण भारत के क्षेत्र में घूम सकते हैं. किन्तु राज्य आम जनता के हितों या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए नागरिकों की इस स्वतन्त्रता को सीमित कर सकता है।

(ङ) निवास की स्वतन्नाता (Freedom to Reside and Settle) - अनुच्छेद 19(1) ङ अन्तर्गत के नागरिकों को अपनी इच्छानुसार स्थायी या अस्थायी रूप से भारत में कहीं भी बमने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। निःसंदेह भ्रमण एवं निवास की यह स्वतन्त्रता संविधान द्वारा दी गयी इकहरी नागरिकता का समर्थन करती है. किन्तु राज्य आम जनता के हितों या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए इस स्वतन्त्रता पर भी प्रतिबन्ध लगा सकता है।

(छ) व्यवसाय की स्वतंत्रता (Freedom to Practise any Profession) — अनुच्छेद 19(1)-छ द्वारा सभी नागरिकों को वृत्ति, आजीविका, व्यापार अथवा व्यवसाय की स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है किन्तु राज्य आम जनता के हित में इस स्वतन्त्रता को भी सीमित कर सकता है।

(ii) अपराधों के लिए दण्ड के विषय में संरक्षण (Protection in Respect of Conviction for Offences)- संविधान के अनुच्छेद 20 के अनुसार "किसी व्यक्ति को उस समय तक अपराधी नहीं ठहराया जा सकता है, जब तक कि उसने अपराध के समय में लागू किसी कानून का उल्लंघन न किया हो।" यहाँ यह भी सुनिश्चित किया गया है कि प्रथम, दण्ड की मात्रा कानून में वर्णित दण्ड की मात्रा से अधिक नहीं हो सकती है; दूसरा, एक अपराध के लिए अभियुक्त को एक से अधिक बार दण्ड नहीं दिया जा सकता है और तृतीय, किसी अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है।

(iii) जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता (Right to Life and Personal Liberty) - संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत नागरिकों को 'जीवन के अधिकार' की स्वतन्त्रता दी गयी है। इस अनुच्छेद के अनुसार "किसी व्यक्ति को 'कानून द्वारा स्थापित विधि' के अलावा अन्य किसी प्रकार से उसके जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित नहीं कि जा सकता है।" 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा इस स्वतन्त्रता को और अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है।। संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गयी है कि राष्ट्रीय आपातकाल में भी व्यक्ति के जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार के क्रियान्वयन को स्थगित नहीं किया जा सकता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति इनके क्रियान्वयन के लिए सक्षम न्याया का सहारा ले सकता है। फिर भी जीवन के अधिकार पर लगा प्रतिबन्ध विचारणीय है, क्योंकि न्यायालय को 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Law)

को अन्यायोचित ठहराने का अधिकार नहीं है।

86वें संशोध अधिनियम (2002) द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21(A) जोड़ते हुए शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित कर गया। इसके द्वारा 6 से 14 साल तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होगा।

(iv) मनमानी गिरफ्तारी एवं नज़रबन्दी के विरुद्ध संरक्षण (Protection against Arbitrary Arrest an Detention)- अनुच्छेद 22 व्यक्ति को उसकी मनमानी गिरफ्तारी एवं नजरबन्दी के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। अनुच्छेद के अन्तर्गत व्यक्ति को कुछ निश्चित अधिकार प्रदान किए गए हैं- प्रथम, किसी व्यक्ति को उसके गिरफ्तार किए जाने के कारणों को बताए बिना गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है; द्वितीय, उसे अपने बचाव के लिए अपनी मर्जी का वकील करने का अधिकार होगा, और तृतीय, उसे गिरफ्तार किए जाने के 24 घण्टे के अन्दर निकटतम प्रथम श्रेणी न्यायिक दण्डाधिकारी के समक्ष उपस्थित किया जाएगा। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान किए गए है, उनसे दो प्रकार के व्यक्तियों को बाहर रखा गया है, प्रथम शत्रु देश के निवासी और द्वितीय 'निवारक नजरबन्दी अधिनियम' (जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा कानून, 1980) के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation) - सविधान के अनुच्छेद 23 एवं 24 में व्यक्ति के शोषण के विरुद्ध समुचित व्यवस्था की गयी है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान है-

(i) मानव देह का व्यापार एवं बलात श्रम का निषेध (Prohibition of Flesh Trade and For Labour) - अनुच्छेद 23 मानव देह के व्यापार एवं बेगार पर रोक लगाता है। अब ऐसा करना दण्डनीय अपराध है।

(ii) बाल श्रम का निषेध (Prohibition of Child Labour) — अनुच्छेद 24 में इस बात की व्यवस्था की गयी थी कि 14 वर्ष से कम आयु वाले किसी बच्चे को कारखानो, खानों या अन्य किसी जोखिम भरे काम पर नहीं लगाया जा सकता है,

4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)- संविधान के अनुच्छेद 25 - 28 तक नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयी हैं-

(i) धार्मिक आचरण एवं धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता (Freedom of Conscience and Propagation of Religion)- अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार अन्तःकरण की स्वतन्त्रता और धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। सिक्खों द्वारा कृपाण धारण करना धार्मिक स्वतन्त्रता का अंग माना गया है।

(ii) धार्मिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रबन्ध की स्वतन्त्रता (Freedom to Establish and Manage Religious Institutions) — अनुच्छेद 26 के अन्तर्गत प्रत्येक धार्मिक समुदाय को यह अधिकार प्रदान किया गया है कि वह

(क) धार्मिक एवं परोपकारी कार्यों के लिए धार्मिक संस्थाओं की स्थापना एवं इनका संचालन कर सकता है। (

(ख) अपने धार्मिक मामलों का प्रबन्ध कर सकता है।

(ग) धार्मिक मामलों के लिए चल एवं अचल सम्पत्ति अर्जित कर सकता है, और

(घ) धार्मिक संस्थाओं की सम्पत्ति का प्रबन्ध राज्य के कानूनों के अनुसार कर सकता है।

(iii) धार्मिक कार्यों के लिए कर-मुक्ति (Tax Exemption for Religious Purposes)- संविधान के अनुच्छेद 27 के अन्तर्गत व्यक्ति को किसी विशेष धर्म की उन्नति के लिए कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। साथ ही, ऐसी समस्त आय को कर से छूट गई है, जिसे धार्मिक एवं परोपकारी कार्यों में खर्च किया गया हो।

(iv) धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने की स्वतन्त्रता (Freedom to Get Religious Education)- संविधान के अनुच्छेद 28 में कहा गया है कि पूरी तरह राज्य निधि से चलने वाली शिक्षण संस्थाओं में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।

इसके साथ ही राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या वित्तीय सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थाओं में किसी बच्चे को उसकी या उसके अभिभावक की सहमति के बिना किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।

5. सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार (Cultural and Educational Rights)- संविधान के अनुच्छेद 29 एवं 30 के अन्तर्गत सभी अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकारों को सुरक्षित रखा गया है। इन विषय में निम्नलिखित व्यवस्थाएँ की गयी हैं-

(i) अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि एवं संस्कृति की सुरक्षा (Minoritries' Right to Preserve Their Language, Script and Culture)- अनुच्छेद 29 के अनुसार देश के किसी भी भाग में रहने वाले प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी भाषा, लिपि एवं संस्कृति सुरक्षित रखने का पूर्ण अधिकार है। इसमें यह प्रावधान है कि राज्य निधि से सहायता प्राप्त या राज्य द्वारा पोषित किसी शिक्षण संस्था में धर्म, नस्ल, जाति या भाषा के आधार पर विद्यार्थी को प्रवेश से नहीं रोका जाएगा।

(ii) अल्पसंख्यकों द्वारा शिक्षण संस्थाओं की स्थापना (Minorities' Right to Establish and Administer Educational Institutions) अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत धर्म या भाषा पर आधारित अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करने और उनके प्रशासन का अधिकार होगा। साथ ही, शिक्षण संस्थाओं को अनुदान देते समय राज्य इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि कोई संस्था किसी विशा अल्पसख्यक वर्ग के द्वारा संचालित की जा रही है।

6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)- संविधान में मौलिक अधिकार के उल्लेख करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है इन अधिकारों के क्रियान्वयन की समुचित व्यवस्था करना। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में संवैधानिक उपचारों के अधिकार का उल्लेख किया गया है। इस अधिकार का अभिप्राय है— नागरिकों द्वारा मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए न्यायालय की शरण लेना। यह अधिकार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, इसीलिए डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 32 को 'संविधान का हृदय एवं आत्मा' कहा है। संवैधानिक उपचारों के इस अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को निम्नलिखित पाँच लेख (Writs) जारी करने का अधिकार दिया गया है-

(i) बन्दी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)- बन्दी प्रत्यक्षीकरण का शाब्दिक अर्थ होता है- सशरीर उपस्थित करना। इसके अन्तर्गत किसी व्यक्ति को अवैध रूप से नजरबन्द करने वाले अधिकारी को सर्वोच्च न्यायाला यह आदेश देता है कि वह बन्दी बनाए गए व्यक्ति को निर्धारित समय एवं स्थान पर उपस्थित करे। स्पष्ट है कि गैर-कानूनी ढंग से बन्दी बनाया हुआ व्यक्ति इस लेख के आधार पर छूट जाता है।

(ii) परमादेश (Mandamus)- सर्वोच्च न्यायालय इस लेख को जारी करते हुए किसी पदाधिकारी अथवा सार्वजनिक प्राधिकारी को यह आदेश देता है कि वह उस कार्य को करे, जिसको करना उसका कानूनी दायित्व है। दूस शब्दों में इस लेख द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी अधिकारी को उसके कर्तव्य पालन का आदेश दिया जाता है।

(iii) प्रतिषेध (Prohibition)- इस लेख द्वारा सर्वोच्च न्यायालय अधीनस्थ न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक अधिकरणों को यह आदेश देता है कि वह सम्बंधित मामले में अपने यहाँ चल रही कार्यवाही को रोक दे क्योंकि ऐसा करना न्याय के हित में नहीं है।

(iv) उत्प्रेक्षण (Certiorari) — सर्वोच्च न्यायलय द्वारा यह लेख किसी विवाद को निम्न न्यायालय से उच्चतर न्यायालय में भेजने के लिए जारी किया जाता है, जिससे कि निम्न न्यायालय अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे और न्याय के प्राकृतिक सिद्धान्त का उल्लंघन न हो सके। इस लेख के द्वारा उच्चतर न्यायालय निम्न न्यायालय में किसी विवाद के सम्बन्ध में जानकारी भी प्राप्त कर सकता है।

(v) अधिकार-पृच्छा (Quo-warranto)- अधिकार पृच्छा का सामन्य अर्थ है - किसके अधिकार से। जब कोई पदाधिकारी वह कार्य करने लगता है जिसे करने का उसे कानूनी अधिकार नहीं होता है ,तो सर्वोच्च न्यायालय इस लेख के द्वारा उससे पूछ सकता है कि वह किस अधिकार से ऐसा कर रहा है। उसके संतोषजनक उत्तर दिए जाने की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय उसे

ऐसा करने से रोक देता है।

स्पष्ट है कि संवैधानिक उपचारों का अधिकार एक महत्त्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, क्योंकि इसकी अनुपस्थिी में अन्य मौलिक अधिकार 'निरर्थक' हो जाएगे

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Assessment)

मौलिक अधिकारों की यह व्यवस्था आलोचनाओं से मुक्त नहीं है। संक्षेप में, इनमें निम्नलिखित दोष है-

1. प्रमुख अधिकारों की उपेक्षा (Negligence of Signficant Rights)- मौलिक अधिकारों की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इनमें ऐसे अधिकारों विशेषकर आर्थिक अधिकारों को सम्मिलित ही नहीं किया गया है जिन्हें सम्मिलित किया जाना चाहिए था। ऐसे अधिकारों में हम रोजगार के अधिकार एवं वृद्धावस्था में सामाजिक सुरक्षा के अधिकार का उल्लेख कर सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार के अधिकारों के अभाव में देश में आर्थिक लोकतन्त्र साकार नहीं हो सकता है।

2. मौलिक अधिकारों पर अनेक प्रतिबन्ध (Many Restrictions on Fundamental Rights) - मौलिक अधिकारों का एक प्रमुख दोष यह है कि इन पर संविधान द्वारा अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं, जिसके परिणामस्वरूप ये प्रभावहीन हो गए हैं। इसलिए यह कहा गया है, "भारत का संविधान एक हाथ से मौलिक अधिकार देता है, तो दूसरे हाथ से छीन लेता है। शायद ही ऐसा कोई अधिकार बचा है, जिस पर कोई प्रतिबन्ध न लगा हो।

3. मौलिक अधिकारों का स्थगन (Suspension of Fundamental Rights)- मौलिक अधिकारों की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि इन्हें संकट काल में स्थगित कर दिया जाता है। यहाँ तक कि साधारण परिस्थितियों में भी निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था की गयी है। इनके स्थगन के प्रावधान को दृष्टि में रखते हुए एच.वी. कामथ ने संविधान सभा में कहा था. "इस व्यवस्था द्वारा हम तानाशाही एवं पुलिस राज्य की स्थापना कर रहे हैं।" जब निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था संविधान सभा द्वारा स्वीकार की गयी थी, तो एच.वी. कामथ ने इस पर निराशा व्यक्त करते हुए कहा था, "यह लज्जा एवं दुख का दिन है। ईश्वर भारतीय जनता की सहायता करे!

4. कठिन एवं अस्पष्ट भाषा (Difficult and Ambiguous Language)- मौलिक अधिकारों का एक प्रमुख दोष यह है कि इनके लिए प्रयुक्त की गयी भाषा अत्यन्त कठिन एवं अस्पष्ट है। इनके लिए प्रयुक्त की गयी भाषा आम व्यक्ति की समझ से परे है, क्योंकि इस भाषा को वकील लोग ही समझ सकते हैं। इसी आधार पर भारतीय संविधान को 'वकीलों के स्वर्ग' (Paradise of Lawyers) की संज्ञा दी गयी है।

5. महंगा न्यायिक उपचार (Costly Judicial Remedy) — संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के उल्लंघन या अतिक्रमण की स्थिति में अनुच्छेद 32 के तहत पीड़ित व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय की शरण में जा सकता है, किन्तु भारत में न्यायिक उपचार इतना महंगा है कि आम व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में जाने की सोच भी नहीं सकता है। इसी कारण उसके लिए मौलिक अधिकार व्यर्थ हो जाते हैं।

उपर्युक्त आलोचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार केवल 'मिथ' है, क्योंकि इन पर लगे प्रतिबन्धों और इनके स्थगन की व्यवस्था ने इन्हें खोखला एवं निरर्थक बना दिया है। लेकिन यह सोचना गलत है। यदि हम इन पर गहन तरीके से विचार करें, तो स्पष्ट हो जाता है कि इनके विषय में उपर्युक्त आलोचनाएँ निराधार है।

मौलिक अधिकारों का महत्त्व (Significance of Fundamental Rights)

मौलिक अधिकार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक शर्तें हैं अर्थात् इनके अभाव में व्यक्ति का पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। इनके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए जो एन. जोशी ने लिखा है "एक स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक देश में मौलिक अधिकार सामाजिक, धार्मिक एवं नागरिक जीवर के प्रभावकारी उपयोग के एकमात्र साधन हैं। इन अधिकारों के बिना लोकतान्त्रिक सिद्धान्त संचालित नहीं हो सकते हैं। सक्षेप में, मौलिक अधिकारों का निम्नलिखित महत्त्व

है-

1. लोकतन्त्र का आधार स्तम्भ (Pillar of Democracy)- मौलिक अधिकार लोकतन्त्र का आधार स्तम्भ है, क्योंकि ये ही उन परिस्थितयों का निर्माण करते हैं। जिनके आधार पर जन-इच्छा निर्मित एवं कार्यान्वित होती है। अन्य शब्दों में यदि व्यक्तियों को मौलिक अधिकार प्रदान नहीं किए जाते हैं तो वे अपनी इच्छा को अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं।

2. स्वतन्वता एवं नियन्त्रण में तालमेल (Harmony between Liberty and Control)-जहाँ एक ओ मौलिक अधिकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर ये सरकार द्वारा व्यक्ति पर लगा जाने वाले नियन्त्रणों को भी निर्धारित करते हैं। इस रूप में ये व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उस पर राज्य के नियन्त्रण के बीच तालमेल कायम करने का कार्य करते हैं।

3. सरकार की शक्तियों पर सीमाएँ (Limitations on Government's Powers) - मौलिक अधिका अनुल्लंघनीय होते हैं, क्योंकि इनका समावेश देश के सर्वोच्च कानून अर्थात् संविधान में किया गया है। करें भी सरकार इनका अतिक्रण नहीं कर सकती है। इस रूप में ये सरकार की शक्तियों को सीमित करते हैं। ए. एन. पालकीवाला के शब्दों में, "मौलिक अधिकार राज्य की सर्वाधिकारवादिता के विरुद्ध साधारण नागरिकों के सुरक्षा कवच हैं।"

4. दलीय तानाशाही का विरोध (Opposition to Party Dictatorship)- व्यावहार में लोकतन्त्र का अर्थ होता है- 'बहुमत का शासन'; न कि जनता का शासन। दलीय प्रणाली के विकास के कारण आज बहुमत के शासन ने बहुमत दल के शासन का रूप ले लिया है, जिसके निरंकुश होने की पूरी संभावना रहती है। मौलिक अधिकारों का उल्लंघन तो सत्तारूढ़ बहुमत दल भी नहीं कर सकता है। इस रूप में ये दलीय तानाशाही का विरोध करते हैं।

जीवन एवं दैहिक(व्यक्तिगत) स्वतन्त्रता का अधिकार (Right to Life and Personal Liberty)

भारतीय संविधान द्वारा व्यक्ति के जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गयी है। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा व्यक्ति के इस अधिकार को पवित्र अधिकार मानते हुए यह व्यवस्था की गयी है कि आपातकाल में भी व्यक्ति के इस अधिकार को निलम्बित नहीं किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार "किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित विधि (Procedure Established by Law) के अलावा जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में राज्य व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं कर सकता है।

भारत में व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित करने की व्यवस्था अमेरिका के संविधान में वर्णित व्यवस्था से एकदम भिन्न है, क्योंकि वहाँ इसके लिए 'कानून की उचित प्रक्रिया' (Due Process of Law) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अमेरिका में न्यायपालिका को किसी कानून के बारे में न केवल यह परीक्षण करने का अधिकार है कि वह संविधान के अनुरूप है या नहीं, बल्कि उसे यह भी परीक्षण करने का अधिकार है कि वह प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) के अनुरूप है या नहीं। यदि वहाँ कोई कानून संविधान का उल्लंघन नहीं करता है, किन्तु प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करता है, तो सर्वोच्च न्यायालय उसे अवैध घोषित कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि अमेरिका में न्यायपालिका विधानपालिका की शक्ति पर अंकुश लगाने का कार्य करती है।

भारत में स्थिति इसके विपरीत है, क्योंकि भारतीय संविधान में 'कानून की उचित प्रक्रिया' शब्दावली के स्थान पर 'कानून द्वारा स्थापित विधि' (Procedure Established by Law) शब्दावली का प्रयोग किया गया है। इसका निहितार्थ यह है कि यहाँ सर्वोच्च न्यायालय संसद या राज्य विधानमण्डल द्वारा निर्मित ऐसे किसी कानून को, जो संविधान का उल्लंघन न करता हो, भले ही वह नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध हो, अवैध घोषित नहीं कर सकता है। ए. के गोपालन बनाम मदास राज्य मुकदमे (1950) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना था कि अनुच्छेद 21 में 'कानन' शब्द का प्रयोग नैसर्गिक न्याय पर आधारित कानून के रूप में नहीं किया गया है, क्योंकि भारतीय संविधान में कहीं भी 'कानून' शब्द का अर्थ नैसर्गिक न्याय पर आधारित कानून से नहीं है। इसीलिए भारत में सर्वोच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निर्मित कानून की वैधता का परीक्षण इस आधार पर कर सकता है कि वह कानून किसी अधिकृत संस्था द्वारा बनाया गया है अथवा नहीं अर्थात उस कानून को बनाने का अधिकार

संसद या राज्य विधानमण्डल को प्राप्त है अथवा नहीं, भले ही उस कानून से व्यक्ति की दैहिक स्वतन्त्रता का अतिक्रमण होता है।

इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय को किसी कानून के सम्बन्ध में अन्य कोई अधिकार नहीं था अर्थात वह यह परीक्षण नहीं कर सकता था कि वह कानून न्यायोचित (Just), युक्तियुक्त (Reasonable) अथवा नैसर्गिक न्याय पर आधारित है अथवा नहीं। भारत में संविधान का अनुच्छेद 21 विधानपालिका की शक्ति पर नहीं; बल्कि कार्यपालिका की शक्ति पर अंकुश लगाता था. अर्थात यह कार्यपालिका को व्यक्ति के जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने से रोकता था, किन्तु विधान पालिका 'कानून द्वारा स्थापित विधि' को अपनाते हुए व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता से वंचित कर सकती थी।

आगे चलकर मेनका गाँधी बनाम भारत संघ मुकदमे (1978) में सर्वोच्च न्यायालय ने ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) में दिए गए अपने निर्णय को उलटते हुए यह निर्णय दिया कि वह विधि (Procedure), जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित किया जा रहा है, न्यायोचित (Just) युक्तियुक्त (Reasonable) एवं निष्पक्ष (Fair) होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वह कानून युक्तियुक्त निष्पक्ष एवं न्यायोचित नहीं है. तो उसके द्वारा व्यक्ति को अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन या दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार से वचित नहीं किया जा सकता है। तब से लेकर आज तक सर्वोच्च न्यायालय मेनका गाँधी मुकदमे में दिए गए निर्णय का अनुसरण कर रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जनता पार्टी सरकार द्वारा 1978 में संविधान में किए गए 44वें संशोधन और मेनका गाँधी बनाम भारत संघ मुकदमे (1978) में सर्वोच्च न्यायलय द्वारा दिए गए फैसले के बाद व्यक्ति का जीवन एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत सुरक्षित हो गया है।

निवारक नजरबन्दी अधिनियम (Preventive Detention Acts)

नजरबन्दी दो प्रकार की होती है— (1) दण्डात्मक नजरबन्दी (Punitive Detention) - जब किसी व्यक्ति को कोई अपराध किए जाने के कारण दण्ड के रूप में बन्दी बनाया जाता है. तो यह दण्डात्मक नजरबन्दी कहलाती है।

(ii) निवारक नजरबन्दी (Preventive Detention)— लेकिन जब किसी व्यक्ति को अपराध करने से पहले बन्दी बनाया जाता है ताकि उसको अपराध करने का अवसर ही न मिले, तो यह निवारक नजरबन्दी कहलाती है। निवारक नजरबन्दी का उद्देश्य व्यक्ति को अपराध करने से रोकना है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में निवारक नजरबन्दी की व्यवस्था की गयी है। निवारक नजरबन्दी संसद द्वारा बने किसी निवारक नजरबन्दी अधिनियम के तहत ही की जाती है। भारत में संसद ने समय-समय पर निवारक नजरबन्दी अधिनियमों का निर्माण किया है। इस प्रकार के अधिनियम सामान्य काल एवं आपातकाल दोनों में ही लागू किए जा सकते हैं। यहाँ ऐसे कुछ अधिनियमों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1. निवारक नजरबन्दी अधिनियम, 1950 (Preventive Detention Act, 1950)- संविधान के अनुच्छेद 22 में जिस निवारक नजरबन्दी का उल्लेख किया गया है. उसके तहत संसद ने सबसे पहले 1950 में एक वर्ष के लिए निवारक नजरबन्दी अधिनियम का निर्माण किया था। इस अधिनियम को 1951 1952 एवं 1953 में संशोधित विधेयकों के रूप में संसद द्वारा पारित किया गया। 1954 में इसे तीन वर्ष के लिए बनाया गया। इसके बाद प्रत्येक तीन वर्ष बाद अर्थात 1957 1960 1963 एवं 1966 में तीन-तीन वर्ष के लिए इसकी अवधि बढ़ायी जाती रही, किन्तु 1969 में संसद में कांग्रेस पार्टी को आवश्यक बहुमत प्राप्त न होने के कारण इस अधिनियम की अवधि नहीं बढ़ायी जा सकी। किन्तु अभी भी कई राज्य विधानमण्डलों द्वारा निर्मित निवारक नजरबन्दी कानून अस्तित्व में हैं।

2. आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम, 1971 (Maintenance of Internal Security Act-MISA 1971)-निवारक नजरबन्दी कानून की आवश्यकता को अनुभव करते हुए राष्ट्रपति ने 7 मई 1971 को 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अध्यादेश' जारी किया। इस अध्यादेश को जून, 1971 में आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम (MISA) का रूप दिया गया। इस अधिनियम के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति की नजरबन्दी की अधिकतम अवधि एक वर्ष रखी गयी थी। 25 जून. 1975 को आपातकाल की घोषणा के तुरन्त बाद 30 जून 1975 को इस अधिनियम में संशोधन के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया।

16 जुलाई, 1975 को राष्ट्रपति ने एक और अध्यादेश जारी किया, जिसके अनुसार मीसा के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति को प्राकृतिक कानून के नाम पर दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार की माँग करने से वंचित कर दिया गया। 26 जुलाई, 1975 को संसद द्वारा इन दोनों अध्यादेशों को अधिनियम में बदल दिया गया। 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' (MISA), 1975 के तहत बन्दी बनाए गए व्यक्ति को बिना कारण बताए एक वर्ष की जगह दो वर्ष तक जेल में रखा जा सकता था। 25 जून, 1975 को घोषित आपातकाल के दौरान इस अधिनियम का सरकार द्वारा व्यापक रूप से दुरुपयोग किया गया और इसके तहत विपक्ष के प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया गया। ऐसे में इस अधिनियम की कड़ी आलोचना की जाने लगी। आपातकाल की समाप्ति की घोषणा के बाद, जब मार्च, 1977 में आम चुनाव हुए, तो इस अवसर पर नव निर्मित जनता पार्टी ने यह वादा किया कि यदि उसे सरकार बनाने का मौका मिला, तो वह 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था अधिनियम' को समाप्त कर देगी।1977 मे जनता पार्टी सरकार ने इसे समाप्त करा दिया। इसे समाप्त कराने का विधेयक लोक सभा ने 19 जुलाई 1978 को और राज्य सभा ने 27 जुलाई, 1978 को पारित कर दिया। इस विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के बाद यह अधिनियम 1978 में समाप्त हो गया।

3. राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, 1980 (National Security Act, 1980)- जनता पार्टी सरकार के पतन के बाद जनवरी 1980 में हुए लोक सभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी बहुमत प्राप्त करके सत्ता में आयी और उसने 22 सितम्बर, 1980 को राष्ट्रपति से 'राष्ट्रीय सुरक्षा अध्यादेश' की घोषणा करायी। फरवरी 1981 में इस अध्यादेश को अधिनियम का रूप दे दिया गया। यह अधिनियम आज भी लागू है।

4. आतंकवाद एवं विध्वंसकारी गतिविधियाँ (निरोधक) अधिनियम, 1985 (Terrorist and Disruptive Activities (Preventive) Act, 1985) - पंजाब, जम्मू-कश्मीर एवं अन्य राज्यों में बढ़ रही आतंकवादी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए 'आतंकवाद एवं विध्वसंकारी गतिविधियाँ (निरोधक) अधिनियम' (TADA) 1985 निर्मित किया गया। यह अधिनियम अब तक के निवारक नजरबन्दी अधिनियमों में सर्वाधिक प्रभावी एवं कठोर था। इस अधिनियम को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी। सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने 11 मार्च 1994 को दिए अपने निर्णय में इस अधिनियम को वैध ठहराया, किन्तु पुलिस द्वारा इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए सरकार को इसमें कुछ संशोधन करने के निर्देश भी दिए। लेकिन अनेक राज्य सरकारों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जाता रहा। ऐसे में यह मांग की गयी कि 23 मई 1995 के बाद इस अधिनियम की अवधि न बढ़ायी जाए। इसके विरोध को देखते हुए इस अधिनियम की अवधि नहीं बढ़ायी गयी और यह स्वतः समाप्त हो गया।

5. आतंकवाद निरोधक अधिनियम, 2002 (Prevention of Terrorism Act-POTA, 2002) - देश में आतंकवाद के बढ़ते कदमों को रोकने के लिए राष्ट्रपति द्वारा 24 अक्टूबर, 2001 को 'आतंकवाद निरोधक अध्यादेश' (Prevention of Terrorism Ordinance) 2001 जारी किया गया। यह टाडा (TADA) का ही एक नवीन रूप था। इसमें सरकार को वही शक्तियाँ दी गयी थी, जो टाडा के तहत सरकार को प्राप्त थीं। इसके तहत पुलिस सन्देह के आधार पर किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती थी। यहाँ तक कि इसमें आतंकवाद-सम्बन्धी सूचना छिपाने वाले व्यक्ति को भी दण्ड देने का प्रावधान रखा गया था। इसके तहत गिरफ्तार व्यक्ति उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता था, लेकिन याचिका गिरफ्तारी के तीन माह बाद ही दायर की जा सकती थी। इसके तहत अपराधी को न्यूनतम पाँच वर्ष की कैद और अधिकतम मृत्यु दण्ड की सजा दी जा सकती थी। इसे राज्य सभा की स्वीकृति नहीं मिल पायी अतः इसको पारित करने के लिए संसद की 'संयुक्त बैठक' बुलायी गयी। इस बैठक में पारित होने और 2 अप्रैल, 2002 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के पश्चात् 'आतंकवाद निरोधक अधिनियम' (POTA) तुरन्त प्रभाव से लागू हो गया। 14वीं लोक सभा के चुनावों के पश्चात् सत्ता में आयी संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (IPA) सरकार ने 21 सितम्बर, 2004 को राष्ट्रपति द्वारा एक अध्यादेश जारी कराकर आतंकवाद निरोधक अधिनियम को समाप्त करा दिया।

मौलिक कर्त्तव्य (Fundamental Duties)

अनेक राज्यों के संविधानों में नागरिकों के मौलिक अधिकारों के साथ-साथ मौलिक कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है। साम्यवादी चीन के अतिरिक्त कई गैर-साम्यवादी देशों; जैसे-इटली, जापान एवं नीदरलैंड के संविधानों में भी नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। संविधान निर्माताओं द्वारा भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को तो शामिल किया गया था, लेकिन मौलिक कर्तव्यों को नहीं। 1976 में 42वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान के चौथे भाग में अनुच्छेद 51 (A) जोड़कर 10 मौलिक कर्तव्यों को सम्मिलित किया गया। 2002 में 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा एक और मौलिक कर्तव्य इनमें जोड़ दिया गया, जिसके कारण इनकी संख्या बढ़कर 11 हो गयी है। इन **मौलिक कर्तव्यों का वर्णन** इस प्रकार है-

1. संविधान का पालन करना और इसके आदर्शों एवं संस्थाओं, राष्ट्रीय झण्डे एवं राष्ट्रीय गान का सम्मान करना (To abide by the Constitution and respect its ideals and institution, the National Flag and the National Anthem) - 42वें संशोधन अधिनियम (1976) के द्वारा यह नागरिकों का मौलिक कर्तव्य निर्धारित कर दिया गया है कि वे देश के संविधान और इसके आदर्शों; जैसे-सम्प्रभुता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतन्त्र एवं विश्वबन्धुत्व का सम्मान करें।

2. स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में सँजोए रखना और उनका पालन करना (To cherish and follow the noble ideals which inspired our national struggle for freedom) - भारत लगभग 200 वर्षों तक अंग्रेजों के अधीन रहने के पश्चात् स्वतंत्र हुआ। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ आदर्शों पर आधारित था; जैसे-अहिंसा में विश्वास, संवैधानिक साधनों में विश्वास, धर्मनिरपेक्षता, भाईचारा, राष्ट्रीय एकता आदि। भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने इन उच्च आदर्शों से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन को जारी रखा था और अन्त में इसमें सफलता प्राप्त की थी। स्वतंत्र भारत में इन आदर्शों का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इन आदर्शों को आधार मानकर ही यहाँ राष्ट्र-निर्माण किया जा रहा है।

3. देश की प्रभुसत्ता, एकता एवं अखण्डता का संरक्षण करना (To uphold and protect the sovereignty unity and integrity of the country)- भारत में कुछ स्वार्थी लोगों ने प्रभुसत्ता एकता एवं अखण्डता को काफी हरि पहुंचायी है। इसीलिए यह नागरिकों का परम कर्तव्य बनता है कि वे इन आदशों की पूर्ण रूप से रक्षा करें।

4. देश की रक्षा करना और आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय सेवा करना (To defend the country and render national service, when called upon to do so)- अमेरिका एवं कई अन्य देशों में शारीरिक रूप से योग प्रत्येक नागरिक के लिए कुछ समय के लिए सैनिक सेवा करना अनिवार्य है किन्तु भारत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं को गयी थी। इसी कमी को पूरा करने के लिए मौलिक कर्तव्यों में यह अंकित किया गया है कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त है कि वह देश की रक्षा करे और जब कभी उसको कहा जाए, वह राष्ट्रीय सेवा भी करे।

5. नागरिकों में समरसता एवं बन्धुत्व की वृद्धि करना (To promote harmony and brotherhood among citizens) -हमारे देश में अनेक प्रकार की विविधताएँ देखने को मिलती हैं। कुछ स्वार्थी लोग इनका लाभ उठाने के लिय लोगों को आपस में लड़ाते रहते हैं। इसीलिए सभी नागरिकों का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि इन स्वार्थी लोगों क सामना करते हुए बन्धुत्व की भावना का विकास करें।

6. वैज्ञानिक मनोदशा, मानववाद, अन्वेषण एवं सुधार की भावना विकसित करना (To develop scientific temper, humanism and the spirit of investigation and reform)- आधुनिक युग विज्ञान का युग है किन भारत की अधिकांश जनता में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी है, जिस कारण यह अपने व्यक्तित्त्व का ठीक प्रकार से विकास नहीं कर पाती। देश का विकास तभी हो सकता है. जब भारतीय लोग साधु-संतों एवं जादू-टोनों के चक्कर में न पड़का प्रत्येक वस्तु को तर्क की दृष्टि से देखें। इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य तय किया गया है कि वह अपने अन्दर वैज्ञानिक स्वभाव, मानववाद एवं अन्वेषण करने और सुधार करने की भावना विकसित करे।

7. हमारी संयुक्त संस्कृति की शानदार परम्परा का सम्मान करना और उसे बनाए रखना (To value and preserve the rich heritage of our composite culture)- ब्रिटिश शासन काल में भारत की सस्कृति को नष्ट कसं का हर सम्भव

प्रयास किया गया था। पश्चिमी सभ्यता की तड़क-भड़क एवं शिक्षा के प्रभाव ने भारत के लोगों को पश्चिम का दास बनाकर रख दिया था किन्तु देश के स्वतन्त्र होने के बाद भी ये प्रभाव कम नहीं हुए। अब प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्थ तय कर दिया गया है कि वह देश की शानदार एवं मिली-जुली संस्कृति का सम्मान करे और उसे समृद्ध बनाने का प्रयास करें

8. वनों, झीलों, नदियों एवं जंगली जानवरों सहित राष्ट्रीय पर्यावरण की रक्षा करना और सजीव प्राणियों के प्रति दया विखाना (To protect and improve the national environment including forests, rivers and wild lift and to have compassion for living creatures)- वन, झौलें एवं नदियाँ प्रत्येक देश की प्राकृतिक सम्पदा होती हैं औ साथ ही देश की अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी भी। प्राकृतिक सम्पदाओं की रक्षा एवं सुधार करने से देश का विकास होता है और देश की जनता स्वस्थ वातावरण में अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। वन्य जीवन की रक्षा तभी हो सकती है यदि व्यक्ति जीव-जन्तुओं के प्रति करुणा की भावना रखें। इस कारण भारत के संविधान में इस मौलिक कर्तव्य को शामिल किया गया है।

9. सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना और हिंसा का परित्याग करना (To safeguard public property and to abjure violence) - सार्वजनिक सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर सम्पूर्ण देश की सम्पत्ति होती है औ इस नाते इसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होता है. किन्तु भारत में प्रायः यह देखने को मिलता है कि जब में सरकार के विरुद्ध कोई हड़ताल या आन्दोलन होता है. तो उसमें सार्वजनिक सम्पत्ति नष्ट की जाती है। चीन में सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का परम कर्तव्य है और जो नागरिक सार्वजनिक सम्पत्ति नष्ट करता है. उसे काँ सजा दी जाती है। भारत में राजनीतिक दल अथवा श्रमिक संघ अपनी माँगों को मनवाने के लिए हिंसा का प्रयोग करने में नहीं झिझकते, अतः मौलिक कर्तव्यों के भाग में प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य अंकित किया गया है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति की रक्षा करें और हिंसा का परित्याग करे।

10. व्यक्तिगत एवं सामूहिक गतिविधि के सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न करना, जिससे कि हमारा राष्ट्र परिश्रम एवं प्राप्ति के उच्चतर स्तर तक लगातार उन्नति करता रहे (To strive towards excellence in all spheres of individual and collective activity so that our nation constantly rises to higher levels of endeavour and achievement)- इस कर्तव्य के द्वारा नागरिकों में यह भावना विकसित करने का प्रयास किया गय है कि वे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न करें, ताकि देश का निरन्तर उत्थान होता रहे।

11. बच्चों की शिक्षा (Children Education)-86वें संशोधन अधिनियम (2002) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 51.4 में संशोधन करके एक नया खण्ड (K) जोड़ा गया है। इसमें 6 से 14 साल तक की आयु के बच्चों के माता-पिता या अभिभावक को अपने बच्चे को शिक्षा दिलाने के लिए अवसर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी है।

मौलिक कर्त्तव्यों की आलोचना (Criticism of Fundamental Duties)

भारत के संविधान में मौलिक कर्तव्यों को सम्मिलित किया जाना एक सराहनीय कार्य है क्योंकि इनके बिना संविधान में मौलिक अधिकारों का अस्तित्त्व पूर्ण रूप से विदित नहीं होता। इसके बावजूद भी, राजनीतिक विश्लेषकों द्वारा मौलिक कर्तव्यों की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएँ की गयी हैं-

1. समय (Timing)-जिस समय संविधान में 42वाँ संशोधन किया गया था. देश में आपातकाल लागू था और विरोधी दलों के प्रमुख नेता जेलों में बन्द थे। इतना ही नहीं, तब प्रेस पर भी कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे। अतः यह संशोधन तानाशाही के वातावरण में किया गया। इस पर न तो सार्वजनिक रूप से वाद-विवाद हुआ था और न ही सरकार द्वारा अनुच्छेद 51 (A) में वर्णित कर्तव्यों पर जनमत जानने का प्रयास किया गया था।

2. कुछ मौलिक कर्तव्य अस्पष्ट -(Some Fundamental Duties are Vague)- मौलिक कर्तव्यों में एक दोष यह है कि कुछ मौलिक कर्तव्यों का अर्थ स्पष्ट नहीं है; जैसे 'स्वतंत्रता संग्राम के आदर्श', 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण', 'मानववाद' 'अन्वेषण का दृष्टिकोण' एवं 'सामूहिक श्रेष्ठता' को प्राप्त करना आदि।

3. कुछ महत्त्वपूर्ण कर्तव्यों का अभाव (Absence of Some Significant Duties)- संसद के कुछ सदस्यों ने मौलिक कर्तव्यों में मंत्रियों, विधायकों एवं सार्वजनिक कर्मचारियों के कर्तव्यों को सम्मिलित करने पर जोर दिया था। इन सदस्यों का विचार था कि सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य मतदान, करों का ईमानदारी से भुगतान, अनिवार्य सैनिक प्रशिक्षण परिवार नियोजन आदि बातें मौलिक कर्तव्यों में शामिल की जाएं, किन्तु ऐसा नहीं किया गया।

4. इनकी व्यवस्था उचित स्थान पर नहीं (Their Provision Being Not at Proper Place)- कुछ विद्वानों का विचार है कि, यदि मौलिक कर्तव्यों को मौलिक अधिकारों वाले भाग तीन में शामिल किया जाता, तो अच्छा रहता किन्तु ऐसा नहीं किया गया और मौलिक कर्तव्य नीति-निर्देशक सिद्धान्तों वाले भाग चार के अन्त में रख दिए गए।

5. दण्ड का अभाव (Lack of Punishment)- संविधान में मौलिक कर्तव्यों का उल्लघन या अवहेलना करने की अवस्था में दण्ड देने का व्यवस्था नहीं की गयी है। इस बारे में 'स्वर्ण सिंह समिति' ने यह सुझाव दिया था कि मौलिक कर्तव्यों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के लिए दण्ड की व्यवस्था की जाए और इसके लिए संसद उचित कानूनों का निर्माण करे, किन्तु अभी तक भी यह कार्य नहीं हो पाया है।

मौलिक कर्त्तव्यों का महत्त्व

(Significance of Fundamental Duties)

मौलिक कर्तव्यों की अनेक आलोचना की गयी हैं, फिर भी, इनके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। कुल मिलाकर मौलिक कर्तव्यों का निम्नलिखित महत्व है-

1. मौलिक कर्तव्यों की सकारात्मक प्रकृति (Positive Nature of Fundamental Duties)- भारत के संविधान में दिए गए मौलिक कर्तव्य सकारात्मक प्रकृति वाले हैं, क्योंकि ये नागरिकों को राष्ट्र के प्रति कुछ करने के लिए प्रेरित करते हैं। इनसे नागरिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा और ये धीरे-धीरे मौलिक कर्तव्यों का पालन करने के अभ्यस्त हो जाएँगे।

2. नैतिक महत्त्व (Moral Significance)- भारत के संविधान में शामिल मौलिक कर्तव्यों का स्वरूप वैधानिक नहीं है. क्योंकि इनके पीछे कानूनी शक्ति नहीं; बल्कि नैतिक शक्ति है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नैतिक उपदेशों एवं आदशों से व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

3. विवादहीन आदर्श (Non-Controversial Ideals) – भारतीय संविधान में सम्मिलित किए गए मौलिक कर्तव्य विवादहीन हैं. क्योंकि इनको लेकर राजनीतिक दलों में मतभेद नहीं है। ये भारत की संस्कृति के अनुकूल हैं। इनमें से अधिकांश कर्तव्यों का उल्लेख हमारे धार्मिक ग्रन्थों में मिलता है। सभी विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि मौलिक कर्तव्य का पालन देश की प्रगति के लिए आवश्यक है।

4. संविधान के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक (Helpful in Achieving the Objectives of the Constitution) - भारत के संविधान की प्रस्तावना में समानता, स्वतंत्रता बन्धुत्व, न्याय राष्ट्रीय एकता, अखण्डता आदि संविधान के मुख्य उद्देश्य बताए गए हैं। ऐसा समझा जाता है कि मौलिक कर्तव्य इन उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होंगे।

5. मनोवैज्ञानिक महत्त्व (Psychological Significance)- भारतीय संविधान में मौलिक कर्तव्यों को जोड़ने में नागरिकों के मन एवं मस्तिष्क पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण नागरिकों में कर्तव्य एवं भाईचारे के प्रति रुझान में बढ़ोत्तरी हुई है। इस दृष्टि से मौलिक कर्तव्य नागरिकों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)- अन्त में यह कहा जा सकता है कि संविधान में मौलिक कर्तव्यों को शामिल करने का मनोवैज्ञानिक महत्त्व ही नहीं है. बल्कि संविधान में इनका उल्लेख कर देने से इनकी पवित्रता एवं मान्यता बढ़ी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के विशेष लक्षणों का वर्णन कीजिए। (Discuss the special features of Fundamental Rights as given in the Indian Constitution.)

2. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों के स्वरूप का वर्णन करें। (Discuss the nature of Fundamental Rights given in the Constitution of India.)

3. "भारत का संविधान एक हाथ से मौलिक अधिकार देता है और दूसरे से छीन लेता है।" आप इस कथन में किस हद तक सहमत है?

("The Constitution of India gives Fundamental Rights with one hand and takes away with the other." How far do you agree with this statement ?)

4. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।

(Discuss the salient features of Fundamental Rights, incorporated in the Constitution of India.)

5. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

(Give a critical estimate of the Fundamental Rights incorporated in the Indian Constitution.)

6. भारतीय संविधान में दिए गए मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक अध्ययन कीजिए। क्या संसद इन अधिकारों को सीमित कर सकती है?

(Make a critical study of Fundamental Rights, given in the Indian Constitution. Can Parliament

abridge them?)

7. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक अधिकारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (Critically examine the Fundamental Rights given in the Constitution of India.)

8. भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों का वर्णन कीजिए। क्या ये अधिकार असीमित है?

(Discuss the Fundamental Rights, given in the Indian constitution. Are these rights absolute?)

9. भारतीय संविधान में अंकित मौलिक कर्तव्यों की आलोचनात्मक व्याख्या करें।

(Critically discuss the Fundamental Duties enshrined in the Indian Constitution.)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त [Directive Principles of State Policy]

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्गीकरण (Classification of Directive Principles of State Policy)

भारतीय संविधान के **चौथे भाग में अनुच्छेद 36 — 51** तक राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। यद्यपि मौलिक अधिकारों की भांति, संविधान में नीति-निर्देशक सिद्धांतों को विभिन्न वर्गों में विभाजित नहीं किया गया है, लेकिन सुविधा के लिए इनको निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. **समाजवादी सिद्धांत** (Socialis Principles)- इस श्रेणी में वे निर्देशक सिद्धांत रखे जा सकते हैं, जिनका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। संविधान के अनुच्छेद 38, 39, 41, 42 एवं 43 में दिए गए सिद्धांतों की गिनती इसी श्रेणी में की जाती है। अनुच्छेद 38 के द्वारा राज्य को देश के अन्दर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय पर आधारित व्यवस्था कायम करने का निर्देश दिया गया है।

अनुच्छेद 39 के अनुसार, राज्य अपनी नीति इस प्रकार तय करेगा, जिससे कि-

(i) सभी नागरिकों को समान रूप से जीवन निर्वाह के उपयुक्त साधन प्राप्त हो सकें।

(ii) समाज के भौतिक संसाधनों के स्वामित्व एवं नियंत्रण का न्यायोचित वितरण हो सके।

(iii) सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों के केन्द्रीकरण को रोका जा सके।

(iv) महिलाओं एवं पुरुषों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिलने का प्रावधान किया जा सके।

(v) बच्चों को शोषण से मुक्ति दिलायी जा सके और उनका संरक्षण किया जा सके।

अनुच्छेद 41 के अनुसार, राज्य अपनी सार्मथ्य के अनुसार बेकारी, बुढ़ापा एवं बीमारी से पीड़ित लोगों को सहा देने का प्रबंध करेगा।

अनुच्छेद 42 के अनुसार, राज्य महिलाओं के लिए काम की उचित परिस्थितियां कायम करेगा और इनको सहायता उपलब्ध कराएगा।

42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा इस अनुच्छेद में कुछ और बातों को जोड़ा गया है; जैसे कमजोर वर्ग लिए निःशुल्क कानूनी सहायता और औद्योगिक संस्थाओं के प्रबंधन में कर्मचारियों की भागीदारी।

2. **गांधीवादी सिद्धांत** (Gandhian Principles)- राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों पर गांधी जी के विचारों सबसे अधिक प्रभाव दिखायी देता है। संविधान निर्माताओं ने गांधीवाद को व्यावहारिक रूप देने के लिए अनेक बातें निर्देशक सिद्धांतों में शामिल किया; जैसे-

अनुच्छेद 40 के अनुसार, "राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करेगा और इन्हें स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में शक्ति प्रदान करेगा।

अनुच्छेद 43 के अनुसार, "राज्य ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों की उन्नति के लिए हर संभव प्रयत्न करेगा।

अनुच्छेद 46 के अनुसार, "राज्य समाज के दुर्बल वर्गों-विशेष रूप से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए शिक्षा एवं आर्थिक उन्नति के लिए प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 47 के अनुसार, "राज्य लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विकास के लिए प्रयास करेगा। इसके लिए राज्य औषधि के प्रयोग के अतिरिक्त मादक द्रव्यों (नशीले पदार्थों) के सेवन पर प्रतिबन्ध लगाएगा।

अनुच्छेद 48 के अनुसार, "राज्य कृषि एवं पशुपालन उद्योग को वैज्ञानिक आधार पर संगठित करने का प्रयास करेगा ।राज्य दूध देने वाले पशुओं के वध पर रोक लगाएगा और पशुओं की नस्ल सुधारने का प्रयास करेगा।

3. उदारवादी सिद्धांत (Liberal Principles)- संविधान में वर्णित प्रमुख उदारवादी निर्देशक सिद्धांत इस प्रकार हैं— अनुच्छेद 44 के अनुसार, राज्य सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) लागू करने का हर संभव प्रयास करेगा।

अनुच्छेद 45 के अनुसार, "राज्य 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने में प्रबंध करेगा।"

अनुच्छेद 50 के अनुसार, "राज्य कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करने का प्रयत्न करेगा।"

4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध-संबंधी सिद्धांत (Principles related with International Relations) - संविधान के अनुच्छेद 51 के अनुसार, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देगा; राज्यों के बीच न्याय एवं सम्मानजनक संबंधों को बनाए रखने की कोशिश करेगा; अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों एवं संधियों का पूरा सम्मान करेगा और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए पंच फैसलों का उपयोग करेगा।

5. अन्य सिद्धांत (Other Principles)- राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित कुछ अनुच्छेदों का उल्लेख इस श्रेणी तहत किया जा सकता है। उदाहरण के लिए **अनुच्छेद 49 के अनुसा**र, "राज्य की यह जिम्मेदारी होगी कि वह ऐतिहासिक एवं कलात्मक महत्त्व के स्मारकों, वस्तुओं एवं स्थानों, जिन्हें भारतीय संसद राष्ट्रीय महत्व का घोषित करे, की देखभाल करेगा। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा संविधान के अनुच्छेद 48 (A) में यह व्यवस्था की गयी है कि केन्द्र एवं राज्य सरकारें पर्यावरण की सुरक्षा के लिए। संभव प्रयत्न करेंगी। 44वें संशोधन अधिनियम (1978) में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य लोगों की आय सामाजिक स्तर, सुविधाओं एवं अवसरों-संबंधी भेदभाव को कम करने का प्रयत्न करेगा।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की आलोचना (Criticism of Directive Principles of State Policy)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों के मुख्य आलोचकों में के.सी. व्हीयर, श्रीनिवासन, आईवर जैनिंग्स, ग्लैडहिल, के. टी. शाह आदि का नाम लिया जाता है। प्रो. के. टी. शाह ने इन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "नीति-निर्देशक सिद्धांत उस चैक के समान हैं, जिसका भुगतान बैंक की सुविधा पर छोड़ दिया गया है।" के.सी व्हीयर के मतानुसार, *नीति-निर्देशक सिद्धांत लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के घोषणा-पत्र से थोड़ा-सा बढ़कर हैं। इन विद्वानों ने निम्नलिखित आधारों पर राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्तों की आलोचना की है-

1. कानूनी शक्ति का अभाव (Lack of Legal Sanction)- राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों का प्रमुख दोष कानूनी शक्ति का अभाव है। संविधान के अनुच्छेद 37 के अनुसार राज्य नीति के निर्देशक सिद्धातों को न्यायालय द्वारा लागू नहीं करवाया जा सकता है।

2. साधनों की उपेक्षा (Means Ignored)- सर आइवर जैनिंग्स ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत केवल उद्देश्यों की व्याख्या करते हैं, इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनों की नहीं। उदाहरण के लिए वर्तमान में राज्य के पास इतने संसाधन नहीं है कि बेकारी, बुढ़ापा एवं बीमारी से पीड़ित लोगों को पर्याप्त सहायता दी जा सके।

3. केवल खोखले वादे एवं पवित्र भावनाएं (Mere Empty Promises and Pious Wishes)- के. सी. व्हीयर के अनुसार, राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत लक्ष्यों एवं आकांक्षाओं के घोषणा-पत्र से अधिक कुछ नहीं है। व्हीयर के अनुसार संविधान में किसी ऐसी वस्तु की व्यवस्था नहीं की जानी चाहिए, जो न्यायसंगत न हो, क्योंकि संविधान में केवल उन बातों का ही उल्लेख होना चाहिए, जिनका कोई कानूनी महत्व हो।

4. ससद की सर्वोच्चता के विरुद्ध (Against the Supremacy of Parliament) — राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत

भारतीय संसद की सम्प्रभुता के अनुकूल नहीं है, क्योंकि कोई भी संस्था संसद को कोई निर्देश नहीं दे सकती है। निर्देश सदैव उच्चतर द्वारा अधीनस्थों को दिए जाते हैं। संसद को कानन बनाने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह जरूरी नहीं है जिन बातों को संविधान निर्माताओं ने श्रेष्ठ एवं आदर्श माना, आज भी जनता उन बातों को आदर्श माने। इसीलिए वर्तमान समय में संसद को स्वतंत्रतापूर्वक कानून बनाने का अधिकार होना चाहिए।

5. अस्पष्ट एवं अक्रमबद्ध (Vague and Unsystematic)- संविधान में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को क्रमबद्ध एवं स्पष्ट तरीके से नहीं लिखा गया है। उदाहरण के लिए स्मारकों के संरक्षण, जैसी बात को सामाजिक एवं आर्थिक मामलों के साथ जोड़ दिया गया है। इनकी कोई निश्चित एवं तर्कसंगत विचारधारा भी नहीं है क्योंकि एक ही भाग (अध्याय) में परस्पर विरोधी विचारधाराओं समाजवाद, उदारवाद एवं गांधीवाद को शामिल किया गया है। श्रीनिवासन के अनुसार ये सिद्धांत बहुत अधिक अनिश्चित एवं अस्पष्ट हैं।

6. मौलिक अधिकारों एवं निर्देशक सिद्धांतों में द्वंद्व की संभावना (Possibility of Conflict between Fundamental Rights and Directive Principles) - भारत में मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धातों में द्वन्द्व या टकराव की स्थिति बनी रहती है। अनेक बार संसद ने इन सिद्धान्तों की मौलिक अधिकारों के ऊपर सर्वोच्चता स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इनके ऊपर मौलिक अधिकारों की सर्वोच्चत स्थापित की।

7. अनावश्यक (Unnecessary)- यदि हम कानूनी व्यावहारिक एवं उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो इनके संविधान में होने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है। अतः इनको अनावश्यक रूप से संविधान में शामिल किया गया है।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की उपयोगिता (Utility of Directive Principles of State Policy)

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धातों को महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानने वाले विद्वानों में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, न्यायमूर्ति एच.एन. सप्रू, एम.वी. पायली, ग्रेनविल आस्टिन एवं एम.सी. छागला के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों के अनुसार नीति-निर्देशक सिद्धांतों की निम्नलिखित उपयोगिता है-

1. सरकारों के लिए मार्ग-दर्शक (Guidelines for Governments)- यह सत्य है कि नीति-निर्देशक सिद्धांत के पीछे कानूनी शक्ति नहीं है। किन्तु ये सिद्धांत सरकारों के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं। अनुच्छेद 37 में इसे 'शासन के सर्वोच्च आदेश' बताया गया है। क्योंकि ये सिद्धांत जनता के हित में हैं, इसलिए इन्हें जनता का समर्थन प्राप्त है। कोई भी सत्तारूढ़ दल इन्हें नजरअंदाज नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा करने पर वह अगले चुनावों में पर्याप्त वोट प्राप्त नहीं कर सकेगा।

2. नीति-निर्देशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की शक्ति (Directive Principles are backed by Public Opinion)- निःसंदेह नीति-निर्देशक सिद्धांत न्यायसंगत नहीं हैं, किन्तु इनके पीछे जनमत की शक्ति है। जनता इन सिद्धांतों के पक्ष में है, क्योंकि इन सिद्धांतों को लागू करने से जनता का कल्याण होता है। वस्तुतः कोई भी सरकार जनमत की अवहेलना नहीं कर सकती है क्योंकि यदि वह ऐसा करेगी, तो जनता ऐसी सरकार को हटा देगी।

3. सामाजिक क्रांति का आधार (Basis of Social Revolution)- नीति-निर्देशक सिद्धांत सामाजिक क्रांति का आधार हैं, क्योंकि ये भारत की जनता को सकारात्मक स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। ये लोगों को विषम परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रेरित करते हैं। इन्हीं सिद्धांतों के मार्ग दर्शन में सरकार ने जनता के सर्वांगीण विकास के लिए प्रयास किए हैं।

4. कल्याणकारी राज्य के उद्भव की संभावना (Possibility of the Emergence of Welfare State)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों के आर्थिक पक्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश सिद्धांतों का उद्देश्य देश में कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है। जस्टिस एच. एन. सप्रू के शब्दों में "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में वह समस्त दर्शन मौजूद है, जिसके आधार पर किसी भी आधुनिक समाज में कल्याणकारी राज्य की नींव रखी जा सकती है।"

5. अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण (Important from International View-point)- नीति-निर्देशक सिद्धांत अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। संविधान के अनुच्छेद 51 में दिए गए नीति-निर्देशक सिद्धांतों पर भारत की गुट निरपेक्षत की नीति

आधारित है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने में भारत की इस नीति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

6. नागरिकों के लिए एक पैमाना (A Yardstick for Citizens)- नीति-निर्देशक सिद्धान्तों की उपयोगिता इस बात में भी है कि ये नागरिकों के लिए वह कसौटी बन जाते हैं, जो उनके मताधिकार के प्रयोग की दिशा निश्चित करती है। चुनाव से पूर्व सभी राजनीतिक दल मतदाताओं के सामने चुनाव घोषणा-पत्रों द्वारा अपना-अपना कार्यक्रम रखते हैं। जनता नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के आधार पर किसी भी राजनीतिक दल को परख सकती हैं।

7. संविधान की व्याख्या के लिए सहायक (Helpful for the Interpretation of the Constitution)- न्यायपालिका ने संविधान की व्याख्या करते समय नीति-निर्देशक सिद्धांतों को दृष्टि में रखा है। न्यायपालिका ने सदैव इन सिद्धांतों को संविधान-निर्माताओं एवं सम्पूर्ण राष्ट्र की इच्छा का प्रतीक माना है। ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य मुकदमे (1950) के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस कानिया ने कहा था, "राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांत संविधान के भाग हैं। इस कारण ये संपूर्ण राष्ट्र के विवेक के प्रतीक हैं; न कि बहुमत दल की इच्छा के प्रतीक। इन्हें उस संविधान सभा द्वारा प्रकट किया गया है, जिसको संपूर्ण देश के लिए सर्वोच्च एवं स्थायी कानून बनाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया था।"

8. शैक्षणिक महत्व (Educational Significance)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों की विभिन्न विद्वानों ने तरह-तरह की आलोचनाएं की हैं लेकिन इसके बावजूद भी अनेक देशों के संविधानों में इस तरह के सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। भारतीय संविधान में भी इन सिद्धांतों को महत्व दिया गया है क्योंकि ये सिद्धांत केन्द्र एवं राज्य सरकारों का मार्ग-दर्शन करते हैं।

9. सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना (Establishment of Social and Economic Democracy)- नीति-निर्देशक सिद्धांतों में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र का आदर्श छिपा है। ये देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना का प्रमुख साधन हैं। देश में तब तक राजनीतिक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता है, जब तक कि सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र साकार न हो जाए।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के पीछे जनमत की शक्ति है। इसी कारण सरकार ने अनेक नीति-निर्देशक सिद्धांतों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया किन्तु आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण इनका सफल क्रियान्वयन नहीं हो पाया।

राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों का क्रियान्वयन (Implementation of Directive of Principles State Policy)

26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के पश्चात् केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए अनेक कदम उठाए; जैसे-

1. 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गयी, जिससे कि देश का नियोजित तरीके से विकास हो सके। इस आयोग द्वारा निर्मित पंच वर्षीय योजनाओं का उद्देश्य सामाजिक आर्थिक न्याय की प्राप्ति और आय, प्रतिष्ठा एवं अवसर की असमानताओं को कम करना है।

2. सभी राज्यों में भूमि सुधार कानून निर्मित किए गए, जिससे कि कृषकों की स्थिति में सुधार हो सके; जैसे- (1) बिचौलियों, जैसे -जमींदार, जागीरदार, इनामदार आदि की समाप्ति।

(ii) भूमि सीमांकन व्यवस्था।

(iii) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण।

3. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, (1948), बोनस अधिनियम (1965), ठेका श्रम (विनियमन एवं उत्पादन) अधिनियम (1970) बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम (1986), बलात् श्रम पद्धति (उत्पादन) अधिनियम (1976), कारखाना

अधिनियम (1948) खान अधिनियम (1952) आदि को श्रमिक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया। 2006 में सरकार ने बाल श्रम पर प्रतिबंध लगा दिया।

4. सामान्य वस्तुओं के प्रोत्साहन हेतु वित्तीय संसाधनों के प्रयोग के लिए कुछ पैमाने तय किए गए। इनमें शामिल है-जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण (1956), 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969) सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण (1971), शाही खर्च (प्रिवी पर्सा) की समाप्ति (1971) आदि।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों की स्थापना के लिए खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग लघु उद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम हैंडलूम बोर्ड हथकरघा बोर्ड. सिल्क बोर्ड आदि की स्थापना की गयी।

6. त्रि-स्तरीय (ग्राम, खण्ड एवं जिला) पंचायती राज व्यवस्था लागू की गयी, ताकि गांधी जी का सपना साकार हो सके। 73वें संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया।

7. शैक्षणिक संस्थानों सरकारी नौकरियों एवं जन प्रतिनिधि संस्थाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए सीटें आरक्षित की गयीं।

8. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को प्रभाई बनाया गया ताकि इन्हें शोषण से मुक्ति एवं सामाजिक न्याय मिले।

9. 65वें संशोधन अधिनियम (1990) के तहत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गयी, ताकि इनके हितों की रक्षा हो सके। 89वें संशोधन अधिनियम, (2003) द्वारा इस संयुक्त आयोग को दो पृथक निकायों अर्थात् राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में विभक्त किया गया।

10. महिला कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए प्रसूति सुविधा अधिनियम (1961) और समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) बनाए गए।

11. कई राज्यों में 65 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए वृद्धावस्था पेंशन शुरू की गयी।

12. राष्ट्रीय स्तर पर विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, (1987) का निर्माण किया गया ताकि गरीबों को निःशुल्क एवं समुचित कानूनी सहायता प्राप्त हो सके। इसके अलावा, समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए लोक अदाल का गठन किया गया। लोक अदालतें ऐसे संवैधानिक फोरम हैं, जो कानूनी विवादों का निपटारा करती हैं। इनके निर्णय बाध्यकारी होते हैं और इनके निर्णयों के विरुद्ध किसी न्यायालय में अपील नहीं की जाती है।

13. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) द्वारा कार्यकारिणी को विधिक सेवा से पृथक किया गया। इससे पूर्व जिल प्राधिकारी, जैसे-जिलाधीश, उप-मंडल अधिकारी, तहसीलदार आदि विधिक शक्तियों का प्रयोग करते थेा विधिक शक्तियों को कार्यकारी शक्तियों से अलग कर न्यायिक मजिस्ट्रेटों के हाथों में सौंप दिया गया।

14. कुछ राज्यों में गायों, बछड़ों एवं बैलों के वध पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया; जैसे महाराष्ट्र एवं हरियाणा।

15. वन्य जीवों एवं वनों की सुरक्षा के लिए वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम (1972) एवं वन (सरक्षण) अधिनियम, (1980) को प्रभावी बनाया गया। जल एवं वायु अधिनियमों के तहत केन्द्र एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए गए, जो पर्यावरण की सुरक्षा एवं सुधार के लिए कार्यरत हैं।

16. सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए देश भर में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र एवं अस्पताल स्थापित किए गए। इसके अलावा, खतरनाक बीमारियों; जैसे मलेरिया, तपेदिक, कुष्ठ, एड्स, कैंसर, फाइलेरिया, जापानी बुखा आदि को समाप्त करने के लिए विशेष योजनाएं प्रारंभ की गयीं।

17. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1974), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1978). जवाहर रोजगार योजना (1989), स्वर्ण जयंती ग्राम स्व-रोजगार योजना (1999) संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (2006) आदि कार्यक्रम मानक जीवर जीने के उद्देश्य से प्रारंभ किए गए।

18. सरकार द्वारा अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए गुट निरपेक्षता एवं पंचशील को नीतिय अपनायी गयीं।

19. 86वें संशोधन अधिनियम (2002) के अन्तर्गत सरकार द्वारा 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गयी। हरियाणा में लड़कियों के लिए निःशुल्क स्नातक शिक्ष की व्यवस्था की गयी। इतना ही नहीं. देश भर में छोटे बच्चों के लिए निःशुल्क दोपहर के भोजन की योजन लागू की गयी।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपर्युक्त कदम उठाए जाने के बावजूद भी, नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्रभावी तरीके से लागू नहीं किया जा सका है।

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर (Difference between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy)

यदि मौलिक अधिकारों के माध्यम से संविधान निर्माताओं ने देश में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना की आशा की थी तो राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों द्वारा वे देश में आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। इस दृष्टि से मौलिक अधिकार एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक है। इसके बावजूद भी मौलिक अधिकारों एवं राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों में निम्नलिखित अन्तर पाए जाते हैं-

1. नीति-निर्देशक सिद्धांत सकारात्मक निर्देश हैं; जब कि मौलिक अधिकार नकारात्मक आज्ञाएं हैं (Directive Principles are positive direction whereas Fundamental Rights are negative injunctions) - मौलिक अधिकार निषेधात्मक हैं, क्योंकि ये राज्य को कुछ विशिष्ठ काम काम करने से रोकते हैं। संविधान के अनुसार राज्य मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं कर सकता है। इसके विपरीत राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत सकारात्मक निर्देश हैं। ये राज्य का कुछ काम करने के लिए मार्ग-दर्शन करते हैं।

2. मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं, नीति-निर्देशक सिद्धांत नहीं (Fundamental Rights are justiciable, Directive Principles are not)- मौलिक अधिकार न्यायसंगत हैं अर्थात् ये न्यायालयों द्वारा लागू किए जा सकते है, किन्तु नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के पीछे न्यायालयों की शक्ति नहीं है। मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड दिया जाता है। यदि कोई कानून या शासकीय आदेश मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायपालिका उसे असंवैधानिक घोषित कर देती है। इसके विपरीत, यदि सरकार नीति-निर्देशक सिद्धांतों में दिए गए उपबंधों को लागू करने में असफल रहती है, तो इसके विरुद्ध कोई कानून कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

3. मौलिक अधिकार व्यक्तियों के अधिकार हैं, जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य के कर्तव्य हैं (Fundamental Rights are rights of people whereas Directive Principles are duties of State)- मौलिक अधिकारों एवं नीति-निर्देशक सिद्धांतों में एक भेद यह भी है कि मौलिक अधिकार व्यक्तियों, नागरिकों अथवा व्यक्ति-समूहों के अधिकार हैं, जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा पूरा किए जाने वाले कर्तव्य हैं। अन्य शब्दों में, मौलिक अधिकार व्यक्ति को प्राप्त कुछ निश्चित सुविधाएं हैं; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा अपनाए जाने वाले सिद्धांत हैं अर्थात् राज्य से इनके पालन की आशा की जाती है।

4. मौलिक अधिकार प्राप्त किए जा चुके हैं; किन्तु नीति-निर्देशक सिद्धांतों को प्राप्त करना अभी बाकी है (Fundamental Rights have already been attained but Directive Principles are yet to be achieved)- मौलिक अधिकार लोगों को प्राप्त हो चुके हैं; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांत अभी तक लोगों को पूरी तरह प्राप्त नहीं हुए हैं। सरकार नीति-निर्देशक सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास कर रही है और इस दिशा में उसने कुछ उल्लेखनीय प्रयास भी किए हैं;

जैसे जमींदारी प्रथा का उन्मूलन, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना, बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, कृषि का विकास, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका का एक-दूसरे से पृथक्करण आदि।

5. मौलिक अधिकारों का लक्ष्य राजनीतिक लोकतंत्र है; जब कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों का लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र है (Fundamental Rights aim at Political Democracy whereas Directive Principles aim at Economic Democracy) - मौलिक अधिकारों का उद्देश्य देश में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। इसके विपरीत नीति-निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना करते हुए आर्थिक लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाना है ताकि देश में सही अर्थ में राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हो सके।

6. नीति-निर्देशक सिद्धांत मौलिक अधिकारों की अपेक्षा गौण है (Directive Principles are Secondan to Fundamental Rights) - नीति-निर्देशक सिद्धांत एवं मौलिक अधिकारों का कानूनी दृष्टि से अध्ययन करने पर विशि होता है कि वर्तमान में नीति-निर्देशक सिद्धांत मौलिक अधिकारों की अपेक्षा गौण हैं, क्योंकि दोनों में पारस्परिक विवाद की स्थिति में मौलिक अधिकार ही प्रभावकारी होंगे।

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में प्राथमिकता का प्रश्न

(Question of Preference between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy)

मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में गतिरोध होने पर किसको प्राथमिकता दी जाए? यह एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न है। समाजवादी विचारधारा के मानने वालों का विचार है कि मौलिक अधिकारों की अपेक्षा राज्य के निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसके विपरीत उदारवादी विचारधारा के समर्थकों न्यायमूर्ति एच आर, खन्ना, के, सन्धानम, एन. ए. पालकीवाला आदि का विचार है कि नीति-निर्देशक सिद्धांतों की अपेक्षा मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता दी जाए अन्यथा देश में तानाशाही एवं सर्वाधिकारवादी शासन की स्थापना हो जाएगी। संविधान सभा ने भी बहुमत के फैसले से सर बी.एन राव, जो राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को प्राथमिकता देते थे. के परामर्श को अस्वीकार कर दिया था। भारतीय संविधान में इस बात का उल्लेख नहीं किया गया है कि इन दोनों में टकराव की स्थिति में दोनों में से किसको प्राथमिकता दी जाएगी। यही कारण है कि इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण समय-समय पर बदलता रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों ने प्रथम चरण में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों की अपेक्षा मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता दी है। इस संदर्भ में न्यायालयों द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया था कि यदि नीति-निर्देशक सिद्धांत एवं मौलिक अधिकारों के मध्य टकराव हो, तो नीति निर्देशक सिद्धांतों को तभी तक महत्व दिया जा सकता है, जब तक कि ऐसा करने से मौलिक अधिकारों का हनन न होता हो। न्यायमूर्ति सी.आर. दास ने चम्पाकम दोरायजन बनाम मदास राज्य मुकदमे (1951) में फैसला देते हुए कहा था, "राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत, जिन्हें स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 37 द्वारा न्यायालयों में वाद-योग्य नहीं माना गया है, संविधान के तीसरे भाग में दिए गए उपबंधों का अतिक्रमण नहीं करते।

सर्वोच्च न्यायालय की संविधान की यह व्याख्या भूमि सुधार अधिनियमों के क्रियान्वयन में देरी कर सकती थी। संविधान में 1951 में पहला. 1955 में चौथा और 1964 में 17वाँ संशोधन किया गया। किन्तु गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य मुकदमे (1967) में तो सर्वोच्च न्यायालय ने यह तक निर्णय दे दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन ही नहीं कर सकती है। इसके आधार पर केन्द्र सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों बैंकों का राष्ट्रीयकरण एवं भूतपूर्व जागीरदारों के प्रिवी पर्सेज की समाप्ति को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध घोषित कर दिया। ऐसे में संसद को संविधान में 24वां, 25वा एवं 29वां संशोधन करना पड़ा। 24वें संशोधन अधिनियम (1971) में संसद को मौलिक अधिकार सहित संविधान के किसी में भाग में संशोधन करने का अधिकार दिया गया।

1971 में संसद ने 25वें संशोधन अधिनियम के द्वारा अनुच्छेद 39 (3) एवं (ब) में निहित निर्देशक सिद्धांतों को अनुच्छे 14, 19 एवं 31 में वर्णित मौलिक अधिकारों की अपेक्षा प्राथमिकता प्रदान की, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती मुकदमे (1973) में यह फैसला दिया कि संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है, किन्तु यह 'संविधान के मूलभूत ढांचे'

(Basic Structure of the Constitution) में संशोधन नहीं कर सकती है। न्यायालय ने यह भी माना कि 25वाँ संशोधन संविधान के मूलभूत ढांचे के अन्तर्गत नहीं आता है।

आपातकाल के दौरान लाए गए 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा नीति-निर्देशक सिद्धांतों (भाग IV) की संविधान के अनुच्छेद 14 , 19 एवं 31में वर्णित क्रमशः समानता, स्वतंत्रता एवं सम्पत्ति के मौलिक अधिकारों पर श्रेष्ठता स्थापित की गयी किन्तु मिनर्वा मिल्स मुकदमे (1980) में सर्वोच्च न्यायालय ने 42वें संशोधन अधिनियम की इस व्यवस्था को अनुच्छेद 14, 19 एवं 31 में दिए गए मौलिक अधिकारों को गौण बनाती थी अवैध घोषित कर दिया। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से नीति-निर्देशक सिद्धांतों की तुलना में मौलिक अधिकारों को प्राथमिकता मिल गयी। स्पष्ट है कि जब तक सर्वोच्च न्यायालय अपने इस निर्णय को नहीं बदलता, तब तक नीति-निर्देशक सिद्धान्तों पर मौलिक अधिकारों की प्राथमिकता स्थापित रहेगी।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के महत्व एवं उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

(Discuss the importance and utility of the Directive Principles of State Policy.)

2. भारतीय संविधान में अंकित नीति-निर्देशक सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए। (Explain the Directive Principles mentioned in the Indian Constitution.)

3. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। किस सीमा तक इनको लागू किया गया है? (Critically examine the Directive Principles of State Policy. How far have they been implemented?)

4. मौलिक अधिकारों एवं राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर बताइए। क्या निर्देशक सिद्धांतों को मौलिक अधिकारों से श्रेष्ठता दी जा सकती है? (Make a distinction between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Can Directive Principles be given precedence over Fundamental Rights?)

5. मौलिक अधिकारों एवं निर्देशक सिद्धांतों में अन्तर बताएं। महत्वपूर्ण निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन करें। (Distinguish between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy. Enumerate important Directive Principles.)

6. राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धांतों के स्वरूप एवं उपयोगिता का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। नीति-निर्देशक सिद्धांतों को लागू करने के लिए कौन-से कदम उठाए गए है? (Briefly explain the nature and utility of Directive Principles of State Policy. What steps have been taken for the implementation of directive principles?)

7. "निर्देशक सिद्धान्तों का कोई महत्व नहीं है" क्या आप इस विचार से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें। (इसमें नीति निर्देशक सिद्धांतों की आलोचना भी लिखनी है।)

UNIT-III

राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति [President and Vice-President]

[*राष्ट्रपति*]

भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 53** के अनुसार, **"संघ की कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी और संविधान के अनुसार इनका प्रयोग उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाएगा।"**

राष्ट्रपति का चुनाव (Election of the President)

संविधान के अनुच्छेद 54 एवं 55 के अनुसार राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है, क्योंकि उसका चुनाव एक निर्वाचक मंडल (Electoral College) द्वारा किया जाता है। राष्ट्रपति का निर्वाचन समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (System Prepositional Represention) के अनुसार एकल संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 54 के अनुसार इस निर्वाचकमंडल में — (i) संसद के निर्वाचित सदस्य (ii) राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य एवं (iii) संघीय क्षेत्रों (केंद्र शासित प्रदेशों) की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होंगे।

1. योग्यताएं (Qualifications)- संविधान के अनुच्छेद 58 के अनुसार, राष्ट्रपति पद के लिए निम्नलिखित योग्यताएं होना आवश्यक है-

(क) वह भारत का नागरिक हो।

(ख) वह 35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

(ग) वह लोक सभा के सदस्य का चुनाव लड़ने की योग्यता रखता हो।

(घ) वह लाभ के किसी पद (अन्य संवैधानिक या सरकारी पद) पर आसीन न हो,

(ङ) वह संसद या किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होना चाहिए। यदि निर्वाचन से पूर्व वह इनमें से किसी एक का सदस्य है, तो निर्वाचन की तिथि से उस सदन में उसका स्थान रिक्त माना जाएगा।

(च) इन योग्यताओं के अतिरिक्त, 7 जून, 1997 को राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश जारी करके यह व्यवस्था की कि उम्मीदवार का नाम निर्वाचक मण्डल के 50 सदस्यों द्वारा प्रस्तावित और 50 सदस्यों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, जमानत की राशि 2500 रुपए से बढ़ाकर 15,000 रुपए कर दी गयी।

2. निर्वाचकों के मतों के मूल्य का निर्धारण (Determination of the Value of Votes of Electors)— संविधान-निर्माता राष्ट्रपति को कार्यपालिका अध्यक्ष नहीं, बल्कि समस्त राष्ट्र का प्रतिनिधि बनाना चाहते थे। इसके लिए यह आवश्यक था कि चुनाव में भाग लेने वाले विधान सभाओं के सदस्यों और संसद के सदस्यों के मतों में समानता स्थापित हो और यथासंभव सभी राज्यों को समरूप प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। यदि राष्ट्रपति के चुनाव में 'एक व्यक्ति-एक मत' का सिद्धांत अपनाया जाता, तो यह संभव नहीं था, क्योंकि **प्रथम**, तो सभी राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की संख्या समान नहीं है; और **द्वितीय**, सभी राज्य विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या, संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या से बहुत अधिक है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए **अनुच्छेद 55** के अन्तर्गत राज्य विधान सभाओं के सदस्यों और संसद के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value) निर्धारित करने के लिए दो अलग-अलग विधियां अपनायी गयी है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(i) राज्य विधान सभा के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value of the Vote of Members of a State Legislative Assembly)- इसके लिए संविधान में जो व्यवस्था की गयी है, वह इस प्रकार है-

सर्वप्रथम उस राज्य की जनसंख्या को राज्य विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से विभाजित (Divide) किया जाएगा। इस विभाजन से जो भागफल (Quotient) आएगा, उसे 1000 की संख्या से विभाजित किया जाएगा। इस विभाजन जो परिणाम आएगा, वह राज्य विधान सभा के एक सदस्य (विधायक) के मत का मूल्य (Value) होगा।

इस विधि को निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है-

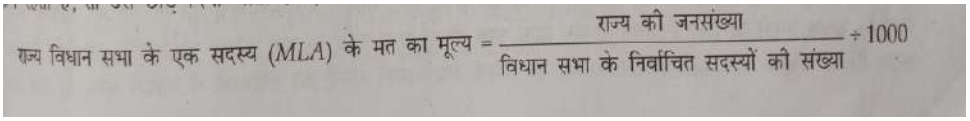

(ii) संसद के सदस्यों के मतों का मूल्य (Value of the Vote of Members of Parliament)- इसके लिए संविधान में जो व्यवस्था की गयी है, वह इस प्रकार है-
सबसे पहले सभी राज्य विधान सभाओं और संघीय क्षेत्रों की विधान सभाओं के सभी निर्वाचित सदस्यों के मूल्यों का जोड किया जाएगा और फिर इसको संसद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से विभाजित किया जाएगा। ऐसा करने पर जो संख्या प्राप्त होगी, वह संसद के एक सदस्य के मत (वोट) का मूल्य (Value) होगा।

इस विधि को निम्नलिखित सूत्र द्वारा दर्शाया जा सकता है —

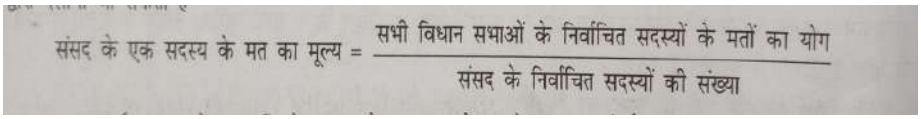

हम जुलाई, 2017 के राष्ट्रपति के चुनाव के उदाहरण से इसको समझ सकते हैं। जुलाई, 2017 में सम्पन्न राष्ट्रपति के चुनाव के समय भारत के 29 राज्यों एवं दो संघीय क्षेत्रों (दिल्ली एवं पुद्दुचेरी) को विधान सभाओं के सदस्यों के मतों का कुल योग 5,49,495 था और संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या 776 थी। इन आंकड़ों पर उपर्युक्त सूत्र प्रकार लागू हुआ-

संसद के एक सदस्य के मत का मूल्य — 549495/776 = 708.085 अर्थात 708

इस प्रकार जुलाई, 2017 के राष्ट्रपति के चुनाव के समय संसद के निर्वाचित सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 708 को 776 से गुणा करने पर, 549408 था। इसमें दो संघीय क्षेत्र सहित सभी विधान सभाओं के सदस्यों के मतों का कुल मूल्य 549495 जोड़ देने पर राष्ट्रपति के निर्वाचकमडल में शामिल सदस्यों के मतों का मूल्य 10,98,900 बनता था।

3. अधूरे निर्वाचकमंडल का चुनाव पर प्रभाव (Impact of Incomplete Electoral College on the Election)- अधूरे निर्वाचक मंडल का राष्ट्रपति के चुनाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । **निर्वाचक मंडल का अर्थ** है कि — किसी विधानसभा की या संसद की कोई सीट खाली हो तो निर्वाचक मंडल अधूरा होता है। सर्वोच्च्च न्यायालय की सात-सदस्य खंडपीठ ने 5 जून, 1974 को यह निर्णय दिया कि राष्ट्रपति के चुनाव को इस आधार पर न तो स्थगित किया जा सकता है और न ही अवैध ठहराया जा सकता है, क्योंकि पदासीन राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व नए राष्ट्रपति का चुनाव कराना जरूरी है।

4. मतदान (Polling) — राष्ट्रपति का चुनाव भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा कराया जाता है। इसके लिए राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से लगभग दो महीने पूर्व निर्वाचन आयोग द्वारा चुनाव की घोषणा की जाती है, चुनाव कराने के लिए निर्वाचन आयोग लोक सभा अथवा राज्य सभा के महा सचिव को रिटर्निंग ऑफिसर नियुक्त करता है। मतदान के दिन सभी विधान सभाओं के सदस्य अपने-अपने राज्यों की राजधानी में मतदान करते हैं, जब कि संसद सदस्य नई दिल्ली में मतदान करते हैं। मत-पत्रों पर प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वरीयताएं (Preferences) अंकित होती हैं, ताकि मतदाता उम्मीदवारों के पक्ष में अपनी वरीयताएं दर्शा सकें।

5. मतगणना (Counting of Votes)- राष्ट्रपति के चुनाव के लिए समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत प्रणाली लागू की गयी है। आम तौर पर, इसका प्रयोग बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों के लिए किया जाता है। राष्ट्रपति के चुनाव के लिए इस प्रणाली को इसलिए अपनाया गया है ताकि निर्वाचित होने वाला उम्मीदवार बास्तव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर सके। राष्ट्रपति के चुनाव में विजयी रहे उम्मीदवार को मतों की एक निश्चित संख्या (Quota) प्राप्त करनी

होती है, जिसको निम्नलिखित ***हेयर सूत्र*** के द्वारा तय किया जाता है-

$$\text{मतों की निश्चित संख्या } (Quota) = \frac{\text{वैध मतों की संख्या}}{\text{स्थानों की संख्या} + 1} + 1$$

यदि वैध मतों की संख्या 20,000 है, तो इस सूत्र के आधार पर निर्वाचित होने वाले उम्मीदवार को कम-से-कम 10001 मत अवश्य प्राप्त करने होंगे।
इसके बाद मतों की गणना का कार्य आरम्भ होता है। इसके लिए सबसे पहले उम्मीदवारों को मिली प्रथम वरीयताओं (Preferences) की गणना की जाती है। यदि प्रथम वरीयताओं के आधार पर कोई उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त कर लेता है, तो उसको विजयी घोषित कर दिया जाता है। किन्तु यदि प्रथम वरीयताओं के आधार पर कोई भी उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त नहीं करता है, तो सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को प्रतियोगिता से बाहर करके उसके मतों को दूसरी वरीयताओं के आधार पर शेष उम्मीदवारों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है और शेष उम्मीदवारों को प्राप्त प्रथम एवं द्वितीय वरीयताओं को जोड़ दिया जाता है। यदि अभी भी कोई उम्मीदवार मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त करने में सफल नहीं रहता है, तो पुनः सबसे कम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार को प्रतियोगिता से बाहर करके उसके मतों को तीसरी वरीयताओं के आधार पर शेष उम्मीदवारों को हस्तान्तरित करके, शेष उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की गणना की जाती है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है, जब तक किसी उम्मीदवार को मतों की निश्चित संख्या (कोटा) प्राप्त नहीं हो जाती है।

6. जुलाई, 2022 का चुनाव (Election of July, 2022)-17वें राष्ट्रपति (16वां कार्यकाल) का चुनाव 18 जुल्य 2022 को सम्पन्न हुआ। इस चुनाव में दो उम्मीदवार मैदान में थे-राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की श्रीमती द्रोपदी मुर्मु एवं संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन (UPA) के श्री यशवन्त सिन्हा। नियमानुसार इस चुनाव में विजयी होने वाले उम्मीदवार को 50 प्रतिशत से अधिक मूल्य के मत प्राप्त करने थे। अतः श्रीमती द्रोपदी मुर्मु विजयी घोषित को गयी, क्योंकि इन्हें 64.03 प्रतिशत और इनके प्रतिद्वन्द्वी श्री यशवन्त सिन्हा को 35.97 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे।

7. चुनाव पद्धति में दोष (Demerits in the Election Method)— राष्ट्रपति की चुनाव में कुछ दोष इस प्रकार हैं, जैसे-

(i) समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू नहीं (No Implementation of Proportional Representation System) — कुछ लोगों का मत है कि राष्ट्रपति के चुना में समानुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रयोग ही नहीं होता है, क्योंकि इस प्रणाली का प्रयोग बहु-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों (Multi-Members Constitutencies में किया जाता है; एकल-सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में नहीं।

(ii) अलोकतांत्रिक पद्धति (Un-democratic Method) - भारत में राष्ट्रपति का चुनाव एक निर्वाचकमंडल द्वारा किया जाता है, जिसमें संसद, सभी राज्यों और संघीय क्षेत्रों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल हो हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति के चुनाव में भारत की जनता भाग नहीं लेती है, इसलिए यह पद्धति अलोकतांत्रिक पद्धति है।

(ii) अस्पष्ट पद्धति (Ambiguous Method)- कुछ विद्वानों का मानना है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति में कुछ बातें सष्ट नहीं की गयी हैं। उदाहरण के लिए यदि राष्ट्रपति के चुनाव में चार-पाच उम्मीदवार मैदान में हों और पहली वरीयताओं के आधार पर कोई भी उम्मीदवार मतों का कोटा प्राप्त न कर सके और मतदाताओं ने अपना दूसरी वरीयताएँ मत-पत्र में अंकित न की हो, तो तब क्या किया जाएगा? यह बात स्पष्ट नहीं की गयी है।

(iv) जटिल पद्धति (Complex Method)- राष्ट्रपति के चुनाव में प्रयुक्त की जाने वाली पद्धति अत्यन्त जटिल है। यह पद्धति आमतौर पर जनता को समझ नहीं आ पाती है। इसके अलावा हर बार राष्ट्रपति के चुनाव में कुछ मत अवैध हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जुलाई, 2002 और जुलाई, 2007 के चुनावों में क्रमशः 174 एवं 74 मत अवैध पाए गए थे।

8. चुनाव-संबंधी विवाद (Dispute concerning Election)- राष्ट्रपति के चुनाव को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

9. पुनःनिर्वाचन (Re-election)- संविधान के अनुच्छेद 57 के अनुसार राष्ट्रपति पद पर आसीन रह चुका व्यक्ति अथवा पदासीन व्यक्ति, राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव लड़ सकता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने दो बार राष्ट्रपति पद धारण करके इस परम्परा को प्रारम्भ किया कि एक व्यक्ति दो बार राष्ट्रपति का चुनाव लड़ सकता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के बाद जो भी भारत के राष्ट्रपति रहे, किसी ने फिर से चुनाव नहीं लड़ा।

शपथ (Oath) - संविधान के अनुच्छेद 60 के अनुसार राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने वाले व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के सामने निम्नलिखित शपथ लेनी होती है-

वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances)- राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएं समय-समय पर संसद द्वारा तय किए जाते हैं। 1 फरवरी, 2018 को संसद द्वारा लिए गए निर्णय के अनुसार वर्तमान में राष्ट्रपति को ₹5,00,000 मासिक वेतन मिलता है। राष्ट्रपति को रहने के लिए निःशुल्क आवास (राष्ट्रपति भवन) और ₹ 300,000 वार्षिक निजी सचिवालय के भते के रूप में भी दिए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति को ₹ 250,000 मासिक पेंशन भी देय है। राष्ट्रपति को वेतन एवं भते भारत की सचित निधि (Consolidated Fund) से दिए जाते हैं।

विशेषाधिकार (Privileges)- राष्ट्रपति अपने दायित्वों का ठीक से निर्वहन कर सके, इसके लिए उसे निम्नलिखित विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं-
1. राष्ट्रपति को उसके कार्यकाल में किसी आपराधिक मामले में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।
2. राष्ट्रपति के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति का उस पर कोई दावा है. तो उस व्यक्ति को दो माह पूर्व नोटिस देकर राष्ट्रपति को सूचित करना होगा।
3. राष्ट्रपति अपने अधिकारों एवं शक्तियों के प्रयोग के लिए किसी न्यायपालिका के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

कार्यकाल (Term of Office)- राष्ट्रपति का चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 56(1) के अनुसार उसका कार्यकाल पदभार ग्रहण करने के दिन से शुरू होता है। राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व नए राष्ट्रपति का चुनाव कराना आवश्यक है, ताकि नया राष्ट्रपति, पदासीन राष्ट्रपति का कार्यकाल पूरा होने से पूर्व पदभार ग्रहण कर सके, किन्तु कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी, नए राष्ट्रपति के शपथ लेने तक राष्ट्रपति अपने पद पर बना रह सकता है। राष्ट्रपति चाहे तो अपना कार्यकाल पूरा होने से पूर्व भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है या फिर संसद अनुच्छेद 56 के तहत उसके विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ कर सकती है।

महाभियोग प्रक्रिया (Impeachment Process) – संविधान के अनुच्छेद 56 के तहत संसद 'संविधान का उल्लंघन' करने पर राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करके उसे अपदस्थ कर सकती है। संविधान के अनुच्छेद 61 में महाभियोग प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो निम्नलिखित दो चरणों में पूरी होती है-

1. राष्ट्रपति के विरुद्ध लाए जाने वाले महाभियोग प्रस्ताव पर अभियोग लगाने वाले सदन की समस्त सदस्य-संख्या के कम-से-कम एक-चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिएं। उल्लेखनीय है कि इस प्रस्ताव को किसी भी सदन में प्रस्तुत करने के लिए राष्ट्रपति को कम-से-कम 14 दिन का नोटिस दिया जाना जरूरी है। 14 दिन के बाद महाभियोग लगाने वाले सदन के पटल पर इस प्रस्ताव पर विचार किया जाता है। यह प्रस्ताव उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से पारित होना चाहिए।

2. प्रथम सदन द्वारा महाभियोग प्रस्ताव पारित होने के पश्चात् इसको दूसरे सदन को भेजा जाता है। दूसरा सदन महाभियोग लगाए गए कारणों की जांच या तो स्वयं करता है या इस कार्य के लिए एक विशेष समिति की नियुक्ति कर सकता है। इस सदन में राष्ट्रपति या तो स्वयं उपस्थित होकर या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है। यदि इस सदन में राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाए आरोप सिद्ध हो जाते हैं और सदन अपनी कुल सदस्य-संख्या के कम-से-कम दो-तिहाई बहुमत से

महाभियोग प्रस्ताव स्वीकार कर देता है, तो राष्ट्रपति को अपने पद से तत्काल हटना होता है। भारत में अभी तक किसी भी राष्ट्रपति के विरुद्ध महाभियोग प्रस्ताव पारित नहीं हुआ है।

उत्तराधिकार (Succession) - संविधान के अनुच्छेद 62 (1) के अनुसार राष्ट्रपति का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व ही इस पद के लिए निर्वाचन किया जाना चाहिए। किन्तु यदि यह पद राष्ट्रपति की आकस्मिक मृत्यु के कारण अथवा उसके त्याग-पत्र दिए जाने के कारण या फिर संसद द्वारा उसके विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित हो जाने के कारण रिक्त हो जाता है, तो अनुच्छद 65(1) के अनुसार कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में उप-राष्ट्रपति इस पद पर आसीन हो जाता है। यदि उस समय उप-राष्ट्रपति का पद भी रिक्त चल रहा हो, तो सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश इस पद पर आसीन होता है। ऐसी स्थिति में, पद खाली होने के छः माह के भीतर निर्वाचन कराकर राष्ट्रपति पद को पुनः भरा जाता है। राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन के आकस्मिक निधन के उपरान्त राष्ट्रपति के पद पर कार्यरत उप-राष्ट्रपति वी.वी. गिरि द्वारा 20 जुलाई, 1969 को अपने पद से त्याग-पत्र देने के बाद सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जस्टिस एम. हिदायतुल्ला राष्ट्रपति का चुनाव होने तक इस पद पर आसीन रहे थे।

राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कार्य

राज्य के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति को संविधान द्वारा शक्तियां प्रदान की गयी है राष्ट्रपति की शक्तियों को निम्नलिखित दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते है

सामान्यकालीन शक्तियां :- राष्ट्रपति की (i) संकटकालीन शक्तियों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है :-

(A) कार्यपालिका एवं प्रशासनिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 53 में संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और संविधान के अनुसार इनका प्रयोग उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाएगा।

- उच्च अधिकारियों की नियुक्ति :- कार्यपालिका अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति अनेक उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है वह प्रधानमंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों राज्यपाल, महान्यायवादी, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों आदि और भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों की नियुक्ति करता है। इन आयोगों में नीति आयोग, निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग भाषा आदि आयोग शामिल है।

- प्रशासन संबंधी शक्तियां :- अमेरिका के राष्ट्रपति की भाँति भारत के राष्ट्रपति को प्रशासनिक शक्तियां प्रदान नहीं की गयी है किंतु प्रशासन का औपचारिक मुखिया होने के नाते, भारतीय संघ का प्रशासन उसके नाम से चलाया जाता है प्रशासनिक विभागों के अधिकारियों की नियुक्ति करता है। संक्षेप में राष्ट्रपति देश के प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है।

• राज्य सरकारों को निर्देश :- राष्ट्रपति राज्य सरकारों को कानून के उचित पालन और राष्ट्रीय एवं सैनिक महत्व के विषयों की सुरक्षा के लिए आवश्यक निर्देश दे सकता है।

• संघीय क्षेत्रों के प्रशासन पर नियंत्रण :- संविधान के अनुसार संघीय क्षेत्रों के प्रशासन राष्ट्रपति को दिया जाता है क्योंकि ये क्षेत्र केंद्र द्वारा शासित होते हैं।

• सैनिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 53(2) के अनुसार राष्ट्रपति भारतीय सेनाओं का मुख्य सेनापति है। किंतु वह इस शक्ति का प्रयोग कानून के अनुसार करता है। राष्ट्रपति सेना के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। वह राष्ट्रीय रक्षा समिति का अध्यक्ष होता है।

2. वैधानिक शक्तियां :- संविधान के अनुच्छेद 79 के अनुसार राष्ट्रपति संसद का अभिन्न अंग है। राज्य सभा, लोकसभा एवं राष्ट्रपति तीनों से मिलकर संसद का निर्माण होता है। राष्ट्रपति की वैधानिक शक्तियां निम्नलिखित रूप से है-

(i) संसद का अधिवेशन आहूत करना :- संविधान के अनुच्छेद 85 के तहत राष्ट्रपति संसद के प्रथम अधिवेशन आहूत करता है वह संसद के अधिवेशनों की समाप्ति भी करता है।

(ii) संसद में राष्ट्रपति का अभिभाषण :- संविधान के अनुच्छेद 87 के तहत राष्ट्रपति प्रति वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशनों के प्रारंभ में दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करता है राष्ट्रपति का भाषण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें

शासन संबंधी नीतियों का उल्लेख होता है।

(iii) अध्यादेश की घोषणा :- अनुच्छेद 123(1) के अधीन जब संसद का अधिवेशन न चल रहा तो राष्ट्रपति अध्यादेश की घोषणा कर सकता है यदि ऐसा करना आवश्यक है उसके द्वारा जारी अध्यादेश को कानून जैसी शक्ति प्राप्त होती है।

(iv) विधेयकों की स्वीकृति :- संविधान के अनुच्छेद 111 में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के बाद भी कोई विधेयक तब तक कानून का रूप ग्रहण नहीं करता जब तक राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति प्रदान न कर दे। राष्ट्रपति चाहे तो किसी विधेयक को अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर सकता है, परंतु राष्ट्रपति की निषेधाधिकार की शक्ति निरपेक्ष नहीं है।

(v) लोकसभा का विघटन :- संविधान के अनुच्छेद 85 द्वारा राष्ट्रपति को कार्यकाल पूरा होने से पूर्व लोक सभा को भंग करने की शक्ति प्रदान की गई है राष्ट्रपति यह कार्य प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ही करता है राष्ट्रपति द्वारा इस शक्ति का कई बार प्रयोग किया जा चुका है। उदाहरण के लिए 27 दिसंबर 1970 में राष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने प्रधान मंत्री के परामर्श पर लोक सभा भंग कर दी थी

3. वित्तीय शक्तियां :- राष्ट्रपति को वित्तीय क्षेत्र में भी कई महत्वपूर्ण शक्तियां प्राप्त है जैसे :

(i) बजट का प्रस्तुतीकरण :- राष्ट्रपति का कार्य यह है वह वित्तीय वर्ष प्रारंभ होने से पूर्व वित्त मंत्री द्वारा बजट एवं पूरक बजट संसद के समक्ष प्रस्तुत कराए। ये बजट बारी-बारी से संसद दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किए जाते

DELTA Pg No.

वित्त आयोग की नियुक्ति :- राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद २४० के अनुसार प्रत्येक पांच वर्ष में एक आयोग नियुक्त करने की शक्ति है जो राज्य की वित्तीय व्यवस्था का निर्धारण करता है

(iii) धन विधेयक को पूर्व स्वीकृति :- संविधान के अनुसार सरकार को धन विधेयक को संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी होती है क्योंकि सरकार को देश की संचित निधि से धन निकालने के लिए राष्ट्रपति ही स्वीकृति देता है।

4. न्यायिक शक्तियां :- न्यायिक शक्तियां निम्न-लिखित प्रकार से है

(i) राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीशों एवं अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है।

(ii) राष्ट्रपति सैनिक न्यायालय द्वारा दिए गए दण्ड के सभी मामलों में जहां पर किसी ऐसे कानून के विरुद्ध दिया गया हो जो संघ के क्षेत्राधिकार में आता है।

(iii) अनुच्छेद 143 के तहत राष्ट्रपति सार्वजनिक महत्व के किसी प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांग सकता है।

5. राज्यों से संबंधित शक्तियां :- (i) यदि कोई संसद कोई ऐसा कर लगाने जा रही है जो राज्यों को प्रभावित करता हो तो संसद के लिए राष्ट्रपति से इसकी पूर्व-स्वीकृति लेना आवश्यक है।

(ii) राष्ट्रपति किसी राज्य सरकार को उन विषयों से संबंधित सौंप सकता है जो सामान्यतः केंद्र सरकार को करने होते हैं

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियाँ
(Emergency Powers of President)

⇒ देश को कभी भी संकट का सामना करना पड़ सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियाँ प्रदान की।

राष्ट्रपति निम्न स्थितियों में संकट काल की घोषणा कर सकता है —

1) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट के समय (अनुच्छेद 352)

2) राज्यों में संवैधानिक तंत्र/मशीनरी के विफल होने पर उत्पन्न संकट के समय (अनुच्छेद 356)

3) वित्तीय संकट की स्थिति में (अनुच्छेद 360)

1) युद्ध, बाहरी आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से उत्पन्न संकट → (अनुच्छेद 352) में यह प्रावधान है कि यदि राष्ट्रपति को ऐसा लगे कि युद्ध, बाहरी आक्रमण या आंतरिक गड़बड़ी के कारण देश में या देश के किसी भाग में संकट उत्पन्न हो गया है या संकट उत्पन्न होने की संभावना है, तो वह संकट काल की घोषणा कर सकता है। ऐसी घोषणा करने पर राष्ट्रपति को कुछ विशेष शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

- 1978 से पहले 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द के स्थान पर आंतरिक गड़बड़ी शब्द था।
- 1978 में 44वें संविधान संशोधन द्वारा 'आंतरिक गड़बड़ी' शब्द को हटाया गया और उसके स्थान पर 'सशस्त्र विद्रोह' शब्द लिखा गया।

44वें संशोधन के बाद से अनुच्छेद 352 के तहत घोषित संकट काल या आपात काल के बारे में प्रमुख बातें इस प्रकार हैं -

i) राष्ट्रपति संकट काल की घोषणा मंत्रिमंडल की लिखित सलाह पर ही कर सकता है।

ii) इस घोषणा का 1 महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग विशेष बहुमत (कुल सदस्य संख्या के स्पष्ट बहुमत और उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई (2/3) बहुमत) से अनुमोदन किया जाना आवश्यक है।
यदि लोक सभा भंग है, तो राज्य-सभा अपनी स्वीकृति प्रदान करेगी। नयी लोक-सभा बनने पर लोक-सभा का प्रथम अधिवेशन प्रारंभ होने के 30 दिन के भीतर लोक सभा द्वारा इस घोषणा को स्वीकृति देना जरूरी है, अन्यथा यह स्वतः समाप्त हो जाती है।

iii) संकट काल की घोषणा संपूर्ण देश में या इसके किसी भाग में की जा सकती है।

iv) संकटकालीन घोषणा 6 महीने के लिए प्रभावी होती है, परंतु संसद प्रस्ताव पारित करके इस अवधि को 6 महीने के लिए बढ़ा सकती है।

v) संकट काल को समाप्त करना → संकटकालीन घोषणा समाप्त करने के लिए लोक-सभा के 1/10 सदस्यों की मांग पर 14 दिन के भीतर उसकी बैठक बुलाई जाएगी। यदि लोक सभा साधारण बहुमत से संकटकालीन घोषणा समाप्त करने-संबंधी प्रस्ताव को पारित कर दे, तो यह घोषणा समाप्त हो जाएगी।

vi) 44वें संशोधन अधिनियम के तहत संकट काल की घोषणा को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

अनुच्छेद 352 के तहत संकटकालीन/आपातकालीन घोषणा के प्रभाव -

i) संकट काल में संसद लोक सभा का कार्यकाल बढा सकती है, यह एक साल के लिए बढाया जा सकता है और आपातकाल समाप्त होने के बाद 6 महीने तक जारी रह सकता है।

ii) संसद को राज्य सूची में दिए गए विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। हालाँकि राज्य विधानमंडल निलंबित नहीं होते हैं।

iii) 44वें संशोधन अधिनियम (1978) के अनुसार 'युद्ध' अनु. 358 के अंतर्गत अथवा 'बाहरी आक्रमण' के आधार पर घोषित आपात या संकट काल की स्थिति में ही अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रताएँ निलंबित होती है। और किसी आधार पर नहीं।

iv) 44वें संशोधन से पहले अनु. 359 के अंतर्गत संकट काल के दौरान नागरिकों के मौलिक अधिकार प्रभावहीन हो जाते थे। व्यक्ति इन्हें लागू करवाने के लिए न्यायपालिका का सहारा नहीं ले सकता था। परंतु अब 44वें संशोधन के अनुसार अनुच्छेद 20 एवं 21 में वर्णित अधिकारों के क्रियान्वयन को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति अब संकट काल के दौरान इनके क्रियान्वयन के लिए न्यायपालिका का सहारा ले सकता है।

v) राष्ट्रपति राज्य सरकारों को कार्यकारिणी शक्ति के प्रयोग के विषय में आवश्यक निर्देश दे सकता है।

अब तक तीन बार इस प्रकार के आपात काल/संकट काल (Emergency) की घोषणा की गई है -

i) 1962 में भारत-चीन युद्ध के समय (1968 (जनवरी) तक जारी रहा
ii) 1971 में भारत-पाक युद्ध के समय (3 Dec 1971 - 21 मार्च 1977)
iii) 25 जून 1975 को की गई - 21 मार्च 1977 तक जारी रही।

2) राज्यों में संवैधानिक तंत्र / मशीनरी के विफल होने पर संकट (Emergency Arising out of failure of Constitutional Machinery in a State) - (इस घोषणा के तहत जुड़ी हुई शक्ति को 'राष्ट्रपति शासन' भी कहा जाता है।)

⇒ संविधान के अनुच्छेद 356 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को राज्यपाल की रिपोर्ट या किसी अन्य स्त्रोत से यह विश्वास हो जाए कि - राज्य में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि शासन संविधान के उपबंधों या प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा सकता है, तो वह उस राज्य में संकट काल / आपात काल की घोषणा कर सकता है।

संकट काल की घोषणा होने पर राज्य सरकार भंग कर दी जाती है और राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू हो जाता है।

- इस घोषणा को दो महीने के भीतर संसद के दोनों सदनों के द्वारा स्वीकृति मिलना आवश्यक है, अन्यथा यह 2 महीने बाद अपने आप ही समाप्त हो जाएगी।
- यह घोषणा 6 महीने के लिए लागू रहती है लेकिन संसद इसे प्रस्ताव पास करके 6 महीने के लिए बढ़ा भी सकती है।

  अतः यह घोषणा एक वर्ष तक लागू रह सकती है।
- युद्ध, बाहरी आक्रमण आदि की स्थिति में अगर अनुच्छेद 352 लागू है तथा चुनाव आयोग यह प्रमाणित कर दे कि राज्य में अभी चुनाव करवाने संभव नहीं है, तो यह घोषणा 1 साल से अधिक भी जारी रह सकती है।

अनु. 365 के अंतर्गत यदि राज्य सरकार केंद्र सरकार के निर्देशों का पालन न करे या इन्हें लागू करने में असफल रहे तो

तो राष्ट्रपति उस राज्य सरकार को भंग करते हुए संकट काल की घोषणा कर सकता है।

घोषणा की प्रभाव → अनुच्छेद 356 के अंतर्गत की गई संकट काल की घोषणा प्रभाव निम्नलिखित हैं —

1) राष्ट्रपति उस राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में ले सकता है।

2) राष्ट्रपति यह घोषणा कर सकता है कि राज्य विधानमंडल की शक्तियाँ संसद द्वारा प्रयोग की जाएंगी।

3) जब संसद का अधिवेशन न चल रहा हो तो, राष्ट्रपति राज्य की संचित निधि (Consolidated fund) से खर्च करने का आदेश दे सकता है, किंतु ऐसे व्यय की मंजूरी संसद से लेना आवश्यक है।

4) राष्ट्रपति राज्य कर्मचारियों को विशेष दायित्व सौंप सकता है।

→ अनु. 356 के अंतर्गत की गई संकट काल की घोषणा को उच्च न्यायालय अथवा सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

वित्तीय संकट →

अनु. 360 के अनुसार यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गयी है, कि देश की वित्तीय स्थिरता अथवा साख को खतरा उत्पन्न हो गया है, तो वह वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है।

→ संसद द्वारा इस घोषणा की स्वीकृति 2 महीने के अंदर की जानी चाहिए।

→ यदि इस समय लोक सभा भंग कर दी गई हो, तो राज्य सभा इसे अपनी स्वीकृति दे सकती है।

→ नई लोक सभा की प्रथम बैठक के पहले 30 दिनों में इस घोषणा की स्वीकृति अनिवार्य है।

घोषणा के प्रभाव –

i) राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट तथा हाई कोर्ट के जजों सहित सरकारी कर्मचारियों के वेतन में कटौती का आदेश जारी कर सकता है।

ii) राष्ट्रपति राज्यों को ऐसे निर्देशों का पालन करने के लिए कह सकता है, जो देश की वित्तीय स्थिरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक हो।

iii) राष्ट्रपति केंद्र व राज्य के मध्य आय के वितरण में परिवर्तन कर सकता है।

iv) राष्ट्रपति राज्य विधानमंडलों को, उनके द्वारा पारित किए गए वित्त विधेयकों को अपनी स्वीकृति भेजे जाने का आदेश दे सकता है।

→ अभी तक एक बार भी देश में वित्तीय संकट की घोषणा नहीं की गयी है।

Date
DELTA Pg No.

संकट कालीन शक्तियों का मूल्यांकन

संकटकालीन शक्तियों की आलोचना निम्नलिखित प्रकार से की गई है -

(i) संभावना ⇒ राष्ट्रपति युद्ध, बाह्य आक्रमण के उत्पन्न होने से पूर्व भी संकट काल की घोषणा कर सकते है राष्ट्रपति की संकट कालीन शक्तियों का राजनीति उद्देश्यों के लिए दुरुपयोग किया जा सकता है

(ii) संघात्मक व्यवस्था के लिए खतरा ⇒ भारतीय संविधान इस तरह बनाया गया है कि यह सामान्य काल में संघात्मक व्यवस्था के रूप में और युद्ध एवं अन्य संकट कालों में एकात्मक व्यवस्था के रूप में कार्य करे।

(iii) मौलिक अधिकारों का निलंबन ⇒ संकटकालीन शक्तियां लोकतंत्र की विरोधी है क्योंकि जैसे ही संकट काल की घोषणा होती है नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए जाते है

(iv) न्यायपालिका की स्वतंत्रता के लिए नकारात्मक प्रावधान ⇒ न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए न्यायाधीशों का वेतन एवं भत्ते दिए जाते है लेकिन वित्तीय संकट काल के दौरान उनके वेतन एवं भत्ते रोक दिए जाते है

संकट कालीन शक्तियों की औचित्य

संकट कालीन शक्तियों के संविधान में शामिल करने के मुख्य कारण इस प्रकार है -

(i) वित्तीय संकट काल की आवश्यकता जिस समय संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय भारत की आर्थिक दशा ठीक नहीं थी इसीलिए संविधान निर्माताओं ने देश के संविधान में वित्तीय संकट काल की व्यवस्था की।

ऐतिहासिक अनुभव : राष्ट्रपति को संकटकालीन शक्तियों को संविधान में शामिल करके संविधान निर्माताओं ने केंद्र सरकार को मजबूत करने का प्रयास किया है। देश में जब भी केंद्रीयसत्ता कमजोर हुई विघटन शक्तियाँ सक्रिय हो गयी।

(iii) न्यायपालिका का नियंत्रण : संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण उपन्न संकट काल की घोषणा को सम्बंधित उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। अनुच्छेद 352 के तहत घोषित संकट काल को भी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

(iv) राष्ट्रपति एक संवैधानिक मुखिया है- संकट काल के समय राष्ट्रपति तानाशाह बन सकते हैं वे भारत के संविधान के स्वरूप को नहीं समझते हैं। संविधान द्वारा भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है। इस नाते राष्ट्रपति देश का संवैधानिक मुखिया है। वैसे भी 42 वें एवं 44 वें संशोधन अधिनियमों के तहत राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह मानने के लिए बाध्य है, वह अधिक-से अधिक एक बार मंत्रि-परिषद की सलाह मानने से इनकार कर सकता है।

क्या राष्ट्रपति आपातकाल में तानाशाह बन सकता है?

राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि क्या राष्ट्रपति आपातकाल में तानाशाह बन सकता है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि नहीं, राष्ट्रपति संकटकाल में तानाशाह नहीं बन सकता है। क्योंकि उसकी आपातकालीन (या संकटकालीन) शक्तियों पर कुछ प्रतिबंध हैं, जो इस प्रकार हैं-

i) 44वें संशोधन अधिनियम 1978 के अनुसार

राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के तहत आपातकालीन घोषणा तभी कर सकता है, जब मंत्रिमंडल उसे इसके लिए लिखित में सलाह दे।

ii) राष्ट्रपति द्वारा की गई संकटकालीन घोषणाओं पर एक माह या दो महीने में संसद की मंजूरी प्राप्त करना अनिवार्य है अन्यथा स्वीकृति नहीं मिलने पर ये घोषणाएं अपने-आप ही समाप्त हो जाती है।

iii) यदि राष्ट्रपति संकट काल में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है तो संसद उसे 'महाभियोग प्रस्ताव' के द्वारा पद से हटा सकती है।

iv) अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति की राज्य सरकार को भंग करने की घोषणा को राज्य उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

v) लोक सभा साधारण बहुमत से प्रस्ताव पारित करके राष्ट्रीय संकट काल की घोषणा समाप्त कर सकती है।

राष्ट्रपति की स्थिति!

1976 से पूर्व राष्ट्रपति की स्थिति के बारे में दो प्रकार के विरोधी विचार प्रचलित थे।

कुछ विद्वानों का मानना था कि राष्ट्रपति राज्य का वास्तविक अध्यक्ष है। अपने पक्ष में वह अनुच्छेद 53 का हवाला देते थे, जिसके अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होंगी, जिनका प्रयोग वह या तो स्वयं करेगा या अपने अधीन अधिकारियों के माध्यम से करेगा।

दूसरे पक्ष के विद्वानों का मत था कि भारत का राष्ट्रपति केवल संवैधानिक अध्यक्ष है और इस कारण उसके पास नाममात्र

की शक्तियाँ है। ये अपने समर्थन में संविधान के अनुच्छेद 74 का हवाला देते है, थे, जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होगी।

लेकिन 42वें संशोधन द्वारा राष्ट्रपति के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह मानना अनिवार्य कर दिया गया था।

हालांकि 1978 में जनता पार्टी सरकार ने 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा यह व्यवस्था कर दी थी कि राष्ट्रपति सिर्फ एक बार मंत्रि-परिषद की सलाह मानने से इंकार सकता है। लेकिन मंत्रि-परिषद यदि पुनः उसी सलाह को राष्ट्रपति को देती है, तो राष्ट्रपति को वह सलाह माननी पड़ेगी। अतः राष्ट्रपति की स्थिति ऐसी है कि वह निरंकुश मंत्रिमंडल की शक्तियों पर कुछ समय के लिए अंकुश लगाकर अपनी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग कर सकता है। लेकिन वह साधारण स्थितियों में नाममात्र के कार्यपालक की भूमिका में रहता है।

[राष्ट्रपति की बदलती भूमिका]

भारत में राष्ट्रपति नाममात्र का अध्यक्ष है किंतु राष्ट्रपति की भूमिका समयानुसार बदलती रही है। निरंतर बदलती राजनीति ने राष्ट्रपति की भूमिका को काफी प्रभावित किया है।

- अनुच्छेद 53 के अनुसार समस्त कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होंगी। साथ ही यह भी कहा गया है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग या तो स्वयं करेगा या अपने अधीनस्थ पदाधिकारियों के माध्यम से करेगा। तो दूसरी ओर अनुच्छेद

74 में कहा गया है कि राष्ट्रपति की सलाह व सहायता के लिए एक मंत्रि-परिषद होगी। इन अनुच्छेदों में यह स्पष्ट नहीं था कि क्या राष्ट्रपति के लिए मंत्रि-परिषद की सलाह मानना जरूरी है। फिर भी राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से लेकर फखरुद्दीन अली अहमद आदि तक ने संवैधानिक अध्यक्ष या नाममात्र के अध्यक्ष के तौर पर कार्य किया था।

→ 1976 से 1984 तक भी राष्ट्रपति की भूमिका संवैधानिक अध्यक्ष की ही रही। 1976 में 42वें संशोधन द्वारा स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सलाह मानना अनिवार्य कर दिया गया। किंतु 1978 में 44वां संविधान संशोधन द्वारा यह व्यवस्था कर दी गई कि राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह को पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। लेकिन यदि मंत्रिपरिषद उसी सलाह (परामर्श) को पुनः राष्ट्रपति के पास भेजे तो राष्ट्रपति को अब यह सलाह माननी पड़ेगी।

सन् 1984 के पश्चात भारतीय राजनीति में व्यापक परिवर्तन आया। 1984 के बाद से 2009 तक चुनावों में किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, और अस्थिर और गठबंधन सरकारों का दौर रहा। 2014 में काफी लंबे समय बाद भारतीय जनता पार्टी (BJP) को स्पष्ट तौर पर बहुमत प्राप्त हुआ तथा राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेतृत्व वाली सरकार बनी। अब 2024 में हुए आम चुनावों में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, लेकिन (240 सीट) BJP पार्टी वाले राष्ट्रीय जनतांत्रिक पार्टी के गठबंधन को बहुमत प्राप्त हुआ। अब

बदलते हुए राजनीतिक परिवेश में राष्ट्रपति की बदलती हुई भूमिका के कुछ मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं —

1. प्रधान मंत्री की नियुक्ति के संबंध में भूमिका — (Role in Regarding Appointment of PM)

आम तौर पर राष्ट्रपति लोक सभा चुनावों में बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल के नेता को प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्त करता है, किंतु जब किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो ऐसे में राष्ट्रपति के लिए प्रधानमंत्री को नियुक्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य बन जाता है। ऐसे में राष्ट्रपति को बड़ी सूझबूझ से काम करना पड़ता है। देश में ऐसे अवसर 1984, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 एवं 2009 में आए। जब किसी एक दल को चुनावों में बहुमत प्राप्त नहीं होता है, तो राष्ट्रपति ऐसे व्यक्ति को प्रधान मंत्री नियुक्त करता है जिसके बारे में उसे लगता है कि वह लोक सभा का विश्वास प्राप्त कर लेगा। राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने 1998 में BJP पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को नियुक्त न करके उनसे उनका समर्थन करने वाले दलों का समर्थन-पत्र (Support letter) की मांग की। ऐसा करके उन्होंने एक नई परंपरा की शुरुआत की। और वाजपेयी जी को बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा। वाजपेयी जी ने 28 मार्च 1998 को अपना बहुमत सिद्ध कर दिया था। इसी प्रकार 2009 में चुनावों में किसी एक पार्टी को बहुमत नहीं मिला लेकिन कांग्रेस पार्टी 206 सीट के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई। समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, डी. एम. के, बीजू जनता दल, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी आदि

के सहयोग से बने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के नेता डॉ. मनमोहन सिंह को फिर से राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने प्रधानमंत्री के पद के लिए आमंत्रित किया।

2. सरकार को बर्खास्त करने में भूमिका — 1989 के बाद इस संबंध में राष्ट्रपति की भूमिका में पर्याप्त बदलाव आया है। आम तौर पर सरकार के बहुमत खोने पर सरकार को बर्खास्त कर दिया जाता है। परंतु कई बार राष्ट्रपति ने ऐसा होते हुए भी सरकार को बर्खास्त नहीं किया। अक्टूबर 1990 में भारतीय जनता पार्टी ने जब वी.पी. सिंह सरकार से अपना समर्थन वापिस ले लिया तो राष्ट्रपति ने सरकार को बर्खास्त करने के स्थान पर प्रधानमंत्री को विश्वास-मत प्राप्त करने का आदेश दिया किंतु जब वी.पी. सिंह विश्वास-मत प्राप्त नहीं कर पाए, तो सरकार को बर्खास्त कर दिया गया। दूसरी ओर जब जुलाई 2008 में सामयवादी दलों ने मनमोहन सिंह सरकार से समर्थन वापस ले लिया, तो सरकार स्पष्ट रूप से अल्पमत में आ गयी, किंतु राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने सरकार को बर्खास्त नहीं किया था। अतः सरकार को बर्खास्त करने के संबंध में राष्ट्रपति की भूमिका में पर्याप्त परिवर्तन आया है।

3. मंत्रि-परिषद की सलाह की स्वीकृति → के संबंध में भूमिका → अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति अपनी शक्तियों का प्रयोग मंत्रि-परिषद की सलाह से करेगा, किंतु राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद की सलाह पर पुनः विचार के लिए कह सकता है। इसका पहला अवसर उदाहरण के

रूप में हमारे सामने तब सामने आया जब 21 अक्टूबर 1991 को नव-नियुक्त मुख्य मंत्री कल्याण सिंह को उत्तर प्रदेश विधान सभा में बहुमत सिद्ध करना था, मुख्य मंत्री ने अपना बहुमत सिद्ध भी कर दिया था, परंतु उसी दिन विधान सभा में हिंसक घटनाएँ घटित हुई। ऐसे में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रोमेश भंडारी ने केंद्र सरकार को राज्य सरकार को भंग करने की सिफारिश कर दी थी। राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर केंद्रीय-मंत्रिपरिषद ने राष्ट्रपति के. आर. नारायण को कल्याण सिंह सरकार को भंग करने की सिफारिश कर डाली थी। इस पर राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने मंत्रि-परिषद की सलाह को पुनर्विचार के लिए वापस भेज दिया। 2002 में भी राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम ने चुनाव सुधारों से संबंधित अध्यादेश वापिस लौटा दिया था क्योंकि इसमें सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश पर चुनाव आयोग द्वारा उम्मीदवारों की आपराधिक पृष्ठभूमि की जानकारी देने की अनिवार्यता को शामिल नहीं किया गया था। राष्ट्रपति की इस कार्रवाई की काफी प्रशंसा की गई थी।

4. राष्ट्रपति सक्रिय राष्ट्रपति के रूप में →
भारत में राष्ट्रपति की भूमिका के बारे में कहा जाता है कि वह रबड की मोहर है, जिसे जहाँ चाहे, जब चाहे लगाया जा सकता है। किंतु 1984 के पश्चात का राजनीतिक परिदृश्य यह बताता है कि राष्ट्रपति रबड की मोहर नहीं है। क्योंकि विशिष्ट परिस्थितियों में राष्ट्रपति निष्क्रिय नहीं रह सकता है, क्योंकि सही समय पर

उसे कुछ सही कदम उठाने होते हैं, जैसे कि राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने 1997 में कल्याण सिंह सरकार और 1998 में राबड़ी सरकार को भंग न करने के कदम उठाए थे। इसी प्रकार 2 मार्च 2005 को झारखंड के राज्यपाल ने विधानसभा में बहुमत की जांच किए बिना शिबू सोरेन को मुख्यमंत्री नियुक्त कर दिया था, शिबू सोरेन संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के नेता थे। इस पर राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के नेताओं ने राष्ट्रपति से मिलकर राज्यपाल की शिकायत की। इस पर राष्ट्रपति ने राज्यपाल को दिल्ली बुलाकर बातचीत की। इसके परिणामस्वरूप मुख्य मंत्री ने बड़े नाटकीय ढंग से अपना त्याग-पत्र दे दिया था और राजग के नेता अर्जुन मुंडा को राज्यपाल ने मुख्य मंत्री पद की शपथ दिलायी थी।

निष्कर्ष → उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 1984 के बाद भारत में राष्ट्रपति मूकदर्शक बनकर नहीं रहा है। 1984 के बाद राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदली हैं। देश की राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा है और गठबंधन सरकारों का उदय हुआ है। इस परिस्थितियों में राष्ट्रपति को सक्रिय भूमिका निभानी पड़ती है। राष्ट्रपति की भूमिका के बारे में पूर्व राष्ट्रपति आर. वेंकटरमण अपनी पुस्तक प्रेसिडेंट इयर्स (President Years) में लिखते हैं, "राष्ट्रपति का पद संकट-कालीन दीपक की तरह है। जब कोई संकट आता है, यह स्वयं जल उठता है और संकट काल समाप्त होने पर यह स्वयं बुझ जाता है।

प्रधानमंत्री एवं मंत्री परिषद

[प्रधानमंत्री]

ब्रिटेन की तरह भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है इसलिए भारत में राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है ।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति — संविधान के अनुच्छेद 75(1) के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी और अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से की जाएगी। लेकिन राष्ट्रपति अपनी इच्छा से किसी को भी प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त नहीं कर सकता है क्योंकि वह लोकसभा के चुनाव में बहुमत प्राप्त करने वाले दल अथवा गठबंधन के नेता को ही प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

प्रधानमंत्री का संसद का सदस्य होना— भारत में प्रधानमंत्री का संसद के किसी एक सदन का सदस्य होना आवश्यक है क्योंकि संविधान के **अनुच्छेद 75 (5)** के अनुसार, "एक ऐसा मंत्री जो लगातार 6 महीने तक संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं रहा है, इस अवधि की समाप्ति के बाद मंत्री नहीं रहेगा। प्रधानमंत्री भी अन्य मंत्रियों की तरह है, वह मंत्रियों में प्रधान है।" कोई व्यक्ति जो संसद के किसी सदन का सदस्य नहीं है, उसकी प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्ति की जा सकती है परंतु उसे 6 महीने के अंदर-अंदर संसद की सदस्यता प्राप्त करनी होगी। वर्तमान (2024 में) प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी लोकसभा के सदस्य हैं।

कार्यकाल — सामान्य तौर पर प्रधानमंत्री 5 वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है, लेकिन जब तक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त है, वह अपने पद पर बना रहता है। क्योंकि लोकसभा सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके प्रधानमंत्री को कभी भी पद से हटा सकती है। 13 अप्रैल 1998 को राष्ट्रपति के. आर. नारायण ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को ए.आई.अन्ना डीएमके पार्टी द्वारा समर्थन वापस लिए जाने पर लोकसभा का विश्वास प्राप्त करने के लिए कहा तो वाजपेयी सरकार एकमत से विश्वास प्रस्ताव हार गई थी जिसके कारण प्रधानमंत्री वाजपेयी को पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।

प्रधानमंत्री की शक्तियां एवं कार्य —

भारतीय प्रधानमंत्री की शक्ति एवं कार्यों का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

1. मंत्री परिषद का गठन — राष्ट्रपति द्वारा अपने नियुक्ति होने के बाद प्रधानमंत्री का प्रथम कार्य मंत्री परिषद का गठन करना है संविधान के अनुच्छेद 751 के अनुसार मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति द्वारा की जाती है अतः मंत्री परिषद का गठन करना पूरी तरह से प्रधानमंत्री के हाथ में होता है। प्रधानमंत्री अपने मंत्रियों की सूची तैयार करके राष्ट्रपति को छोड़ता है राष्ट्रपति प्रधानमंत्री द्वारा चुने गए व्यक्तियों को ही मंत्री के रूप में शपथ दिलाता है।

2. विभागों का आबंटन— प्रधानमंत्री मंत्रियों की नियुक्ति के साथ-साथ उनमें विभागों का बंटवारा(आबंटन) भी करता है। प्रधानमंत्री ही तय करता है कि कौन सा मंत्री किस विभाग का अध्यक्ष होगा कौन सा मंत्री कैबिनेट मंत्री होगा और कौन सा मंत्री राज्य मंत्री होगा। प्रधानमंत्री अपने मंत्रियों के विभाग भी बदल सकता है।

3. मंत्री को हटाना— सैद्धांतिक दृष्टि से मंत्री राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर बने रहते हैं अर्थात जब तक राष्ट्रपति की इच्छा होती है तब तक मंत्री अपने पद पर बने रहते हैं लेकिन राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के सिफारिश पर ही मंत्री को पद से हटाने का निर्णय लेता है अतः व्यवहार में मंत्रियों को हटाना भी प्रधानमंत्री के हाथ में ही होता है। अगर किसी मंत्री से प्रधानमंत्री असहमत है या नाखुश है, तो प्रधानमंत्री उससे उसका इस्तीफा मांग सकता है , यदि वह इस्तीफा नहीं देता है तो प्रधानमंत्री राष्ट्रपति द्वारा उसे पद से हटा सकता है। कानून मंत्री रवि शंकर प्रसाद और मानव विकास संसाधन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने 7 जुलाई 2021 को अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दिया था।

4.**लोकसभा का नेता** — प्रधानमंत्री लोकसभा का नेतृत्व करता है । वह सदन में सरकार की नीतियों से संबंधित महत्वपूर्ण घोषणाएं करता है । पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देता है, सदन में अपने मंत्रियों की अथवा सरकार की आलोचना का जवाब देता है

। वह लोकसभा अध्यक्ष के साथ मिलकर सदन की कार्य सूची तय करता है , यदि प्रधान मंत्री लोकसभा का सदस्य नहीं हो तो वह अपने दल के किसी अन्य सदस्य को लोकसभा का नेता नियुक्त करता है।

5. राष्ट्रपति एवं मंत्रिमंडल के बीच में कड़ी — प्रधानमंत्री राष्ट्रपति एवं मंत्रिमंडल के बीच में कड़ी का काम करता है राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए निर्णय से अवगत कराता है और राष्ट्रपति के विचार मंत्रिमंडल की समक्ष रखता है । यदि राष्ट्रपति को किसी मंत्री से उसके विभाग के बारे में कोई सूचना प्राप्त करनी होती है, तो वह यह कार्य प्रधानमंत्री के माध्यम से ही करता है।

6. मंत्रिमंडल का नेता — प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का नेता होता है । इस नाते वह मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करता है, मंत्रिमंडल की बैठकें बुलाता है, उनमें विचार किए जाने वाले विषयों की सूची तय करता है। किसी नीति पर सहमति तभी हो पाती है, जब उस नीति से प्रधानमंत्री सहमत होता है। अतः मंत्रिमंडल की संपूर्ण कार्यवाही प्रधानमंत्री की देखरेख में होती है।

7. विभिन्न विभागों के मध्य कड़ी— मंत्री परिषद का प्रमुख होने के नाते प्रधानमंत्री विभिन्न विभागों के मध्य कड़ी का काम करता है, वह विभागों के आपसी समस्याओं, झगड़ों एवं मतभेदों को सुलझाता है। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि सरकार के विभिन्न विभागों में आपसी सहयोग एवं समन्वय कायम रहे, इसके लिए प्रधानमंत्री पूर्ण प्रयास करता है।

8. राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार — संविधान के अनुच्छेद 74 के अंतर्गत राष्ट्रपति को परामर्श देने के लिए मंत्री परिषद की व्यवस्था की गई है। मंत्री परिषद का प्रमुख होने के नाते प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार होता है। राष्ट्रपति प्रत्येक मामले पर प्रधानमंत्री की सलाह लेता है और उसके द्वारा दी गई सलाह के अनुसार ही कार्य करता है।

9. अपने दल का प्रमुख नेता — प्रधानमंत्री अपने दल का प्रमुख नेता होता है उसका अपने दल की नीतियों एवं कार्यक्रम को तैयार करने में मुख्य हाथ होता है वह चुनाव में अपने दल की ओर से प्रचार करता है , पार्टी के कार्यक्रमों में वह मुख्य भूमिका निभाता है।

10. संसद का नेता — दल का नेता होने के साथ-साथ प्रधानमंत्री संसद का नेता भी होता है, इस नाते वह संसद के अधिवेशन बुलाने की तिथि तय करता है । संसद के कार्यवाही में कौन-सा विधायक पहले प्रस्तुत किया जाएगा और कौन-सा बाद में यह सब प्रधानमंत्री की देखरेख में तय किया जाता है। प्रधानमंत्री ही सरकार की नीतियों से ही संसद को अवगत करवाता है। लोकसभा अध्यक्ष प्रधानमंत्री एवं विपक्ष के नेता की सलाह से ही सदन की कार्यवाही तय करते हैं।

11. राष्ट्र का नेता— प्रधानमंत्री राष्ट्र का नेता भी होता है । समस्त प्रशासन प्रधानमंत्री द्वारा चलाया जाता है। प्राय: लोकसभा के चुनाव प्रधानमंत्री के नाम पर लड़े जाते हैं, विदेशों में अक्सर प्रधानमंत्री राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

12. लोकसभा को भंग कराना —भारत में प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को सलाह देकर लोकसभा को भंग करवा सकता है । जैसे की फरवरी 2004 में अटल बिहारी वाजपेयी ने समय से पूर्व ही लोकसभा को भंग करवा दिया था।

13. प्रधानमंत्री एवं विदेश नीति— प्रधानमंत्री विदेश विभाग अपने पास रखे या ना रखें वह विदेश नीति के निर्धारण में प्रमुख भूमिका निभाता है। वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की विदेश नीति का स्पष्टीकरण करता है । विदेश नीति संबंधी सभी महत्वपूर्ण निर्णय उसी के द्वारा लिए जाते हैं , विदेशों में राजदूतों की नियुक्ति तथा उन्हें वापस बुलाना आदि सभी कार्य प्रधानमंत्री की सलाह पर ही राष्ट्रपति द्वारा किए जाते हैं। प्रधानमंत्री विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठनों एवं क्षेत्रीय संगठनों की बैठकों में भाग लेते हैं।

14. प्रधानमंत्री एवं रक्षा —राष्ट्र की रक्षा का उत्तरदायित्व प्रधानमंत्री का ही होता है। इस कारण उसका प्रतिरक्षा मंत्रालय पर पूरा नियंत्रण होता है । राष्ट्र की सुरक्षा एवं विदेश नीति का आपस में घनिष्ठ संबंध होता है। देश की हार-जीत उसकी हार-जीत मानी जाती है। उदाहरण के लिए 1962 के भारत-चीन युद्ध में भारत की पराजय के लिए प्रधानमंत्री नेहरू को जिम्मेदार ठहराया गया था , तो 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान पर विजय का श्रेय प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को मिला था।

15. सरकार का प्रमुख वक्ता— प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख वक्ता होता है। इस नाते वह समस्त जनता के सामने सरकार की नीतियों की घोषणा करता है । वह सभी प्रशासनिक विभागों की जानकारी रखता है। अक्सर सभी महत्वपूर्ण घोषणाएं प्रधानमंत्री के द्वारा की जाती हैं।

16. अर्थव्यवस्था एवं वित्त पर नियंत्रण— प्रधानमंत्री का देश की अर्थव्यवस्था पर पूरा नियंत्रण होता है। देश की अर्थव्यवस्था की सफलता-असफलता का उत्तरदायित्व उसी पर होता है। प्रधानमंत्री की देखरेख में ही देश का बजट तैयार किया जाता है। अर्थव्यवस्था से संबंधित प्रमुख नीतियां एवं योजनाएं प्रधानमंत्री के नेतृत्व में तैयार की जाती हैं। जुलाई 1969 से जून 1970 तक वित्त विभाग प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के पास ही था। देश में 1991 में आर्थिक सुधारों को शुरू करने का कार्य प्रधानमंत्री पी. वी. नरसिम्हा राव ने किया था। नवगठित नीति आयोग का अध्यक्ष भी प्रधानमंत्री ही होता है।

17. संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग— संविधान के अनुच्छेद 352, 356 एवं 360 के अंतर्गत राष्ट्रपति को तीन प्रकार की संकटकालीन शक्तियां प्राप्त हैं लेकिन राष्ट्रपति इन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री की सलाह से ही करता है । जैसे 26 अक्टूबर 1962 को चीन के आक्रमण के समय, 3 दिसंबर 1971 को पाकिस्तान के साथ युद्ध के समय और 25 जून 1975 को 'आंतरिक गड़बड़ी' के नाम पर अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने प्रधानमंत्री की सलाह से ही संकटकालों की घोषणा की थी । अतः राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा किया जाता है।

स्थिति — प्रधानमंत्री की शक्ति एवं कार्यों का अध्ययन करने से स्पष्ट है कि भारतीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री की स्थिति केंद्रीय है। संविधान के अधीन प्रधानमंत्री व्यवहार में विशाल शक्तियों का स्वामी है और शासन में उसकी स्थिति महत्वपूर्ण है। यदि प्रधानमंत्री का अपने दल एवं मंत्री परिषद पर नियंत्रण है और संसद की दोनों सदनों में उसके दल को बहुमत प्राप्त है तो उसकी स्थिति बहुत मजबूत होती है। प्रधानमंत्री की स्थिति काफी सीमा तक उसके व्यक्तित्व पर भी निर्भर करती है। भारत में पंडित नेहरू, इंदिरा गांधी, अटल बिहारी वाजपेयी एवं नरेंद्र मोदी जी मजबूत व्यक्तित्व के स्वामी थे । गठबंधन सरकारों के दौर में भारत में प्रधानमंत्री की स्थिति कमजोर रही है।

प्रधानमंत्री की भूमिका अथवा प्रधानमंत्री की बदलती हुई भूमिका

1952 से लेकर 1985 तक केंद्र में प्राय एक ही राजनीतिक दल को बहुमत मिलता रहा है जिसके कारण प्रधानमंत्री की स्थिति मजबूत रही 1980 के बाद अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों का जन्म हुआ और उनका प्रभाव और भूमिका प्रभावशाली होती चली गई । परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ता चला गया और लोकसभा के चुनाव में किसी एक राष्ट्रीय दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ, इसी के साथ देश में गठबंधन सरकारों का दौर चल पड़ा जो आज तक भी जारी है। राज्यों में भी गठबंधन की सरकारें हैं । वर्तमान सरकार(2024 में) भी गठबंधन(राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन) की सरकार है। निसंदेह गठबंधन सरकारों के दौर में प्रधानमंत्री की भूमिका में परिवर्तन आया है, जिसको हम निम्नलिखित बातों के संदर्भ में समझ सकते हैं—

1. मंत्री परिषद के गठन में भूमिका— मंत्री परिषद के गठन के विषय में प्रधानमंत्री का यह विशेष अधिकार होता है कि वह किसी व्यक्ति को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करें या ना करें प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं इंदिरा गांधी ने अपने इस अधिकार का स्वतंत्रता पूर्वक भी प्रयोग किया था किंतु बात की गठबंधन सरकारों में प्रधानमंत्री की भूमिका मंत्री परिषद की गठन में कमजोरी रही गठबंधन में शामिल अन्य दलों की पसंद को ध्यान में रखकर मंत्री परिषद का गठन करना पड़ता है। राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के समय अटल बिहारी वाजपेयी और संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार के समय प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह दोनों ही मंत्री परिषद का निर्माण करने में स्वतंत्र नहीं रहे।

2. विभागों का आवंटन (Allocation of Portfolios)- प्रधान मन्त्री का यह विशेषाधिकार (Prerogative) होता है कि वह किस मंत्री को कौन-सा विभाग सौंपे। साझा सरकारों के दौर में इस मामले में भी प्रधान मन्त्री की भूमिका में बदलाव आया। प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल में रेलवे मन्त्रालय को लेकर ममता बनर्जी एवं नीतिश कुमार के बीच झगड़ा बना रहता था। डॉ. मनमोहन सिंह के प्रथम कार्यकाल में रेलवे मन्त्रालय को लेकर लालू प्रसाद यादव एवं रामविलास पासवान के बीच झगड़ा बना रहा। ऐसी स्थिति में प्रधान मन्त्री की सरकार में स्थिति बड़ी कमजोर हो जाती है, क्योंकि उस पर घटक

दलों का लगातार दवाव बना रहता है, जिसके लिए वे ब्लैकमेल तक की राजनीति भी करते हैं।

3. समन्वयकारी की भूमिका (Role of Co-ordinator)- प्रधान मन्त्री की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है — विभिन्न मन्त्रालयों में समन्वय बनाए रखना, ताकि जनता को कुशल प्रशासन मिल सके। पहले प्रधान मन्त्री ही प्रशासन की दिशा - तय करते थे, किन्तु गठबन्धन सरकारों के दौर में उसने अपनी यह भूमिका लगभग खो दी, क्योंकि इस दौर में प्रधान मन्त्री के अलावा कुछ और भी सत्ता केन्द्र बन गए। इस दौर में एक प्रभावकारी संस्था का उदय हुआ, जिसको समन्वयकारी समिति' (Co-ordination Committee) का नाम दिया गया। यह समिति विभिन्न विभागों में समन्वय बनाए रखने का कार्य करती थी। प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मार्च, 1998 एवं अक्टूबर, 1999 में गठित साझा सरकारों के समय ऐसी ही समन्वयकारी समितियों की स्थापना की गयी थी।

4. नीति-निर्माण में भूमिका (Policy-Formulation) — नीति-निर्माण करना और नीतियों को लागू करना मंत्रिमण्डल का प्रमुख कार्य है, जो प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में सम्पन्न होता है। इस नाते नीति-निर्माण के क्षेत्र में प्रधान मन्त्री का निर्णय अन्तिम माना जाता है। पहले अगर कोई मंत्री प्रधान मन्त्री से नीतिगत मतभेद रखता था, तो प्रधान मन्त्री उससे त्याग-पत्र मांग लिया करता था। किन्तु साझा/गठबन्धन सरकारों के दौर में प्रधान मन्त्री की ऐसी स्थिति नहीं रही, क्योंकि किसी मंत्री से त्याग-पत्र मांगने से पहले उसको अपनी सरकार के भविष्य के बारे में सोचना पड़ता है। अब नीतिया तय करने के लिए प्रधान मन्त्री का दर्शन या दृष्टिकोण आधार नहीं होता है, बल्कि सहयोगी दलों की सहमति जरूरी होती है।

5. दल में प्रधान मन्त्री की स्थिति (Position of Prime Minister in the Party)— पंडित जवाहर लाल नेहरू , इंदिरा गांधी एवं राजीव गांधी प्रधान मन्त्री होने के साथ-साथ अपने दल के प्रमुख नेता भी थे। ये प्रधान मन्त्री अपने दल के अध्यक्ष भी थे, जिससे उनका दल पर नियन्त्रण बना हुआ था। इस मामले में भी साझा सरकारों के प्रधान मन्त्रियों की स्थिति कमजोर हुई हुई। एच.डी देव गौड़ा एवं इंद्र कुमार गुजराल की अपने दल में बहुत कमजोर स्थिति थी, वास्तव में यह मजबूरी के प्रधानमंत्री रहे, न की सभी के पसंद के प्रधान मंत्री। संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार के प्रधान मन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह की कांग्रेस पार्टी में वह स्थिति नहीं थी, जो कांग्रेस अध्य सोनिया गांधी की थी।

6. संसद का नेतृत्व (Leadership of Parliament)- संसदीय परम्परा के अनुसार प्रधान मंत्री संसद का नेता होता है, जो संसद की कार्यवाही को नियन्त्रित करता है। वह संसद को कार्य-सूची (Agenda) को लोक सभा के अध्यक्ष से परामर्श करके अंतिम रूप देता है। किन्तु गठबन्धन सरकारों के दौर में प्रधान मन्त्री के संसद पर नियन्त्रण में कमी आयी है। प्रधान मन्त्री को अपने दल के साथ-साथ सरकार को समर्थन देने वाले दलों की कार्य-सूचियों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। संसद सदस्यों पर प्रधान मन्त्री के व्यक्तित्व का प्रभाव नजर नहीं आता है ।

7. राष्ट्रपति के साथ संबंध (Relations with President)— राष्ट्रपति बहुमत प्राप्त करने वाले विधायक दल के नेता को प्रधान मन्त्री नियुक्त कर देता है। किन्तु गठबंधन सरकार के दौर में राष्ट्रपति को प्रधान मन्त्री की नियुक्ति के विषय में अपने विवेक के प्रयोग करने का पूरा अवसर मिलता है। ऐसे स्थिति में राष्ट्रपति प्रायः कमजोर व्यक्ति को ही प्रधान मन्त्री नियुक्त करता है, क्योंकि घटक दल उसको अपनी राजनीतिक मजबूरियों के चलते चुनते हैं। इस प्रकार के प्रधान मन्त्री राष्ट्रपति के सामने कमजोर ही सिद्ध होते हैं, जब कि राष्ट्रपति केवल नाममात्र का मुखिया होता है। 1999 में राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने वाजपेयी सरकार से जयललिता को पार्टी के द्वारा समर्थन वापस लिए जाने पर प्रधान मन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी को लोक सभा में विश्वास-मत प्राप्त करने का आद दिया था। गठबन्धन सरकारों के चलते राष्ट्रपति के सामने प्रधान मन्त्री की स्थिति कमजोर हुई, जब कि संसदीय शासन प्रणाली में प्रधान मन्त्री की स्थिति अत्यन्त मजबूत होती है।

8. प्रधान मन्त्री के पद में प्रभावहीनता (Erosion in the Post of Prime Minister)-1989 के बद मन्त्री की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आया है, जो अपने आप में एक गंभीर विषय है। गठबन्धन सरकारों में 1989 से लेकर 2014 तक प्रधान मंत्री को प्रायः विवश देखा गया है। संयुक्त प्रशिक्षण गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह जी की छवि विवश प्रधानमंत्री के रूप में सामने उभर कर आई।

भारत में 1989 के बाद देश में जिस प्रकार गठबंधन सरकार बनती गईं। प्रधान मन्त्री की भूमिका भी बदलती चली गयी और

एक समय ऐसा आया, जब संसद के भीतर और बाहर प्रधानमन्त्री विवश नजर आया। लेकिन मई 2014 के लोक सभा के चुनाव के बाद प्रधान मन्त्री को स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी एक मजबूत प्रधानमंत्री के रूप में उभरकर नजर आए हैं, लेकिन देखते हैं कि वे 9 जून, 2024 को सत्ता में आई राष्ट्रीय जनतंत्र गठबंधन की सरकार में भी अपना दबदबा बनाए रखेंगे?

[मंत्री परिषद]

संविधान के **अनुच्छेद 53** के द्वारा कार्यपालिका शक्तियां राष्ट्रपति में निहित की गई है किंतु व्यवहार में उसकी इन शक्तियों का प्रयोग मंत्री परिषद द्वारा ही किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 74 में लिखा हुआ है, "राष्ट्रपति को सहायता एवं परामर्श देने के लिए प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्री परिषद होगी राष्ट्रपति अपने कार्यों को मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार करेगा।"

1. निर्माण या गठन — मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्री शामिल होते हैं। लोकसभा के चुनाव के परिणाम आने के तुरंत बाद मंत्री परिषद का गठन किया जाता है। प्रधानमंत्री सहित सभी प्रकार के मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । राष्ट्रपति द्वारा पहले प्रधानमंत्री और बाद में अन्य मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है।

2. प्रधानमंत्री की नियुक्ति— प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है । राष्ट्रपति लोकसभा के चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने वाले दल या गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है। जून 2024 में हुए लोकसभा चुनावों के आधार पर राष्ट्रपति ने श्री नरेंद्र मोदी जी को प्रधानमंत्री के रुपए नियुक्त किया है।

3. अन्य मंत्रियों की नियुक्ति— संविधान के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री के परामर्श से अन्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है। राष्ट्रपति अपनी मर्जी से मंत्रियों को नियुक्त नहीं कर सकता है। प्रधानमंत्री नियुक्त किए जाने वाले व्यक्तियों की सूची तैयार करके राष्ट्रपति को सौंपता है। उस सूची के अनुसार ही राष्ट्रपति व्यक्तियों की मंत्री के रूप में नियुक्ति कर देता है।

4. मंत्रियों के लिए संसद का सदस्य होना अनिवार्य— संविधान के अनुच्छेद 75 (5) के तहत किसी भी ऐसे व्यक्ति को मंत्री परिषद में मंत्री के तौर पर शामिल किया जा सकता है , जो नियुक्ति के समय संसद का सदस्य ना हो। किंतु ऐसे व्यक्ति को 6 महीने के अंदर संसद की सदस्यता प्राप्त करनी होती है , अन्यथा उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है। जून 1991 में कांग्रेस पार्टी के नेता पी. वी नरसिम्हा राव को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था , तो वे उस समय संसद के सदस्य नहीं थे, परंतु बाद में उन्होंने संसद की सदस्यता प्राप्त कर ली थी।

5. मंत्री परिषद का आकार — सन 2003 में संविधान में 91 संशोधन के माध्यम से यह व्यवस्था की गई है कि मंत्री-परिषद में मंत्रियों की संख्या लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15% से अधिक नहीं हो सकती है । इस आधार पर मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री सहित 83 मंत्री शामिल हो सकते हैं।

6. शपथ — प्रधानमंत्री सहित प्रत्येक मंत्री को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के सम्मुख दो प्रकार की शपथ लेनी होती है- पहली अपने पद की शपथ और दूसरी गोपनीयता की शपथ।

7. कार्यकाल— मंत्री परिषद या मंत्रियों का कार्यकाल स्थाई नहीं होता है। संविधान के अनुच्छेद 75(2) के अनुसार मंत्रीगण राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यंत(अर्थात् राष्ट्रपति की इच्छा तक) अपने पद पर बने रहेंगे। परंतु व्यवहार में यह व्यवस्था है कि जब तक मंत्री परिषद को लोकसभा में बहुमत प्राप्त है, वह अपने पद पर बनी रहती है। अर्थात मंत्री परिषद का बने रहना लोकसभा में उसके बहुमत पर निर्भर करताहै।

8. रचना— मंत्री परिषद में निम्न प्रकार के मंत्री शामिल होते हैं —

(i) कैबिनेट मंत्री (ii) राज्य मंत्री (iii) उप-मंत्री

(i) कैबिनेट मंत्री – कैबिनेट मंत्री सर्वोच्च स्तर के मंत्री होते हैं। यह मंत्री-परिषद की एक आंतरिक समिति जिसे 'कैबिनेट' का नाम दिया गया है , के सदस्य होते हैं। कैबिनेट मंत्री प्रमुख प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष होते हैं।

(ii) राज्य मंत्री – यह दूसरे दर्जे के मंत्री होते हैं । इनकी नियुक्ति कैबिनेट मंत्री की सहायता देने के लिए की जाती है, इसलिए यह प्रशासकीय विभागों के मुखिया नहीं होते हैं । किंतु कभी-कभी कोई अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण विभाग किसी राज्य मंत्री को स्वतंत्र रूप से सौंप दिया जाता है । इनको कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर कैबिनेट की बैठकों में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

(iii) उप मंत्री – उप मंत्री तीसरी रैंक के मंत्री होते हैं। ये किसी विभाग के स्वतंत्र प्रभारी नहीं होते हैं और ना ही कैबिनेट की बैठक में भाग लेते हैं। उनकी नियुक्ति कैबिनेट मंत्री या राज्य मंत्री की सहायता के लिए जाती है । यह कैबिनेट मंत्री या राज्य मंत्री द्वारा सौंपे गए कार्य करते हैं।

मंत्री-मंडल/मंत्री परिषद की मुख्य विशेषताएं

भारत में मंत्री परिषद की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकारहै

1. दलगत आधार पर गठन– मंत्री परिषद में दलगत आधार पर मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है । जब किसी एक पार्टी को बहुमत प्राप्त होता है तो पार्टी के प्रमुख व्यक्तियों को मंत्री बनाया जाता है। जब गठबंधन सरकारी होती हैं , तो गठबंधन में शामिल दलों के प्रमुख नेताओं को मंत्री परिषद में शामिल किया जाता है। ऐसा करते समय प्रधानमंत्री को विशेष ध्यान रखना पड़ता है ताकि उसके सहयोगी दल नाराज न हों।

2. विशेषज्ञ तत्व – मंत्री नियुक्ति करते समय यह देखा जाता है की प्रमुख मंत्रालयों को उससे संबंधित विशेषज्ञता रखने वाले मंत्रियों को सौंपा जाए। उदाहरण के तौर पर भारत में जॉन मथाई , सी.डी देशमुख, डॉ मनमोहन सिंह जैसे उच्च कोटि के अर्थशास्त्री और आर्थिक मामलों का अच्छे ज्ञान रखने वाले व्यक्ति वित्त मंत्री रहे हैं।

3. राज्यसभा को समुचित प्रतिनिधित्व – मंत्री परिषद की एक विशेषता यह भी है कि इसमें न केवल लोकसभा से बल्कि राज्यसभा से भी व्यक्तियों को शामिल किया जाता है । भारत में राज्यसभा के कई सदस्य प्रधानमंत्री नियुक्त किए गए हैं। इंदिरा गांधी, एच. डी देवगौड़ा, इंद्र कुमार गुजराल, पीवी नरसिम्हा राव एवं डॉ मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने तो उस समय यह सब राज्यसभा के ही सदस्य थे।

4. प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता– भारत में मंत्री परिषद में प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता होती है। उसी के सिफारिश पर मंत्री को नियुक्त किया जाता है । उसकी इच्छा अनुसार ही मंत्रियों को विभागों का आवंटन किया जाता है। मंत्री परिषद की प्रमुख नीतियां वही तय करता है। गठबंधन सरकार के दौर में प्रधानमंत्री की सर्वोच्चता थोड़ी कम हो गई थी। वर्तमान सरकार में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अपनी मंत्रिपरिषद में सर्वोच्चता कायम है।

5. सामूहिक उत्तरदायित्व– इसका अर्थ है कि शासन की सफलता अथवा सफलता के लिए संपूर्ण मंत्री-परिषद जिम्मेदार होती है, न की कोई एक मंत्री या प्रधानमंत्री। जब किसी एक मंत्री की आलोचना की जाती है तो इसे संपूर्ण मंत्री-परिषद अर्थात सरकार की आलोचना समझा जाता है। इसी के साथ लोकसभा में यदि किसी मंत्री द्वारा पेश किया गया विधेयक पास नहीं हो पता है तो संपूर्ण मंत्री परिषद को त्यागपत्र देना पड़ता है।

6. उप-प्रधानमंत्री का पद – भारतीय संविधान में कहीं भी उप प्रधानमंत्री के पद की व्यवस्था नहीं की गई है फिर भी यहां कई व्यक्ति उप प्रधानमंत्री के रूप में कार्य कर चुके हैं । नेहरू सरकार में सरदार पटेल, इंदिरा गांधी के मंत्रिमंडल में मोरारजी देसाई, मोरारजी देसाई के मंत्रिमंडल में जगजीवन राम एवं चरण सिंह , चरण सिंह के मंत्रिमंडल में वाइ. बी. चह्वान , वीपी सिंह एवं चंद्रशेखर के मंत्रिमंडल में देवीलाल तथा अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार में लालकृष्ण आडवाणी ने उप प्रधानमंत्री के रूप में कार्य किया था।

मंत्रिमंडल/मंत्रिपरिषद के कार्य एवं स्थिति

भारत में मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं—

1. राष्ट्रीय नीति का निर्माण —भारत में मंत्रिमंडल अपने दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय नीति का निर्माण करता है। मंत्रिमंडल ही अपने विभागों की नीति बनाते हैं। सभी विधेयक(Bill) जो प्रशासनिक विभागों द्वारा तैयार किए जाते हैं, मंत्रिमंडल के निर्देशन में ही तैयार किए जाते हैं। जब इन विधेयकों को संसद की स्वीकृति मिल जाती है तो यह कानून का बन जाते हैं।

2. प्रशासनिक कार्य— भारतीय संविधान द्वारा प्रशासन के संरक्षण का दायित्व राष्ट्रपति को सोपा गया है किंतु व्यवहार में प्रशासन का संचालन मंत्रिमंडल द्वारा ही किया जाता है। प्रशासन के कुशल संचालन के लिए इसको विभिन्न विभागों में बांटा जाता है प्रत्येक मंत्री को एक या एक से अधिक प्रशासनिक विभाग सौंपे जाते हैं। मंत्रीगण अपने-अपने विभागों या मंत्रालयों का संचालन करते हैं और विभाग के कार्यों पर नियंत्रण रखते हैं। यदि कोई अधिकारी लापरवाही करता है तो मंत्री उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करता है।

3. वैधानिक कार्य — संविधान के द्वारा विधि निर्माण का कार्य संसद को सौंपा गया है, किंतु व्यवहार में यह कार्य मंत्रिमंडल द्वारा ही किया जाता है। जो विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं, उनका प्रारूप संबंधित मंत्री के विभाग द्वारा तैयार किया जाता है। विधेयक तैयार होने के बाद इन्हें मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद के विचार हेतु प्रस्तुत किया जाता है। मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिल जाने के पश्चात ही, विधेयक संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं। संसद में 90% से भी अधिक विधेयक सरकारी विधेयक होते हैं। इसके अलावा मंत्रिमंडल प्रदत्त विधायन की शक्ति का प्रयोग करके कानून निर्माण भी करती है।

4. वित्तीय कार्य— मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद देश की आर्थिक नीति तय करता है। देश के वित्त पर पूरा नियंत्रण मंत्रिमंडल करता है । वित्त मंत्रालय द्वारा देश का वार्षिक बजट तैयार किया जाता है , जिसका मुखिया वित्त मंत्री होता है। मंत्रिमंडल की स्वीकृति मिल जाने के बाद वित्त मंत्री द्वारा बजट लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है। मंत्रिमंडल लोकसभा से बजट पारित करता है।

5. विदेश संबंधों का संचालन— भारत में विदेश नीति मंत्रिमंडल द्वारा निर्धारित की जाती है । इसी विदेश नीति के अनुसार विदेशी संबंधों का संचालन किया जाता है। मंत्रिमंडल के परामर्श से ही राष्ट्रपति दूसरे देशों में भारत के राजदूतों एवं उच्च आयुक्त की नियुक्ति करता है । मंत्रिमंडल के परामर्श से ही राष्ट्रपति अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं में प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। अन्य देशों के साथ जो समझौते एवं संधि की जाती हैं वह भी मंत्रिमंडल के सहमति से किए जाते हैं । संविधान के अनुसार राष्ट्रपति संसद की स्वीकृति से जो युद्ध एवं शांति की घोषणा करता है , वह भी मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है।

6. प्रशासकीय विभागों में समन्वय — शासन के सफल संचालन के लिए सभी प्रशासकीय विभागों में समन्वय होना अति आवश्यक है। इन विभागों के मध्य समन्वय करने का कार्य मंत्रिमंडल द्वारा किया जाता है । विभिन्न विभागों के बीच उत्पन्न विवाद एवं मुद्दे मंत्रिमंडल की बैठकों में सुलझाए जाते हैं क्योंकि इन बैठकों में सभी विभागों के प्रभारी मंत्री भाग लेते हैं , जो मिल-बैठकर विवादों का हल निकालते हैं। मंत्रिमंडल की बैठक की अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है।

7. नियुक्ति संबंधी कार्य— राष्ट्रपति द्वारा देश के प्रमुख पदों पर नियुक्तियां की जाती है हिंदू व्यवहार में यह नियुक्तियां मंत्रिमंडल द्वारा की जाती है क्योंकि राष्ट्रपति जो भी नियुक्तियां करता है मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है। राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिमंडल की सलाह से जिन पदों पर नियुक्ति की जाती है , उनमें प्रमुख हैं— राज्यपाल, महान्यायवादी, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, मुख्य निर्वाचन आयुक्त एवं अन्य आयुक्त, नीति आयोग का उपाध्क्षक एवं सदस्य, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों आदि।

8. समितियों एवं जांच आयोग/आयोगों का गठन— मंत्रिमंडल घोटालों ,हत्याओं, फर्जीवाड़ों, भ्रष्टाचार आदि मामलों की जांच पड़ताल के लिए जांच आयोग को एवं समितियां का गठन करता है। मंत्रिमंडल द्वारा 1975 में घोषित आपातकाल के दौरान

की गई ज्यादातियों की जांच के लिए 1977 में शाह आयोग का गठन किया गया था। इसी प्रकार 1977 में मंत्रिमंडल द्वारा मारुति उद्योग के विरुद्ध लगे आरोपों की जांच के लिए डी. एस. माथुर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया था। अभी पिछले ही वर्ष सितम्बर 2023 में 'एक राष्ट्र- एक चुनाव' जैसे मुद्दे पर पूर्व राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद की अध्यक्षता में समिति की स्थापना की गई थी।

9. आपातकाल की घोषणा— राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग मंत्रिमंडल अथवा मंत्री परिषद द्वारा किया जाता है मंत्रिमंडल के लिए सिफारिश पर ही राष्ट्रपति अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है। राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अंतर्गत राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन की घोषणा और अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय संकटकाल की घोषणा भी मंत्रिमंडल के परामर्श से ही करता है।

10. मंत्रिपरिषद की स्थिति — मंत्रिमंडल संसदीय शासन प्रणाली का केंद्र बिंदु होता है मंत्रिमंडल मंत्री परिषद का एक आंतरिक हिस्सा है जिसमें सर्वोच्च स्तर के मंत्री शामिल होते हैं 1978 से पूर्व मंत्रिमंडल एक राजनीतिक परंपरा के रूप में चल रहा था किंतु 44 में संशोधन अधिनियम 1978 के द्वारा इसका अनुच्छेद 352 (3) में उल्लेख करके इसे संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई मंत्रिमंडल मंत्री परिषद का एक अति महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च निकाय है इस नाते मंत्रिमंडल की फैसला ही मंत्री परिषद की फैसले होते हैं भारत में मंत्रिमंडल की वास्तविक शासक है और यही राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग करता है।

शासन संचालन के कार्य में इसकी भूमिका को देखते हुए कहा जा सकता है कि मंत्री परिषद के निर्णय मंत्रिमंडल के ही निर्णय होते हैं क्योंकि इसमें उच्च- स्तरीय मंत्री शामिल होते हैं। भारतीय संविधान के अंतर्गत कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। इनका प्रयोग वह मंत्रिपरिषद अर्थात मंत्रिमंडल की सहायता से करता है । इस तरह वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमंडल ही है । मंत्री परिषद लोकसभा की प्रति उत्तरदायी है, जब तक लोकसभा में मंत्रिमंडल वाले दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है तब तक मंत्रिमंडल अपने पद पर बना रहता है। राष्ट्रपति एवं संसद दोनों के संदर्भ में मंत्रिमंडल की स्थिति बहुत ही मजबूत है। मंत्रिमंडल एक अति महत्वपूर्ण एवं शक्ति-संपन्न संस्था है , किंतु तब भी वह तानाशाह नहीं बन सकती है क्योंकि ऐसा करने पर जनमत इसके विरुद्ध हो जाएगा। फिर भी व्यवहार में भारत में मंत्रिमंडल शासन शक्तियों का केंद्र बिंदु है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. "प्रधान मन्त्री मंत्रिमण्डल रूपी मेहराव की आधारशिला होता है।" व्याख्या कीजिए। (प्रधानमंत्री के कार्य लिखने हैं) (The Prime Minister is the key-stone of the Cabinet-arch Explain)

2. भारत के प्रधान मन्त्री की नियुक्ति शक्तियों एवं स्थिति की व्याख्या कीजिए। (Discuss the appointment, powers and position of the Prime Minister of India)

3. परिवर्तित भारतीय राजनीतिक परिवेश में प्रधान मन्त्री की भूमिका का वर्णन कीजिए। (Discuss the role of Indian Prime Minister in changed Indian political scenerio)

4. केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद की संरचना एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए। (Discuss the composition and powers of Central Council of Ministers.)

5. भारत में मंत्रिमण्डल प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कीजिए। (Discuss the main features of Cabinet System in India.)

Unit-III

संसद : रचना और कार्य (Parliament: composition and Functions)

भारत में केंद्रीय विधानपालिका को संसद कहा जाता है। भारत में संसद के दो सदन हैं — लोकसभा एवं राज्यसभा। भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 79** के अनुसार, "संघ के लिए एक संसद होगी, जिसमें राष्ट्रपति और दो सदन होंगे जिनको क्रमश: राज्यसभा एवं लोकसभा के नाम से जाना जाएगा।" इस प्रकार राष्ट्रपति को भी संसद का हिस्सा माना जाता है। संसद देश में कानून बनाने वाली सर्वोच्च संस्था है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 से लेकर 123 तक संसद से संबंधित हैं।

संसद के दोनों सदनों का वर्णन इस प्रकार है—

राज्यसभा

राज्यसभा संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। इसे संसद का ऊपरी सदन के साथ - साथ द्वितीय सदन भी कहा जाता है। राज्य सभा का वर्णन इस प्रकार है—

रचना — संविधान के अनुच्छेद 80 के अनुसार आगे सभा के सदस्यों की कुल संख्या ढाई सौ तय की गई है इसमें से 238 सदस्य भारतीय संघ के राज्यों एवं संघ क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं और शेष 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। ये 12 सदस्य वे होते हैं, जिनका साहित्य, विज्ञान, कला एवं समाज सेवा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान होता है।

वर्तमान में राज्यसभा के सदस्यों की संख्या 245 है , जिनमें 233 सदस्य राज्यों एवं संघ क्षेत्रों से चुनकर आते हैं और शेष 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

चुनाव — राज्यसभा के सदस्यों का चुनाव राज्य विधानसभा के सदस्यों द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional Representation) के अनुसार एकल संक्रमनीय मत (single Transferable vote) पद्धति द्वारा किया जाता है। अमेरिका , स्विट्जरलैंड एवं रूस के विपरीत, राज्यसभा में भारतीय संघ के सभी राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है।

सदस्यों की योग्यताएं— संविधान के अनुसार राज्यसभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. वह 30 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
3. वह पागल, दिवालिया या अपराधी ना हो।
4. वह किसी लाभ के पद पर आसीन ना हो ।
5. वह संसद द्वारा बने किसी कानून के द्वारा आरोग्य न ठहराया गया हो

एक राज्य में रहने वाला व्यक्ति किसी दूसरे राज्य से चुनाव लड़ सकता है।

कार्यकाल — राज्य सभा एक स्थाई सदन है। इसलिए अनुच्छेद 83(1) के अनुसार इसको भंग नहीं किया जा सकता है। राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव 6 वर्ष के लिए किया जाता है, लेकिन इसके लगभग एक तिहाई सदस्य हर 2 वर्ष बाद सेवानिवृत हो जाते हैं।

पीठासीन अधिकारी — भारत के उपराष्ट्रपति राज्यसभा के पदेन सभापति के तौर पर कार्य करते हैं। संविधान के **अनुच्छेद 89** के अंतर्गत, **"भारत का उपराष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होगा।"** राज्यसभा का एक उपसभापति भी होता है और उसका चुनाव स्वयं राज्य सभा द्वारा किया जाता है। सभापति सदन के बैठकों की अध्यक्षता करता है और सदन में अनुशासन बनाए रखता है। राज्यसभा के सभापति(उप-राष्ट्रपति) का चुनाव 5 वर्ष के लिए किया जाता है।

विरोधी दल के नेता को मान्यता — 1977 से पूर्व राज्यसभा में विरोधी दल के नेता को मान्यता प्राप्त नहीं थी , किंतु 1977 में जनता पार्टी सरकार ने इस सदन में विरोधी दल के नेता को कानूनी मान्यता प्रदान की। विरोधी दल के मान्यता प्राप्त नेता का दर्जा भारत सरकार के कैबिनेट मंत्री के बराबर होता है। इस नाते उसे कैबिनेट मंत्री के बराबर मासिक वेतन , निशुल्क आवास, यात्रा भत्ता, टेलीफोन एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं।

राज्य सभा की शक्तियाँ (Powers of Rajya Sabha)- राज्य सभा भारतीय संसद का दूसरा, किन्तु उच्च सदन है। राज्य सभा को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हैं-

1. वैधानिक शक्तियां (Legislative Powers)- राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर कानून बनाती है। कोई भी साधारण विधेयक पहले राज्य सभा में पेश किया जा सकता है और यहाँ से पारित होने पर लोक सभा के पास भेजा जाता है। कानून बनने के लिए साधारण विधेयक का दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होना आवश्यक है। किसी विधेयक पर दोनों सदनों में गतिरोध होने की स्थिति में अर्थात् जब कोई विधेयक एक सदन द्वारा पारित हो जाए और दूसरा सदन छः महीने तक उस पर कोई कार्यवाही न करें, तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है, जिस में विधेयक पर विचार किया जाता है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष करता है। इस बैठक में जो फैसला साधारण बहुमत से होता है, यह दोनों सदनों का फैसला होता है। 26 मार्च, 2002 को राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने संसद का संयुक्त अधिवेशन बुलाया, क्योंकि 18 मार्च, 2002 को लोक सभा द्वारा पारित किए गए आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002 को 21 मार्च, 2002 को राज्य सभा ने अस्वीकार कर दिया था। संसद के संयुक्त अधिवेशन में विधेयक के समर्थन में 425 और विरोध में 296 मत पड़े। इस संयुक्त अधिवेशन में लोक सभा की इच्छानुसार फैसला हुआ।

2. कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive)-राज्य सभा की कार्यपालिका पर नियन्त्रण-सम्बन्धी शक्तियां बहुत सीमित हैं। राज्य सभा के सदस्य मंत्रिमंडल में से लिए जा सकते हैं। राज्य सभा के सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार है। इन प्रश्नों द्वारा वे प्रशासन के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। राज्य सभा के सदस्य बजट पर विचार अभिव्यक्त करके तथा 'काम रोको प्रस्ताव' व 'ध्यानाकर्षण प्रस्ताव' पेश करके सरकार की कड़ी आलोचना कर सकते हैं तथा सरकार पर प्रभाव डाल सकते हैं; किन्तु राज्य सभा सरकार के विरुद्ध '**अविश्वास प्रस्ताव**' पारित करके इसको अपदस्थ नहीं कर सकती है।

3. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)-राज्य सभा को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं-

(i) वह लोक सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति के खिलाफ **महाभियोग प्रस्ताव पारित** कर सकती है और उसे अपदस्थ कर सकती है।

(ii) उसको उप-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का अधिकार है।

(iii) वह लोक सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को हटाए जाने का प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(iv) वह लोक सभा के साथ मिलकर उच्च अधिकारियों, जैसे-मुख्य चुनाव आयुक्त, महा न्यायवादी, नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक आदि के खिलाफ दोषारोपण का प्रस्ताव पारित करके, उन्हें अपदस्थ कर सकती है।

(v) राज्य सभा अपने विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को दण्ड दे सकती है।

4. वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)- वित्तीय क्षेत्र में राज्य सभा की शक्तियां बहुत ही सीमित हैं। कोई भी धन विधेयक राज्य सभा में पेश नहीं किया जा सकता है। राज्य सभा किसी भी धन विधेयक को अपने पास अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रख सकती है। इस अवधि के पश्चात् लोक सभा द्वारा पारित विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है।

5. चुनाव सम्बन्धी शक्तियाँ (Electoral Powers)- राज्य सभा को लोक सभा के सामन कई प्रकार की चुनावी शक्तियाँ प्राप्त हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।
(ii) राज्य सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।
(iii) राज्य सभा अपने उप-सभापति का निर्वाचन करती है।

6. संशोधन-सम्बन्धी शक्तियां (Amendment Powers)- राज्य सभा को, लोक सभा के समान संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस विषय में उसको लोक सभा के बराबर शक्तियाँ प्राप्त हैं, क्योंकि संविधान संशोधन विधयेक के विषय में राज्य सभा व लोक सभा के मध्य गतिरोध उत्पन्न होने पर संविधान दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन बुलाने की व्यवस्था नहीं की गई है। अन्य शब्दों में, यदि लोक सभा द्वारा पारित किसी संविधान संशोधन विधेयक को राज्य सभा अस्वीकार कर देती है, तो वह रद्द हो जाता है।

7. विशिष्ट शक्तियां (Special Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अतिरिक्त संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ विशेष शक्तियाँ दी गई हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा राज्य सूची में दिए गए किसी विषय को 'राष्ट्रीय महत्त्व' का घोषित कर के उस पर अस्थायी रूप से कानून बनाने की शक्ति संसद को दे सकती है। ऐसा करने के लिए उसे उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करना होता है।

(ii) राज्य सभा नई अखिल भारतीय सेवा(All India Service), जो संघ एवं राज्यों की सांझी सेवा होती है, की स्थापना कर सकती है। इस तरह की सेवा की स्थापना के लिए इसे उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करना होता है। वर्तमान में IAS, IPS, IFoS (Indian Forest Service) ये तीनों अखिल भारतीय सेवाएं हैं।

8. अन्य शक्तियाँ (Other Powers) - उपर्युक्त शक्तियों के अलावा भी राज्य सभा को कुछ शक्तियाँ प्राप्त हैं, जैसे-

(i) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों में परिवर्तन कर सकती है।
(ii) राज्य सभा संविधान के अनुच्छेद तीन के अन्तर्गत लोक सभा के साथ मिलकर राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन तथा राज्यों का नामकरण कर सकती है।
(iii) राज्य सभा अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों एवं समझौतों के क्रियान्वयन हेतु लोक सभा के साथ मिलकर समुचित कानून का निर्माण कर सकती है।
(iv) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेश को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है।
(v) राज्य सभा लोक सभा के साथ मिलकर नागरिकता सम्बन्धी नियमों का निर्धारण, सांसदों को प्राप्त होने वाले वेतन, भत्तों व अन्य सुविधाओं का निर्धारण, राज्य विधान परिषद् की स्थापना अथवा समाप्ति इत्यादि कार्य भी करती है।

निष्कर्ष (Conclusion) - उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि राज्य सभा को अनेक शक्तियाँ प्राप्त हैं, किन्तु तब भी इसे लोक सभा के बराबर शक्तियाँ प्राप्त नहीं है। इस आधार पर इसे द्वितीय, सदन ही नहीं, बल्कि द्वितीयक सदन भी कहा जाता है।

लोकसभा (House of the people)

लोकसभा जनता का सदन कहलाता है। लोकसभा भारतीय संसद का निम्न , किंतु शक्तिशाली सदन है , क्योंकि यह देश की जनता का प्रतिनिधित्व करता है। सरकार का बनना लोकसभा में उसके बहुमत पर निर्भर करता है।

रचना — प्रारंभ में लोकसभा की सदस्य संख्या 500 थी, लेकिन वर्तमान में इसकी अधिकतम संख्या 550 है, अनुच्छेद 81 एक के अनुसार इन 550 सदस्यों में अधिक से अधिक 530 सदस्य राज्यों से और भी सदस्य केंद्र शासित प्रदेशों से चुने जा सकते हैं। दिसंबर 2019 से पहले राष्ट्रपति दो एंग्लो इंडियन लोगों को लोकसभा में मनोनीत कर सकता था, किंतु 2019 से यह व्यवस्था खत्म कर दी गई है। वर्तमान में लोकसभा के 543 सदस्यों का चुनाव किया जाता है।

प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र (Territorial Constituencies) - लोक सभा का चुनाव प्रत्यक्ष तरीके से होता है। इसके लिए चुनाव सम्पन्न कराने के लिए सम्पूर्ण देश को उचित तरीके से निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद 81 (2) विभिन्न राज्यों के मध्य और एक ही राज्य में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के मध्य समरूप (Uniform) प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करता है। इसके लिए-

1. प्रत्येक राज्य को लोक सभा की सीटों का आवंटन इस प्रकार से किया जाता है कि सीटों (स्थानों) की संख्या और उस राज्य की जनसंख्या के मध्य अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासम्भव बराबर रहे।

2. प्रत्येक राज्य को निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार से विभाजित किया जाता है कि समस्त राज्य में प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र की जनसंख्या और उसको आवंटित सीटों की संख्या के मध्य अनुपात यथासम्भव बराबर रहे।

सीटों के आबंटन का आधार (Basis of Allocation of Seats) - पहले भारतीय संघ के राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों की जनसंख्या के आधार पर लोक सभा की सीटों का आबंटन किया जाता था। सीटों की संख्या निर्धारित करते समय पिछली जनगणना के आंकड़े प्रयोग में लाए जाते थे। लेकिन 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी कि 2001 की जनगणना तक राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटें आवंटित करने हेतु 1971 की जनगणना के आंकड़े प्रयोग में लाए जाएंगे और 2026 तक लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटों की संख्या में वृद्धि नहीं की जाएगी। आगे चलकर 84वें संशोधन अधिनियम (2001) द्वारा यह व्यवस्था कर दी गयी कि लोक सभा एवं राज्य विधान सभाओं की सीटों की संख्या में परिवर्तन किए बिना 1991 की जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाएगा, लेकिन 87वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा 1991 की जनगणना के स्थान पर 2001 की जनगणना को निर्वाचन क्षेत्रों के पुनर्गठन का आधार बना दिया गया। स्पष्ट है कि 84वें एवं 87वें संशोधनों के बावजूद भी 2026 तक लोक सभा की सीटों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

सदस्यों का चुनाव (Election of the Members) - सविधान के अनुच्छेद 83 के अनुसार लोक सभा के सभी सदस्य सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। पहले मताधिकार की आयु 21 वर्ष थी, किन्तु 61वें संशोधन अधिनियम (1989) द्वारा 21 वर्ष की आयु को घटाकर 18 वर्ष कर दिया गया। लोक सभा के सभी निर्वाचन क्षेत्र एकल-सदस्य रखे गए हैं अर्थात् लोक सभा के लिए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से एक सदस्य का चुनाव किया जाता है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए इनकी जनसंख्या के अनुपात में लोक सभा में कुछ सीटें आरक्षित की गयी हैं लेकिन अल्पसंख्यकों के लिए सीटों के आरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। 104वें संशोधन अधिनियम (2019) द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण 2030 तक बढ़ा दिया गया है। वर्तमान में लोक सभा में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए क्रमश: 84 एवं 47 सीटें आरक्षित हैं।

योग्यताएँ (Qualifications)- लोक सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ निर्धारित की गयी हैं-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

3. वह पागल, दिवालिया या अपराधी न हो।

4. वह भारत सरकार, या राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद पर आसीन न हो।

5. वह संसद द्वारा निर्मित किसी कानून के तहत अयोग्य न ठहराया गया हो।

6. 31 जुलाई, 1996 को निर्मित कानून के अनुसार लोक सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार का नाम दस व्यक्तियों द्वारा प्रस्तावित किया जाना चाहिए।

कार्यकाल (Term of Office)- लोक सभा का चुनाव पांच वर्ष के लिए किया जाता है अर्थात लोक सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष है। 42वें संशोधन अधिनियम (1976) द्वारा लोक सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष से बढ़ाकर छः वर्ष कर दिया गया था, लेकिन 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा इसे पुनः पाँच वर्ष कर दिया गया। राष्ट्रपति द्वारा पांच वर्ष पूर्ण होने से पूर्व भी लोक सभा को भंग किया जा सकता है, लेकिन वह मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही ऐसा कर सकता है; अपनी इच्छा से नहीं। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति ने 13 मार्च, 1991 को चन्द्रशेखर सरकार की सिफारिश पर नौवीं लोक सभा भंग कर दी थी। इसी

पीठासीन अधिकारी (Presiding Officers) - आम चुनावों के पश्चात् अपने प्रथम अधिवेशन में लोक सभा अपने एक सदस्य को अध्यक्ष (Speaker) और एक को उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) चुनती है। 18वीं लोक सभा ने अपने प्रथम अधिवेशन में भारतीय जनता पार्टी के सांसद ओम बिरला को सर्वसम्मति से अपना अध्यक्ष चुना, लेकिन दलगत राजनीति के कारण उपाध्यक्ष का चुनाव नहीं हो पाया। लोक सभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष को लेकर पिछले काफी समय से यह परम्परा चली आ रही है कि लोक सभा अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल अथवा गठबंधन का ही होता है, किन्तु उपाध्यक्ष के पद पर विपक्षी दल के किसी सदस्य को चुन लिया जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं है कि इस परंपरा का हमेशा पालन किया जाए।

विरोधी दल के नेता को मान्यता (Recognition to the Leader of Opposition)— संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए 1977 में जनता पार्टी सरकार ने लोक सभा में विरोधी दल के नेता को कानूनी मान्यता प्रदान की थी। विरोधी दल के मान्यता प्राप्त नेता का दर्जा केबिनेट मंत्री के दर्ज के बराबर होता है। इस नाते उसे केबिनेट मंत्री के बराबर वेतन, निःशुल्क आवास एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं। 18वीं लोक सभा के लिए कांग्रेस के सांसद राहुल गाँधी का विपक्ष के मान्यता प्राप्त नेता के रूप में चयन किया गया। जिस विपक्षी पार्टी को लोकसभा की सदस्य संख्या की 10 % सीटें प्राप्त होती हैं, उसी पार्टी के लोकसभा नेता को विरोधी दल के नेता की मान्यता दी जाती है। इसी कारण 17वीं लोक सभा में कांग्रेस के सांसद अधीर रंजन चौधरी भी विपक्ष के नेता तो थे, किन्तु मान्यता प्राप्त नेता नहीं।

लोक सभा की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions of Lok Sabha)-

लोक सभा की शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers) - लोक सभा का प्रमुख कार्य जनता की इच्छाओं के अनुरूप कानून का निर्माण करना है। संविधान में कानून-निर्माण के सम्बन्ध में संसद के दोनों सदनों को समान अधिकार प्रदान किया गया है। किसी गैर-वित्तीय विधेयक का लोक सभा व राज्य सभा द्वारा अलग-अलग पारित होना जरूरी है। लेकिन किसी विधेयक को लेकर दोनों सदनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में लोक सभा राज्य सभा की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। इसका कारण यह है कि मतभेद को दूर करने के लिए संसद के जिस संयुक्त अधिवेशन को बुलाया जाता है, उसकी अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष करता है। साथ ही विधेयक पर हुए मतदान में अधिक सदस्य संख्या के कारण लोक सभा के पक्ष में फैसला होता है।

2. कार्यपालिका पर नियन्त्रण (Control over Executive) - संविधान के अनुच्छेद 75 के अनुसार कार्यपालिका (मन्त्रि-परिषद्) प्रत्येक कार्य एवं नीति के लिए संसद के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होती है, किन्तु व्यावहारिक रूप से वह लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है। यदि लोक सभा मन्त्रि-परिषद् के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव' पारित कर दे, तो मन्त्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। लोक सभा के सदस्य प्रश्न पूछकर, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, काम रोको प्रस्ताव, निन्दा प्रस्ताव पारित

करके भी कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखते हैं।

3. न्यायिक शक्तियां (Judicial Powers)-लोक सभा को कुछ न्यायिक शक्तियाँ भी प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग वह राज्य सभा के साथ मिलकर कर सकती है-

(i) लोक सभा राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग पारित करने में भाग लेती है।

(ii) यदि कोई सदस्य, व्यक्ति अथवा संस्था लोक सभा के विशेषाधिकारों का उल्लंघन करता है, तो लोक सभा उसको दंड दे सकती है।

(iii) लोक सभा राज्य सभा के साथ मिलकर सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को अपदस्थ करने के लिए महाभियोग प्रस्ताव पारित कर सकती है।

(iv) उप-राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग लगाने का अधिकार राज्य सभा को है, किन्तु उसमें फैसला देने का अधिकार लोक सभा को है।

(v) लोक सभा राज्य सभा के साथ मिलकर मुख्य चुनाव आयुक्त(CEC), महान्यायवादी (AG) तथा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक(CAG) के खिलाफ दोषारोपण के प्रस्ताव पारित कर सकती है। ऐसा प्रस्ताव पारित होने पर राष्ट्रपति सम्बन्धित अधिकारी को हटा सकता है।

4. वित्तीय शक्तियां (Financial Powers)-लोक सभा को व्यापक वित्तीय शक्तियाँ प्राप्त हैं। धन विधेयक केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किए जाते हैं तथा कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, इसका निर्णय लोक सभा अध्यक्ष ही करता है। लोक सभा द्वारा पारित किए गए धन विधेयक का राज्य सभा द्वारा 14 दिनों के भीतर अनुमोदन करना आवश्यक है। यदि राज्य सभा 14 दिन के अन्दर धन विधेयक पारित नहीं करती है, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। राज्य सभा को धन विधेयक में संशोधन करने का अधिकार है, किन्तु उसे स्वीकार करना या न करना लोक सभा की इच्छा पर निर्भर करता है। यहीं नहीं, संसद द्वारा पारित धन विधेयक को राष्ट्रपति भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस प्रकार वित्तीय क्षेत्र में लोक सभा को व्यापक शक्तियों प्राप्त हैं।

5. संवैधानिक शक्तियाँ (Constitutional Powers)- संविधान में लोक सभा एवं राज्य सभा मिलकर संशोधन कर सकती हैं। इस विषय में दोनों सदनों की शक्तियाँ एक समान हैं। संशोधन-सम्बन्धी प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन वह प्रस्ताव एक सदन द्वारा पारित होने के बाद दूसरे सदन द्वारा भी पारित होना चाहिए। यदि कभी संशोधन प्रस्ताव (विधेयक) पर संसद के दोनों सदनों में मतभेद हो जाए, तो ऐसी स्थिति में संयुक्त अधिवेशन बुलाए जाने का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में वह प्रस्ताव रद्द हो जाएगा।

6. चुनाव-सम्बन्धी कार्य (Electoral Powers)-लोक सभा अपने अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का चुनाव करती है। लोक सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। लोक सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति के चुनाव में भी भाग लेते हैं।

7. विचारशील शक्तियां (Deliberative Powers)- लोक सभा सम्पूर्ण देश का प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए सम्पूर्ण देश की समस्याओं पर इस सदन में व्यापक रूप से विचार-विमर्श किया जाता है। लोक सभा में विभिन्न आयोगों की रिपोटों पर भी गंभीरता से विचार किया जाता है और यदि इसे इनमें कहीं कोई कमी नज़र आती है, तो इसमें उसकी भरपूर आलोचना भी की जाती है, जिससे कि उस कमजोरी को दूर किया जा सके।

स्थिति (Position)-लोक सभा की व्यापक शक्तियों को देखते हुए इसकी स्थिति काफी महत्वपूर्ण है। लोक सभा को प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में (वैधानिक, वित्तीय व कार्यकारी) वास्तविक एवं महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं। लोक सभा राज्य सभा से शक्तिशाली एवं प्रभावशाली है। इसलिए यह कहा गया है कि जब हम संसद की बात करते हैं, तो तब व्यावहारिक रूप से संसद से हमारा अभिप्राय लोक सभा से ही होता है।

संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances of Members of Parliament)- संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को समान वेतन, भत्ते, एवं अन्य सुविधाएं मिलती हैं और ये संसद द्वारा तय किए जाते हैं। संसद सदस वेतन, भत्ता एवं पेंशन (संशोधन) अधिनियम, 2010 के अनुसार वर्तमान में संसद के सदस्यों को ₹50,000 मासिक वेतन ₹ 45,000 मासिक निर्वाचन क्षेत्र भता एवं ₹ 24,500 मासिक कार्यालय भत्ता मिलता है। अधिवेशन के दौरान इन्हें ₹2000 प्रति दिन की दर से दैनिक भत्ता भी मिलता है। इसके अलावा सदस्यों को निशुल्क आवास सहित अन्य सुविधाएं एवं भत्ते भी दिए जाते हैं

संसद सदस्यों के विशेषाधिकार (Privileges of the Members of the Parliament)- संसद सदस्य अपने कर्तव्यों का ठीक से निर्वहन कर सके, इसके लिए संविधान द्वारा इन्हें (व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से) निम्नलिखित विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं-

1. संसद या इसकी किसी समिति में कही गयी किसी बात के लिए संसद सदस्यों पर किसी न्यायालय में कोई मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता है।

2. संसद का अधिवेशन आरम्भ होने से 40 दिन पूर्व और अधिवेशन समाप्त होने के 40 दिन बाद तक संसद सदस्यों को दीवानी मामलों में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। फौजदारी मामलों में इन्हें गिरफ्तार तो किया जा सकत है, लेकिन गिरफ्तारी की सूचना लोक सभा अध्यक्ष को तुरन्त देनी आवश्यक है।

3. ब्रिटिश परम्परा के अनुसार संसद के अधिवेशन के दौरान, सदन की अनुमति के बिना, किसी सदस्य को राय देने के लिए नहीं बुलाया जा सकता है।

4. सामूहिक रूप से भी संसद को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए गए हैं; जैसे-

(i) लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा का सभापति कभी भी किसी बाहरी व्यक्ति को सदन से बाहर करा सकता है।

(ii) प्रत्येक सदन को अपनी कार्यवाही नियन्त्रित एवं संचालित करने का अधिकार है। वह न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना, अपनी चार दीवारी के अंदर कोई भी निर्णय ले सकता है।

(iii) प्रत्येक सदन अपनी मान हानि या अपने विशेषाधिकारों के उल्लंघन करने वाले व्यक्ति या संस्था को दण्डित कर सकता है। 1990 में भूतपूर्व सदस्य के. के. तिवारी को राज्य सभा ने लताड़ लगायी थी।

संसद के अधिवेशन (Sessions and Quoram of the Parliament) — राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर संसद के अधिवेशन बुलाए जाते हैं। संविधान के अनुच्छेद 85 (1) के अनुसार पिछले अधिवेशन की अन्तिम तिथि और आगामी अधिवेशन की पहली तिथि के मध्य छः माह से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि वर्ष में दो बार संसद का अधिवेशन अवश्य बुलाया जाना चाहिए, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रपति कभी भी संसद का विशेष अधिवेशन बुला सकता है।

गणपूर्ति — संसद के किसी भी सदन की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए कुल सदस्य संख्या के 1/10 सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य है। इसका अभिप्रायः यह हुआ कि राज्य सभा की कार्यवाही तब ही प्रारम्भ की जा सकती है, जब कम-से-कम 25 सदस्य सदन में मौजूद हों। इसी प्रकार लोक सभा की कार्यवाही शुरू करने के लिए सदन में कम-से-कम 55 सदस्य उपस्थित होने चाहिए।

संसद की सीटों का खाली होना (Vacation of the Seats of the Parliament) संविधान के अनुच्छेद 101 के अनुसार निम्नलिखित स्थितियों में संसद के किसी भी सदन की सीट खाली हो जाती है-

1. यदि कोई व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का सदस्य निर्वाचित हो जाता है, तो उसे एक सदन की सीट को छोड़ना होता है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति संसद एवं किसी राज्य विधानमंडल का सदस्य चुन लिया जाता है, तो उसे राज्य विधानमंडल की

सदस्यता से त्याग-पत्र दे देना चाहिए अन्यथा संसद में उसकी सीट खाली हो जाती है।

2. यदि अनुच्छेद 102 के तहत संसद किसी सदस्य को किसी आधार (जैसे-मानसिक रूप से अस्वस्थ) पर अयोग्य घोषित कर देती है।

3. यदि कोई सदस्य संबंधित पीठासीन अधिकारी (लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति) को अपना इस्तीफा दे देता है।

4. यदि सदन की अनुमति के बिना कोई सदस्य 60 दिन से अधिक समय तक सदन की बैठकों में उपस्थित नहीं रहता है।

संसद की शक्तियाँ एवं कार्य

(Powers and Functions of the Parliament)

भारत में केन्द्रीय विधानपालिका 'संसद' के नाम से जानी जाती है। इसको संविधान द्वारा व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। हम संसद की शक्तियों एवं कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं-

1. **वैधानिक शक्तियाँ (Legislative Powers)** — संविधान के अनुच्छेद 245 द्वारा समस्त विषयों को तीन सूचियों (संघ सूची, राज्य सूची एवं समवर्ती सूची) में विभक्त किया गया है। संसद को संघ सूची में शामिल 97 विषयों पर कानून बनाने की शक्ति प्रदान की गयी है। विशेष परिस्थितियों में यह राज्य सूची में दिए गए 66 विषयों पर भी कानून बना सकती है। समवर्ती सूची में शामिल 47 विषयों पर इसके द्वारा बने कानून को ही अधिमान (Preference) दिया जाता है। साधारण विधेयक (गैर-धन विधेयक) संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। आम तौर पर, कम महत्व के विधेयक पहले राज्य सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। संसद के एक सदन द्वारा पारित किए जाने के पश्चात विधेयक दूसरे सदन में भेजा जाता है। जब उस विधेयक को दूसरा सदन पारित कर देता है, तो उसे स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के उपरांत वह विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है। अगर एक सदन द्वारा पारित विधेयक को दूसरा सदन अस्वीकार कर देता है अथवा वह छः महीने के अन्दर उस पर कोई कार्रवाई नहीं करता है, तो संविधान के अनुच्छेद 108 के अन्तर्गत इस गतिरोध को दूर करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलायी जाती है। संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। यदि इस बैठक में विधेयक उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले दोनों सदनों के सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो वह राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

2. **कार्यपालिका पर नियंत्रण संबंधी शक्तियाँ (Powers related with Control over Executive)**-

(i) वाद-विवाद (Debate)- संसद के अधिवेशन के दौरान संसद के दोनों सदनों में विभिन्न मुद्दों पर वाद-विवाद किया जाता है। प्रत्येक सदन में विपक्षी दल सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों की आलोचना करते हैं, तो सत्तारूढ़ दल सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों के पक्ष में दलीलें देते हैं। दोनों सदनों में होने वाल वाद-विवाद समाचार-पत्रों एवं दूरदर्शन द्वारा जनता तक पहुंचता है।

(ii) प्रश्न पूछकर (Questions)- संसद के अधिवेशन के दौरान प्रति दिन की कार्यवाही का प्रथम घण्टा 'प्रश्न काल' (Questions Hour) कहलाता है। प्रश्न काल के दौरान सदस्य नियमानुसार, मंत्रियों से उनके विभाग के सबंध में प्रश्न पूछते हैं। मंत्रियों को सदन में पूछे गए प्रश्नों का उचित उत्तर प्रश्नकर्ता को देना होता है।

(iii) स्थगन प्रस्ताव द्वारा (by Adjournment Motion)- स्थगन का अर्थ है - कार्यवाही रोकना । किसी भी सदन का कोई भी सदस्य सार्वजनिक महत्व के विषय पर बहस करने के लिए स्थगन प्रस्ताव ला सकता है। पीठासीन अधिकारी द्वारा प्रस्ताव की स्वीकृति मिलने पर सदन की कार्यवाही रोककर उस विषय पर चर्चा की जाती है। ज्यादातर विपक्ष के सदस्य स्थगन प्रस्ताव लाते हैं।

(iv) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (Call Attention Motion)- किसी महत्वपूर्ण विषय या घटना की ओर सरकार का ध्यान

दिलाने के लिए कोई भी सदस्य सदन में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है। प्रायः यह प्रस्ताव किसी घटना की ओर संबंधित मंत्री का ध्यान दिलाने के लिए लाया जाता है।

(v) निन्दा प्रस्ताव (Censure Motion)- मंत्रि-परिषद पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से निन्दा प्रस्ताव एक प्रभावी साधन है, भले ही इसके पारित होने पर मन्त्रि-परिषद को त्याग-पत्र न देना पड़े। कभी भी कोई भी सदन मन्त्रि-परिषद के विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव पारित कर सकता है।ज्यादातर विपक्ष के सदस्य स्थगन प्रस्ताव लाते हैं।

(vi) अविश्वास प्रस्ताव (No-confidence Motion)- संविधान के अनुच्छेद 75(3) के अनुसार "मंत्रि-परिषद सामूहिक रूप से लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। इसलिए लोक सभा कभी भी मंत्रि-परिषद (सरकार) के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित करके इसको अपदस्थ कर सकती है। अविश्वास प्रस्ताव के पास होने पर सरकार को अपना इस्तीफा देना पड़ता है। अप्रैल 1999 में वाजपेयी सरकार का इसलिए पतन हो गया था, क्योंकि वह लोक सभा से अपने पक्ष में 'विश्वास प्रस्ताव पारित कराने में सफल नहीं रही थी।

3. वित्तीय शक्तियां — अन्य देशों की तरह, भारत में भी संसद बजट पारित करती है। संसद द्वारा बजट पारित किए बिना सरकार न तो एक भी पैसा खर्च कर सकती है और न ही जनता पर कोई कर लगा सकती है या कर-संग्रह कर सकती है। उल्लेखनीय है कि संविधान द्वारा राज्य सभा की तुलना में लोक सभा को बहुत अधिक वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संविधान के **अनुच्छेद 109** के अनुसार **"कोई भी धन विधेयक राज्य प्रभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।"** स्पष्ट है कि लोक सभा द्वारा पारित हो जाने के बाद ही धन विधेयक राज्यसभा के पास भेजा जाता है। यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा पारित किसी धन विधेयक को पारित कर देती है तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है, किन्तु यदि राज्य सभा लोक सभा द्वारा पारित किसी धन विधेयक को नामंजूर कर देती है या फिर 14 दिन के अन्दर इस पर कोई निर्णय नहीं लेती है, तो भी यह राज्य सभा द्वारा पारित हुआ मान लिया जाता है और इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाने के बाद विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है। अतः देश के वित्त पर संसद का पूरा नियंत्रण होता है।

4. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)- संविधान द्वारा संसद को न्यायिक शक्तियों भी दी गयी हैं। अनुच्छेद 61 के तहत संसद राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताय' (Impeachment Resolution) पारित करके उसे कभी भी अपदस्थ कर सकती है। 'उप-राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार राज्य सभा के पास, और इसकी जांच करने का अधिकार लोक सभा के पास है। लोक सभा एवं राज्य सभा मिलकर महाभियोग प्रस्ताव द्वारा सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पद से हटा सकती हैं। इसी प्रकार संसद के ये दोनों सदन मिलकर महा न्यायवादी, मुख्य चुनाव आयुक्त एवं नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के विरुद्ध कभी भी महाभियोग प्रस्ताव पारित करके इन्हें अपदस्थ कर सकते हैं। महाभियोग प्रस्ताव पास होने के लिए सदन का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक है। लोक सभा एवं राज्य सभा किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा अपनी अवमानना करने या विशेषाधिकारों का उल्लंघन करने पर उसे दण्डित कर सकती हैं।

5. संशोधन की शक्तियाँ (Powers of Amendment)- अनुच्छेद 368 के द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति सौंपी गयी है। लेकिन केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संसद 'संविधान के मूलभूत ढांचे' में संशोधन नहीं कर सकती है। संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग साधारण बहुमत से और कुछ अन्य अनुच्छेदों में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग विशेष बहुमत से पारित होना चाहिए। संविधान लागू होने के बाद से अब तक, संसद सविधान में 2023 तक 106 संशोधन कर चुकी है।

6. निर्वाचन संबंधी शक्तियां (Electoral Powers)- संविधान द्वारा संसद को कुछ निर्वाचन संबंधी शक्तियाँ भी प्रदान की गयी हैं। संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, राज्य विधान सभाओं के सदस्यों के साथ मिलकर राष्ट्रपति को चुनते हैं. तो राज्य सभा एवं लोक सभा के सभी सदस्य उप-राष्ट्रपति को चुनते हैं। इसके अलावा, लोक सभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करती है, तो राज्य सभा अपने उप-सभापति को चुनती है।

7. विविध शक्तियाँ (Miscellaneous Powers) — उपर्युक्त शक्तियों के अलावा, संसद को कुछ अन्य शक्तियाँ भी प्राप्त हैं; जैसे-

1. राष्ट्रपति द्वारा घोषित तीनों प्रकार के आपातकालों की पुष्टि संसद द्वारा की जाती है। स्पष्ट है कि यदि संसद इनकी पुष्टि नहीं करेगी, तो ये प्रभावी ही नहीं होंगे। अगर आपातकालीन अवधि बढ़ाने की जरूरत होती है, तब भी इसकी पुष्टि संसद द्वारा की जाती है।

2. संसद राष्ट्रपति द्वारा जारी अध्यादेशों (Ordinances) की भी पुष्टि करती है। संसद द्वारा पुष्टि न होने पर अध्यादेश छः माह के बाद समाप्त हो जाता है।

3. संसद सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में परिवर्तन कर सकती है।

4. संविधान के अनुच्छेद 3 के अन्तर्गत संसद राज्यों का पुनर्गठन, राज्यों की सीमाओं में परिवर्तन और राज्यों के नाम बदल सकती है।

5. संसद अन्तर्राष्ट्रीय संधियों एवं समझौतों के क्रियान्वयन के लिए कानून बना सकती है।

6. संसद राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, राज्यपालों, संघ लोक सेवा आयोग चुनाव आयोग आदि के अध्यक्षों एवं सदस्यों के वेतन एवं भत्तों का निर्धारण करती है।

7. संसद किसी नई विधान परिषद की स्थापना या किसी मौजूदा विधान परिषद की समाप्ति कर सकती है।

8. संसद नागरिकता संबंधी नियमों का निर्धारण करती है।

क्या भारतीय संसद एक सम्प्रभु संस्था है? (Is Indian Parliament a Sovereign Body?)

जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या भारतीय संसद एक संप्रभु संस्था है, तो हम पाते हैं कि संविधान द्वारा भारतीय संसद को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गयी है, किन्तु तब भी यह ब्रिटिश संसद की भांति सम्प्रभु संस्था नहीं है। भारतीय संसद सम्प्रभु नहीं है, क्योंकि इसको शक्तियों पर अनेक प्रतिबंध लगे हैं; जैसे-

1. संसद द्वारा निर्मित कानूनों का परीक्षण करने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्निरीक्षण (Judicial Review) की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए यह जाँच करता है कि कोई कानून संविधान का उल्लंघन तो नहीं करता है। यदि सर्वोच्च न्यायालय की दृष्टि में यह कानून संविधान का उल्लंघन करता है, तो वह उसी सीमा तक उस कानून को असंवैधानिक घोषित कर देता है, जिस सीमा तक वह संविधान का उल्लंघन करता है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोषित किए जाने के बाद कानून निरस्त हो जाता है।

2. सामान्य परिस्थितियों में संसद को 'संघ सूची' में शामिल 97 विषयों पर ही कानून बनाती हैं।

3. भारत में संसद नहीं, बल्कि संविधान सर्वोच्च है और संसद भी इसके तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करती है।

4. भारतीय संसद को संविधान में संशोधन करने की निरपेक्ष शक्ति प्राप्त नहीं है, क्योंकि, प्रथम, तो संविधान के कुछ अनुच्छेदों में संशोधन के लिए आधे से अधिक राज्य विधानमंडलों के अनुमोदन की आवश्यकता होती है और द्वितीय, केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार संसद 'संविधान के मूलभूत ढांचे' में संशोधन नहीं कर सकती है।

राज्य सभा एवं लोक सभा के मध्य संबंध (Relationship between Rajya Sabha and Lok Sabha)

अधिकतर कार्य लोकसभा और राज्यसभा मिलकर करते हैं। उनके बीच के संबंधों को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता हैं —

1. कानून-निर्माण (Law-Making)- सैद्धान्तिक रूप से कानून निर्माण के क्षेत्र में राज्य सभा एवं लोक सभा की शक्तियाँ समान हैं, क्योंकि साधारण विधेयक (गैर-धन विधेयक) दोनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है और यह तब ही संसद द्वारा पारित माना जाता है, जब ये दोनों सदन इसे अलग-अलग पारित कर देते हैं। किन्तु व्यवहार में दोनों सदनों की शक्तियाँ बराबर नहीं हैं। संविधान के अनुच्छेद 108 के अनुसार जब एक सदन द्वारा पारित किसी साधारण विधेयक को दूसरे सदन द्वारा रद्द कर दिया जाए या दोनों सदन विधेयक में संशोधन करने के प्रश्न पर एक दूसरे से असहमत हो जाएं या फिर दूसरा सदन छः महीने के अंदर इस पर कोई निर्णय न ले पाए तो राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक (Joint Siting) बुलाता है। इस संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। लोक सभा की सदस्य-संख्या राज्य सभा की सदस्य संख्या से दो गुने से भी अधिक होने के कारण से संयुक्त बैठक में निर्णय प्रायः लोक सभा के पक्ष में ही होता है।

2. कार्यपालिका पर नियंत्रण (Control over Executive)— व्यवहार में कार्यपालिका लोक सभा के प्रति ही उत्तरदायी होती है, क्योंकि लोक सभा कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित करके इसको अपदस्थ कर सकती है। 1990 में वी.पी. सिंह सरकार और 1999 में वाजपेयी सरकार लोक सभा में विश्वास मत पारित न होने के कारण ही गिरी थीं। राज्य सभा प्रश्न-काल, वाद-विवाद, 'काम रोको प्रस्ताव', 'ध्यानाकर्षण प्रस्ताव' एवं 'निंदा प्रस्ताव' के माध्यम से कार्यपालिका अर्थात सरकार को नियंत्रित अवश्य ही करती है, किन्तु वह सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके इसे पद से नहीं हटा सकती है। स्पष्ट है कि कार्यपालिका पर नियन्त्रण की दृष्टि से राज्य सभा की तुलना में लोक सभा की स्थिति बहुत सुदृढ़ है।

3. धन विधेयकों को पारित करना (Passing of Money Bills) - धन विधेयकों के पारित करने के विषय में लोक सभा की तुलना में राज्य सभा के पास बहुत कम शक्तियां हैं। इस कारण इस मामले में लोक सभा को सर्वोच्चता स्थापित हो गयी है। संविधान के अनुच्छेद 109 के अनुसार धन विधेयक पहले लोक सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। जब लोक सभा कोई धन विधेयक पारित कर देती है, तो इसे राज्य सभा के पास भेज दिया जाता है। धन विधेयक पारित करने के विषय में राज्य सभा को केवल इतनी ही शक्ति प्राप्त है कि यह इसे अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रोके रख सकती है। राज्यसभा इसे पारित करें या न करें धन विधेयक अपने आप ही पारित माना जाता हैं।

4. न्यायिक क्षेत्र में संबंध (Judicial Sphere)- न्यायिक क्षेत्र में लोक सभा एवं राज्य सभा को बराबर शक्तियाँ प्राप्त है क्योंकि दोनों सदन मिलकर राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' पारित करती हैं। इस विषय में केवल इतना ही अंतर है कि जहां राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' इन दोनों में से किसी भी सदन में लाया जा सकता है और दोनों में से कोई भी सदन आरोपों की जांच कर सकता है, वहां उप-राष्ट्रपति के विरुद्ध 'महाभियोग प्रस्ताव' केवल राज्य सभा में लाया जाता है और जांच का कार्य लोक सभा के लिए छोड़ दिया जाता है।

5. संविधान में संशोधन (Amendment in the Constitution)- संविधान के अनुच्छेद 368 के द्वारा संसद को संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान की गयी है और केशवानन्द भारती मुकदमे (1973) में सर्वोच्च न्यायलाय द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि संसद मूलभूत ढांचे को छोड़कर, संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है। अनुच्छेद 368 में वर्णित संशोधन प्रक्रिया के अनुसार संविधान में संशोधन के लिए संशोधन विधेयक निर्धारित बहुमत द्वारा दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित किया जाना चाहिए। यदि कोई संशोधन विधेयक एक सदन द्वारा पारित और दूसरे सदन द्वारा रद्द कर दिया जाता है, तो वह विधेयक रद्द हो जाता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाने की व्यवस्था संविधान द्वारा नहीं की गयी है। इसी कारण 1970 में राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त करने वाला संशोधन विधेयक राज्य सभा द्वारा अस्वीकार किए जाने के उपरांत रद्द हो गया था।

6. राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन (Elections of President and Vice-President)- राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति के निर्वाचन के विषय में राज्य सभा एवं लोक सभा को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं, क्योंकि राष्ट्रपति एवं उप-राष्ट्रपति को जिन निर्वाचकमंडलों द्वारा चुना जाता है, उनमें लोक सभा एवं राज्य सभा दोनों के सदस्य शामिल होते हैं। इसके अलावा, जिस

प्रकार लोक सभा अपने अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव करती है, उसी प्रकार राज्य सभा भी अपने उप-सभापति का चुनाव करती है।

7. राज्य सभा की विशेष शक्तियाँ (Special Powers of Rajya Sabha) —भले ही संविधान में राज्यसभा को काम शक्तियां प्राप्त हैं, लेकिन संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ ऐसी शक्तियाँ सौंपी गयी हैं, जो लोक सभा को प्राप्त नहीं हैं। अनुच्छेद 249 के तहत यदि राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से प्रस्ताव पारित करके 'राज्य सूची' में शामिल किसी विषय को 'राष्ट्रीय महत्व' का घोषित कर देती है, तो एक वर्ष के लिए उस विषय पर कानून बनाने की शक्ति संसद को मिल जाती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 312 के तहत राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के 2/3 बहुमत से नई अखिल भारतीय सेवा स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य सभा एवं लोक सभा की कानून निर्माण की शक्तियाँ, संविधान में संशोधन की शक्तियाँ, न्यायिक शक्तियाँ एवं निर्वाचन संबंधी शक्तियाँ बराबर हैं, किन्तु वित्तीय शक्तियाँ और कार्यपालिका पर नियंत्रण-संबंधी शक्तियों के विषय में राज्य सभा लोक सभा के मुकाबले कमजोर है। नि:सन्देह, राज्य सभा के पास कुछ विशेष शक्तियाँ हैं, तब भी उसकी तुलना में लोक सभा की स्थिति सुदृढ़ है।

राज्य सभा के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क (Arguments in favour of and against Rajya Sabha)

संविधान द्वारा लोक सभा की तुलना में राज्य सभा को बहुत कम शक्तियाँ दी गयी है। भारतीय संविधान द्वारा राज्य सभा को जो शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं, उनको देखकर स्पष्ट हो जाता है कि यह एक शक्तिहीन सदन है। ऐसे में कुछ विद्वान इसकी प्रासंगिकता पर अंगुली उठाते हैं और कुछ तो इसकी समाप्ति तक की बात करते हैं। राज्य सभा के पक्ष और विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं।

आम तौर पर, विद्वानों द्वारा **राज्य सभा के विरुद्ध (विपक्ष)** निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं-

1. संघवाद के सिद्धांत के विरुद्ध (Against Federalism)- कुछ विद्वानों का कहना है कि भारत में राज्य सभा संघवाद के सिद्धांत की अवहेलना करती है, क्योंकि संघीय व्यवस्था में केन्द्रीय विधानपालिका के ऊपरी सदन में सभी संघीय इकाइयों अथवा राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है, लेकिन भारत में राज्य सभा में राज्यों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। राज्य सभा में आठ राज्यों और एक संघीय क्षेत्र को एक-एक सीट आबंटित की गयी है, जब कि इसमें अकेले उतर प्रदेश को 31 सीटें प्राप्त हैं।

2. अलोकतांत्रिक सदन (Un-democratic Chamber)- कुछ विद्वानों का कहना है कि राज्य सभा एक अलोकतांत्रिक सदन है, क्योंकि इसके सदस्यों का चुनाव देश की जनता के द्वारा नहीं, बल्कि राज्य विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। राज्य सभा का अप्रत्यक्ष चुनाव एवं मनोनयन के तत्व मिलकर इसे अलोकतान्त्रिक सदन बना देते हैं।

3. राजनीतिक शरण-स्थल (Place for Political Shelter) आलोचकों का यह भी कहना है कि सत्तारूढ़ दल राज्य सभा का राजनीतिक शरण-स्थल के रूप प्रयोग करता है, क्योंकि सत्तारूढ़ दल के जो सदस्य लोक सभा का चुनाव हार जाते हैं या हारने के डर से लोक सभा का चुनाव नहीं लड़ते हैं, उन्हें सत्तारूढ़ दल द्वारा राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित करा दिया जाता है, ताकि ये उपेक्षित अनुभव न करें। राज्य सभा में इन सदस्यों का प्रवेश पिछले दरवाजे से इनको संसद में प्रवेश कराना और इनको राजनीति में जीवित रखना है।

4.राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं ,बल्कि दलगत प्रतिनिधित्व (Not representation of States, but Party Representation)-कुछ विद्वानों का कहना है कि राज्य सभा राज्यों का नहीं, बल्कि राजनीतिक दलों का प्रतिनिधित्व करती है। राज्य सभा के सदस्यों का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व (Proportional Representation) के आधार पर किया

जाता है, जिसके कारण राज्य सभा के चुनावों में राजनीतिक दल विधान सभाओं में अपनी सीटों के अनुपात में अपने-अपने उम्मीदवार जिताने में सफल रहते हैं। इतना ही नहीं, राज्य सभा की सदस्यता ग्रहण करने के बाद भी ये लोग राज्य सभा में अपने-अपने राज्य के हित में नहीं, बल्कि अपने-अपने दल के हित में कार्य करते हैं। यही कारण है कि राज्य सभा में विपक्षी दलों के सदस्य हमेशा सरकार के निर्णयों की आलोचना करते हैं।

5. हमेशा विधेयकों की दोहराई नहीं (Not Always Revision of Bills)- ऐसा माना जाता है कि राज्य सभा विधेयकों को दोहराई करती है, जिसके कारण विधेयकों में रह गए दोष दूर हो जाते हैं, किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता है, क्योंकि जब लोक सभा एवं राज्य सभा में एक राजनीतिक दल या एक गठबंधन बहुमत में होता है, तब राज्य सभा गुण-दोषों पर विचार किए बिना, विधेयकों को पारित कर देती है।

6. शक्तिहीन सदन (Powerless Chamber) - भारत की राज्य सभा एक प्रकार से शक्तिहीन सदन ही है, क्योंकि कई मामलों में इसे बहुत कम शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसके द्वारा धन विधेयकों को अस्वीकार करने या इनमें संशोधन करने या फिर निर्धारित अवधि में इनके विषय में कोई निर्णय न लेने से कोई फर्क नहीं पड़ता है, क्योंकि ऐसे में ये उसी रूप में इसके द्वारा पारित हुए मान लिए जाते हैं, जिस रूप में इन्हें लोक सभा ने पारित किया था। इसी प्रकार राज्य सभा का सरकार पर प्रभावी नियंत्रण नहीं होता है, क्योंकि यह सरकार को अपदस्थ नहीं कर सकती है।

निःसंदेह, संविधान द्वारा लोक सभा की तुलना में राज्य सभा को बहुत कम शक्तियाँ दी गयी हैं और इसकी रचना एवं कार्य प्रणाली में अनेक दोष हैं. फिर भी, हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह एक निरर्थक एवं अनुपयोगी सदन है। कुछ बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सभा एक उपयोगी सदन है। आमतौर पर विद्वानों द्वारा **राज्य सभा के पक्ष** में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं

1. स्थायी सदन (Permanent Chamber)- राज्य सभा एक स्थायी सदन है, एक स्थायी सदन के रूप में राज्य सभा शासन को स्थायित्व प्रदान करती है। वस्तुतः यह उस समय भी कार्यरत होती है, जब लोक सभा भंग होती है। उदाहरण के लिए जब लोक सभा भंग होती है, तो उस समय यही संकट काल की घोषणा की पुष्टि करती है। नव-गठित लोक सभा बाद में इसकी पुष्टि करती है।

2. संघीय व्यवस्था के लिए अनिवार्यता (A Necessity for Federal System) — संघीय व्यवस्था में द्वि-सदनीय विधानपालिका का होना जरूरी है, क्योंकि विधानपालिका के ऊपरी सदन में संघीय इकाइयों(राज्यों) को प्रतिनिधित्व मिल जाता है। इस वजह से भारत में राज्य सभा का होना जरूरी है।

3. लोक सभा के समय की बचत (Saving of Lok Sabha's Time)- राज्य सभा के कारण लोक सभा के समय एवं ऊर्जा की बचत होती है, क्योंकि प्रायः कम महत्व वाले विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। राज्य सभा इन विधेयकों पर अच्छी तरह विचार-विमर्श करने के उपरांत इन्हें पारित करके लोक सभा के पास भेज देती है। ऐसे में इन्हें पारित करने में लोक सभा अधिक समय नहीं लगाती है।

4. प्रतिभावान नागरिकों को प्रतिनिधित्व (Representation to Talents)—राष्ट्रपति राज्य सभा में ऐसे 12 सदस्यों को मनोनीत करता है, जो साहित्य, कला, विज्ञान एवं समाज-सेवा के क्षेत्रों से जुड़े होते हैं और जिनका इन क्षेत्रों में योगदान होता है। राज्य सभा के माध्यम से देश को ऐसे प्रतिभावान लोगों की सेवाएं प्राप्त हो जाती हैं, जो सक्रिय राजनीति से दूर रहना पसन्द करते हैं।

5. विधेयकों की दोहराई अथवा गहन जांच (Revision of Bills) - लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के बाद जो विधेयक राज्य सभा के पास आते हैं, उनकी राज्य सभा द्वारा दोहराई हो जाती है। यदि लोक सभा द्वारा पारित विधेयक में कोई दोष रह जाता है, तो राज्य सभा उसे दूर कर देती है। राज्य सभा द्वारा पारित होने के बाद विधेयकों में दोष रहने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

6. उच्च-स्तरीय वाद-विवाद (High Level of Debates) - राज्यसभा में किसी भी विषय या विधेयक पर जो वाद-विवाद होता है, वह प्रायः उच्च स्तर वाला होता है, क्योंकि लोक सभा के सदस्यों की तुलना में राज्य सभा के सदस्य अधिक अनुभवी एवं प्रतिभावान होते हैं। प्रायः राज्य सभा के सदस्य सक्रिय राजनीति से दूर रहने वाले लोग होते हैं। अतः इनके द्वारा किसी विषय पर जो वाद-विवाद होता है, वह अपेक्षाकृत कम राजनीतिक रंग लिए होता है।

7. महाभियोग के अनुकूल (Compatible with Impeachment)- जिस महाभियोग प्रस्ताव के द्वारा राष्ट्रपति उप-राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों और संवैधानिक पदों पर कार्यरत् अन्य पदाधिकारिखें को गंभीर अपराधों के आरोप में उनके पद से हटाया जाता है. राज्य सभा का होना उसके अनुकूल है। प्राकृतिक न्याय वह मांग करता है कि किसी पर आरोप लगाने वाला व्यक्ति या संस्था उन आरोपों की जांच न करे। यदि कभी लोक सभा व्यक्तिगत कारणों से किसी पदाधिकारी पर महाभियोग लगाएगी, तो मामले की जांच राज्य सभा द्वारा हो जाएगी। यदि आरोप असत्य पाए जाते हैं, तो महाभियोग प्रस्ताव पास नहीं हो पाता है।

8. विशिष्ट कार्य (Special Functions)- संविधान द्वारा राज्य सभा को कुछ ऐसे कार्य सौंपे गए हैं, जो इसकी उपयोगिता सिद्ध करते हैं; जैसे-राज्य सभा अनुच्छेद 249 के अन्तर्गत 'राज्य सूची' में दिए गए किसी महत्व को 'राष्ट्रीय महत्व' का घोषित करके एक वर्ष के लिए इस पर कानून बनाने के लिए संसद को अधिकृत कर सकती है। इसी तरह राज्य सभा अनुच्छेद 312 के तहत नयी अखिल भारतीय सेवा (All India Service) स्थापित करने का अधिकार केन्द्र सरकार को दे सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राज्य सभा को एक अनुपयोगी सदन नहीं कहा जा सकता है। निःसंदेह, राज्य सभा को लोक सभा की तुलना में कम शक्तियाँ प्राप्त हैं, किन्तु तब भी यह अपना कार्य करती है। यदि इसके पास कम शक्तियाँ हैं, तो संविधान में संशोधन करके इसकी शक्तियों में वृद्धि की जा सकती है और इसके इस दोष को दूर किया जा सकता है। यदि राज्य सभा अनावश्यक रूप से लोक सभा से टकराती है या आंख मूंदकर लोक सभा के निर्णयों की पुष्टि करती है, तो यह दोष राज्य सभा का नहीं, बल्कि राज्य सभा में बैठे सांसदों का है।

भारतीय संसद के पतन के कारण (Causes for the Decline of Indian Parliament)

संविधान लागू होने के प्रारंभिक वर्षों में भारतीय संसद को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, इसकी प्रतिष्ठा में कमी आती गयी। पिछले कुछ दशकों में अनेक ऐसी घटनाएँ , जिन्होंने इसकी मर्यादा को तार-तार कर दिया। भारतीय संसद की प्रतिष्ठा या गरिमा को धक्का पहुंचाने वाले मुख्य कारण निम्नलिखित हैं-

1. सदस्यों की अनुपस्थिति (Absense of the Members)- संसद के सदस्यों की अनुपस्थिति बहुत सीमा तक इसकी प्रतिष्ठा में गिरावट के लिए उत्तरदायी है। सदन की कार्यवाही चलाने के लिए सदस्यों की एक निश्चित संख्या (कोरम) की आवश्यकता होती है। जब तक यह फोरम पूरा नहीं होता, तब तक संसद की कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जा सकती है। कोरम पूरा न होने का सष्ट कारण सदस्यों का संसद के सदनों से अनुपस्थित रहना होता है। देश में यह प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। एक समय था, जब संसद भवन सदस्यों से खचाखच भरा रहता था और सदस्य गण संसद की कार्यवाही में गहन रुचि लिया करते थे। आज तो लगभग 10 प्रतिशत सदस्य ही बहस में भाग लेते हैं। जैसे 17 मई, 1982 को 46वें संशोधन विधेयक और 22 अगस्त, 1984 को 47वें संशोधन विधेयक पारित न होने का कारण सदस्यों की अनुपस्थिति था। इसी प्रकार जब 24 नवम्बर, 1988 में मूल्यों की वृद्धि पर संसद में बहस शुरू हुई. तो मात्र 21 सदस्य ही उपस्थित मिले।

2. संसद की बैठकों में कमी (Less Numbers of Sittings of the Parliament)- भारतीय संसद की प्रतिष्ठा में गिरावट का एक अन्य कारण संसद की बैठकों में कमी होना है। प्रारंभिक काल में संसद की बैठकें लगभग 7-8 महीने हुआ करती थीं, लेकिन धीरे-धीरे संसद की बैठकों का समय घटकर 3-4 महीने रह गया। यदि बैठकों के काल को दिनों में गिना जाए, तो प्रारंभ में संसद की बैठकें वर्ष में लगभग 135 दिन तक चलती थी। पण्डित नेहरू के कार्यकाल में एक वर्ष में संसद की औसतन बैठके 120 दिन हुआ करती थीं, लेकिन इन्दिरा गांधी के कार्यकाल में यह संख्या घटकर 92 दिन रह गयी थी। 1992-2001 के मध्य संसद के कार्य दिवसों की संख्या घटकर 70-75 दिन रह गयी। संसदों की बैठकों की संख्या के घटने का प्रभाव

इसकी कार्य प्रणाली पर पड़ता है, क्योंकि संसद के पास साधारण या धन विधेयकों पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं रह जाता है।

3. साधारण व्यक्तित्व के सदस्य (Members of Ordinary Personality)- संसद की प्रतिष्ठा को घटाने या बढ़ाने का श्रेय संसद सदस्यों की योग्यता को जाता है। एक समय संसद में प्रतिभाशाली एवं बुद्धिमान सांसद होते थे। उन्हें संसदीय प्रक्रिया का पूरा ज्ञान होता था और वे गंभीरतापूर्वक संसद की कार्यवाही में भाग लेते थे। तब विपक्ष में डा. राममनोहर लोहिया अटल बिहारी वाजपेयी एवं इन्द्रजीत गुप्त जैसे नेता होते थे, जिनकी सरकार अनदेखी नहीं कर सकती थी। आजकल संसद के अधिकतर सदस्य साधारण योग्यता वाले होते हैं। इन्हें न तो संसद की प्रक्रिया का ज्ञान होता और न ही ये संसद की कार्यवाही में रुचि लेते हैं। 14वीं लोक सभा (2004-09) में 37 सांसद ऐसे थे, जिन्होंने एक भी प्रश्न सदन में नहीं पूछा था।

4. अड़ियल प्रकृति के सदस्य (Members of Obstinate Nature)- सदस्यों की अड़ियल प्रकृति ने भी संसद की गरिमा को प्रभावित किया है। संसद के कुछ सदस्य अड़ियल प्रकृति के होते हैं। ये संसद में हठधर्मिता दिखाते हैं और संसद की कार्यवाही को चलने नहीं देते हैं। ये संसद में हंगामा करते हैं। ये भाषण देते समय असभ्य भाषा का प्रयोग करते हैं। एक बार लोक सभा के पूर्व अध्यक्ष पी.ए, संगमा ने सांसदों को चेतावनी देते हुए कहा था कि आप सबको ध्यान रखना चाहिए कि आपको प्रत्येक गतिविधि को देश ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व देख रहा है। 2010 में संसद के 23 दिन चले शीतकालीन अधिवेशन के दौरान केवल 10 घंटे ही कार्य हो पाया था, क्योंकि विपक्ष 2-जी स्पेक्ट्रम घोटाले की संयुक्त संसदीय समिति द्वारा जांच की उस मांग पर अड़ा रहा, जो सरकार को स्वीकार न थी। इसी प्रकार 2023 के शीतकालीन अधिवेशन में विपक्षी दल लम्बे समय तक मणिपुर के मुद्दे पर प्रधान मन्त्री के स्पष्टीकरण की माँग करते रहे और अन्त में सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' ले आए, ताकि प्रधान मन्त्री सदन में आकर इस पर बयान दें।

5. मंत्रियों का अनुत्तरदायी व्यवहार (Irresponsible Behaviour of Ministers) - मंत्रियों का अनुसरणार्थी व्यवा भी संसद के पतन के लिए उत्तरदायी है। किन्तु अनेक बार मंत्री वाद-विवाद के समय संसद में उपस्थित नहीं रहते हैं। कई बार ये जान-बूझकर प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर भी नहीं देते हैं और यह कहकर प्रश्न टाल देते हैं कि प्रश्न का उत्तर देना सार्वजनिक हित में नहीं है। जब 1966 में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर संसद में बहस चल रही थी, तो उस समय 15 कैबिनेट मंत्रियों में से केवल एक मंत्री ही संसद उपस्थित था।

6. प्रदत्त विधायन (Delegated Legislation) — संसद के पास इतना समय नहीं होता कि वह सभी विधेयकों को विस्तारपूर्वक विचार करने के बाद पारित कर सकें। प्रायः संसद कानूनों की रूपरेखा तैयार कर देती है और उन कानूनों के अधीन नियम एवं उप-नियम बनाने की शक्ति मंत्रिपरिषद को दे देती है। इसे ही प्रदत्त विधायन कहते हैं। मंत्री नियम एवं उप-नियम बनाते समय कानून को काफी सीमा तक अपनी इच्छानुसार तोड़-मरोड़ देते हैं। इससे मंत्रिमंडल की शक्तियों में वृद्धि, किन् संसद की स्थिति कमजोर हो जाती है। स्पष्ट है कि प्रदत्त विधायन ने संसद की प्रतिष्ठा को कम किया है।

7. संसद का कार्यपालिका पर नाममात्र का नियंत्रण (Nominal Control of the Parliament over Executive) - भारत में कार्यपालिका अर्थात सरकार संसद के प्रति उत्तरदायी है। सरकार संसद का विश्वास बने रहने तक अपने पद पर बनी रह सकती है। संसद सदस्यों को मंत्रियों से प्रश्न एवं अनुपूरक प्रश्न पूछने का अधिकार है। लोक सभा कभी भी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव (No-confidence Motion) पारित करके उसे पद से हटा सकती है. किन्तु यह स्थिति सैद्धान्तिक है। व्यावहार में सरकार के विरुद्ध लोक सभा में 'अविश्वास प्रस्ताव पारित होना संभव नहीं होता है, क्योंकि सरकार को लोक सभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है और लोक सभा में सत्ता पक्ष के सदस्य अपने दल के आदेशानुसार मतदान करते हैं। यदि कभी सरकार के विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव पारित भी हो जाए, तो भी सरकार के लिए तुरन्त अपना त्याग-पत्र देना आवश्यक नहीं है। ऐसे में सरकार पहले ही राष्ट्रपति से लोक सभा भंग करने की सिफारिश करके इसको भंग करा सकती है। स्पष्ट है कि संसद के कार्यपालिका अर्थात सरकार पर नाममात्र के नियंत्रण से भी संसद की प्रतिष्ठा में कमी आयी है।

8. दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार (Partisan Attitude of Presiding Officers of Both the Houses)- संसद के दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी संसद की प्रतिष्ठा में

गिरावट का एक कारण रहा है। लोक सभा अध्यक्ष, का चुनाव दलगत आधार पर होता है और वह चुनाव के बाद भी अपने दल का सदस्य बना रहता है। ऐसे में उससे पूर्ण निष्पक्षता की आशा करना व्यर्थ है। भारत में उप-राष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है उसका चुनाव भी दलगत आधार पर होता है। समान्यतः शासक दल द्वारा समर्थित व्यक्ति ही इस पद पर निर्वाचित होता है, ऐसे में उससे पूर्ण निष्पक्ष व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती है।

9. संसद एक पुष्टि करने वाली संस्था (Parliament as an Approving Body)— आजकल संसद कानूनों का निर्माण करने वाली संस्था कम और इनकी पुष्टि करने वाली संस्था अधिक हो गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि अब कानूनों के निर्माण में संसद का विशेष योगदान नहीं रहा है। वस्तुतः यह कार्य मन्त्रालयों द्वारा किया जाता है। मन्त्रालयों द्वारा तैयार विधेयकों को संसद में केवल पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संसद के सदस्यों के पास प्रस्तावित कानूनों की बारीकियों को समझने का न तो समय होता है और न ही क्षमता। इसलिए ये मन्त्रालयों द्वारा तैयार विधेयकों को ज्यों-का-त्यों पारित कर देते हैं। यही कारण है कि एक दिन में कई-कई विधेयक संसद द्वारा पारित कर दिए जाते हैं। 2008 में 14 महत्वपूर्ण विधेयक एक ही दिन और वह भी 20 मिनट में पारित कर दिए गए थे। इसी प्रकार राज्य सभा ने 2020 के वर्षा कालीन अधिवेशन में 22 सितम्बर के दिन साढे तीन घण्टे में सात विधेयक पारित कर डाले थे।

10. शासन कार्य की जटिलता (Complexity of Governance) - वर्तमान समय में शासन का कार्य बहुत जटिल हो गया है और कानून निर्माण एवं शासन के क्षेत्र में ऐसी पेचीदा समस्याएं उत्पन्न होने लगी हैं, जिन्हें भली-भांति समझना संसद के सदस्यों के लिए संभव नहीं होता। संसद सदस्य इतने सक्षम नहीं होते हैं कि राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, - एवं तकनीकी मामलों में मन्त्रियों का पथ-प्रदर्शन कर सकें। इनकी तुलना में मंत्री लोग अधिक योग्य होते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों से निरन्तर और निकट संपर्क में रहने के कारण ये कानून-निर्माण एवं प्रशासनिक कार्य ठीक प्रकार से करने की स्थिति में होते हैं। इस प्रकार संसद सदस्यों द्वारा प्रशासन-संबंधी जटिल बातों को पूरी तरह न समझ सकने और मंत्रियों के अपेक्षाकृत अधिक योग्य होने के कारण संसद की शक्तियों एवं गरिमा में कमी आयी है।

11. लोक वित्त पर नाममात्र का नियंत्रण (Nominal Control over Public Finance)- संसद धन-संबंधी मामलों में सर्वोच्च है, क्योंकि संसद की स्वीकृति के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है और न ही कोई कर समाप्त किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार में राष्ट्रीय धन पर संसद का नाममात्र का नियंत्रण रह गया है। धन विधेयक मंत्रिमंडल द्वारा तैयार किए जाते हैं और संसद में प्रस्तुत किए जाते हैं। मंत्रिमंडल के दल का लोक सभा में बहुमत होने के कारण लोक सभा में इन विधेयकों का पारित हो जाना स्वाभाविक है। विरोधी पक्ष धन विधेयकों की आलोचना ही कर सकता है: इनमें कोई संशोधन नहीं कर सकता है। इस प्रकार इसका लोक वित्त पर नाममात्र का ही नियंत्रण रह गया है।

12. महत्त्वपूर्ण निर्णयों में संसद की उपेक्षा (Ignoring Parliament on Important Descisions)- संसदीय प्रणाली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें सरकार को राष्ट्रीय मुद्दों एवं महत्वपूर्ण निर्णयों पर संसद की स्वीकृति लेनी होती है। संसद के अधिवेशन में होते हुए भी महत्वपूर्ण नीतियों एवं निर्णयों की घोषणा संसद के बाहर की जाती है। भारत द्वारा विश्व बैंक से कर्ज लिया जाना, फ्रांस से ₹ 7500 करोड़ के मिराज हवाई जहाज खरीदना आदि मामलों में सरकार ने संसद को विश्वास में नहीं लिया। ये संसद की उपेक्षा के कुछ उदाहरण हैं। स्पष्ट है कि संसद की उपेक्षा से संसद की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचती है।

13. त्रिशंकु संसद (Hung Parliament)- संसद की गरिमा में गिरावट आना तब शुरू हुआ था. जब त्रिशंक संसदें अस्तित्व में आने लगी थी। त्रिशंकु संसद में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होता है। ऐसे में अनेक दल मिलकर सरकार का निर्माण करते हैं; जैसे-1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004 एवं 2009 के लोक सभा चुनावों के बाद हुआ। इन चुनावों में किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था, जिसके कारण मिली-जुली सरकारों का गठन किया गया था। त्रिशंकु संसद की स्थिति में विचार-विमर्श ठीक प्रकार से नहीं हो पता है। महत्वपूर्ण विधेयक गतिरोध के कारण पास नहीं हो पाते हैं। आता है इससे भी संसद की गरिमा को धक्का लगा है।

14. अध्यादेशों का प्रचलन (Usage of Ordinances)— संविधान के अनुच्छेद 123 (1) के अनुसार जब संसद का अधिवेशन न चल रहा हो, तो राष्ट्रपति अध्यादेश की घोषणा कर सकता है, यदि ऐसा करना आवश्यक हो। वास्तव में अध्यादेश

एक आकस्मिक युक्ति है, जिसका नियमित रूप से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन भारत में सरकार संसद को नजर अन्दाज करके अध्यादेश जारी करके कानूनों में फेर-बदल करती रही है। उदाहरण के लिए राष्ट्रपति द्वारा 1952 से लेकर 1991 तक 368 अध्यादेश जारी किए गए। 1992 में 29 अध्यादेश, 1993 में 34 अध्यादेश, 1994 में 14 अध्यादेश, 1995 में 15 अध्यादेश, 1996 में 32 अध्यादेश, 1997 में 39 अध्यादेश, 1998 में 20 अध्यादेश, 1999 में 10 अध्यादेश, 2000 में 5 अध्यादेश, 2001 में 12 अध्यादेश, 2002 में 7 अध्यादेश, 2003 में 8 अध्यादेश, 2004 में 8 अध्यादेश, 2005 में 4 अध्यादेश और 2006 में 3 अध्यादेश राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए। अध्यादेशों का सहारा लेने से संसद की उपेक्षा होती हैं।

अत: कहा जा सकता है कि पिछले कुछ 30-35 वर्षों में संसद की कार्य प्रणाली में परिवर्तन आया है और उपर्युक्त कुछ प्रमुख कारणों से संसद की प्रतिष्ठा में कमी आई है।

भारत में कानून बनाने की विधि (Law-Making Procedure in India)

संसद का मुख्य कार्य कानून बनाना है। कानून बनाने के लिए संसद के सामने जो प्रस्ताव या मसौदा (Draft) प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'विधेयक' (Bill) कहा जाता है। जब संसद के दोनों सदन विधेयक को अलग-अलग पारित कर देते है और उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है, तो यह अधिनियम (Act) बन जाता है अर्थात कानून बन जाता है। संसद में जो भी विधेयक प्रस्तुत किए जाते हैं, उन्हें प्रायः दो भागों में बांटा जाता है— (i) साधारण विधेयक (Ordinary Bill) एवं (ii) धन विधेयक (Money Bill)

साधारण विधेयक एवं धन विधेयक के पारित होने की प्रक्रिया में अंतर है। धन विधेयक की परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 110 में दी गयी है। इसके अनुसार यदि कोई विधेयक निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित है, तो वह धन विधेयक कहलाता है।

(i) किसी कर का लगाना, हटाना, कम करना, परिवर्तित करना अथवा विनियमित करना।

(ii) भारत सरकार द्वारा ऋण लेने का नियम बनाना या कोई गारंटी देना या भारत सरकार के किसी वित्तीय उत्तरदायित के संबंध में नियम बनाना।

(iii) भारत की संचित निधि (Consolidated Fund) अथवा आकस्मिक निधि (Contingency Fund) का साक्षर किसी भी निधि से धन निकालना अथवा उसमें जमा करना।

(iv) भारत की संचित निधि से धन का विनियोजन करना।

(v) किसी व्यय को संचित निधि से होने वाला व्यय घोषित करना या किसी ऐसे व्यय की राशि में वृद्धि करना।

(vi) संचित निधि के लिए धन प्राप्त करना अथवा भारत के सार्वजनिक लेख या ऐसे व्यय को संरक्षण देना या संघ अथवा राज्य के लेखों का निरीक्षण करना।

कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं, यह लोकसभा अध्यक्ष तय करता है। उपर्युक्त विषयों से संबंधित विधेयकों के अतिरिक्त अन्य सभी विधेयक साधारण विधेयक की श्रेणी में आते हैं।

(अ) साधारण विधेयक के लिए विधि (Procedure for Ordinary Bill)- प्रत्येक साधारण विधेयक को पांति होने के लिए क्रमवार निम्नलिखित चरणों से गुजरना होता है।

1. परिचय एवं प्रथम वाचन (Introduction and First Reading)- साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु धन विधेयक केवल लोक सभा में ही लाया जा सकता है। यद्यपि संसद का कॉ भी सदस्य सदन में विधेयक प्रस्तुत कर सकता है, किन्तु ज्यादातर विधेयक (लगभग 80%) मत्रियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। इसका कारण यह है कि जो विधेयक किसी मंत्री के द्वारा प्रस्तुत न किया जाए या जिसे मंत्रिमंडल का समर्थन प्राप्त न हो, उसके पारित होने की

बहुत ही कम संभावना होती है, क्योंकि सांसदों का बहुमत मंत्रिमंडल के साथ होता है।

साधारण विधेयक जिस सदन में प्रस्तुत किया जाता है, उस सदन को इसके लिए कम-से-कम एक महीना पहले सूचना देना आवश्यक है। सदन के कार्य को देखते हुए पीठासीन अधिकारी उस विधेयक को प्रस्तुत करने के लिए तिथि निश्चित करता है। उस तिथि को सदन का सदस्य सदन से विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा मांगता है, जो प्रय जाती है। किन्तु यदि उस विधेयक के प्रस्तुत किए जाने के बारे में कुछ सदस्यों द्वारा विरोध प्रकट किया जाए, तो पीठासीन अधिकारी सदस्यों को उसके पक्ष-विपक्ष में अपना मत प्रकट करने के लिए कहता है। इसके पश्चात् मत लिए जाते हैं और यदि बहुमत उस विधेयक के पक्ष में होता है, तो वह विधेयक प्रस्तुत हुआ समझा जाता है। सरकारी विधेयकों अर्थात् मंत्रियों इरा प्रस्तुत विधेयकों के लिए इस प्रकार की स्वीकृति केवल औपचारिकता मात्र है। सदन की आज्ञा मिलने के पश्चात् विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य उस समय विधेयक का शीर्षक (Heading) का परिचय देता है और इसके पश्चात् वह विधेयक राजकीय पत्र (गजट) में छाप दिया जाता है। इसके साथ विधेयक के पारित होने का पहला चरण समाप्त हो जाता है।

2. द्वितीय वाचन (Second Reading)- विधेयक के सदन में प्रस्तुत हो जाने के पश्चात् सदस्यों में उसकी प्रतियाँ (कापियां) वितरित कर दी जाती है। इसके साथ उस विधेयक का दूसरा वाचन आरंभ होता है। प्रायः किसी विधेयक के प्रस्तुत होने और द्वितीय वाचन में दो दिन का अंतर रहता है, किन्तु यदि पीठासीन अधिकारी उस विधेयक को अति आवश्यक समझे, तो वह इससे पहले भी उस पर द्वितीय वाचन की आज्ञा दे सकता है। इस अवस्था के आरंभ होने पर विधेयक प्रस्तुत करने वाला सदस्य निम्नलिखित तीन प्रस्तावों में से कोई एक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता है-

(i) विधेयक को विचार के लिए प्रवर समिति (Select Committee) के पास भेज दिया जाए,

(ii) विधेयक पर तुरन्त विचार किया जाए,

(iii) विधेयक को जनमत जानने के लिए प्रकाशित कर दिया जाए।

इस चरण में सदन में विधेयक के मुख्य सिद्धांतों पर विचार किया जाता है: न कि उसकी प्रत्येक धारा पर विस्तार पूर्वक वाद-विवाद।

3. समिति स्तर (Committee Stage)- द्वितीय वाचन के पश्चात् विधेयक को प्रवर समिति के पास भेज दिया बाता है। सदन का पीठासीन अधिकारी प्रवर समिति के सभापति को नियुक्त करता है। इस समिति के अन्य सदस्यों का चुनाव सदन के द्वारा किया जाता है। विधेयक का प्रस्तावक भी इस समिति का सदस्य होता है। इस समिति में सदस्यों की संख्या 20 से 30 तक होती है और इस समिति में विषय के विशेषज्ञ होते हैं, इसलिए इस स्तर पर विधेयक की प्रत्येक धारा पर सूक्ष्म तरीके से विचार किया जाता है। प्राइवेट समिति विधायक पर गहन विचार करती है और एक रिपोर्ट तैयार करती है।

4. रिपोर्ट स्तर (Report Stage)- प्रवर समिति द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट समिति के अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में किसी सदस्य द्वारा सदन में प्रस्तुत की जाती है। इस रिपोर्ट को छपवा दिया जाता है और उसकी प्रतियां सदन में वितरित कर दी जाती हैं। इस रिपोर्ट के आधार पर सदन में विधेयक की प्रत्येक धारा पर सूक्ष्म तरीके से विचार किया जाता है। विधेयक के समर्थक उसके पक्ष में भाषण देते हैं और विरोधी उसके दोषों को सदन के सामने रखते हैं। इस स्तर पर विधेयक की प्रत्येक धारा पर अलग-अलग विचार किया जाता है और प्रत्येक धारा पर मतदान कराया जाता है। यदि विधेयक सदन में पारित हो जाता है, तो कुछ समय पश्चात् उसका तृतीय वाचन शुरू होता है।

5. तृतीय वाचन (Third Reading)- तृतीय वाचन पहले सदन में विधेयक के पारित होने का अन्तिम चरण है।इस चरण में विधेयक पर विस्तारपूर्वक विचार नहीं किया जाता है, बल्कि विधेयक के सामान्य सिद्धांतों पर ही विचार होता है और उसकी भाषा-संबंधी अशुद्धियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसके पश्चात् मतदान होता है और बहुमत प्राप्त कर लेने पर विधेयक को सदन द्वारा पारित समझा जाता है।

6. विधेयक दूसरे सदन में (Bill in Other House)- जब कोई विधेयक एक सदन द्वारा पारित हो जाता है, तो उसे विचार के

लिए दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। यहां विधेयक को उन्हों चरणों से गुजरना होता है, जिनसे वह पहले सदन में गुजरा था। यदि दूसरा सदन विधेयक को पारित कर देता है, तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

यदि एक सदन द्वारा पारित किया गया विधेयक दूसरे सदन द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, या दूसरा सदन उसमें ऐसे संशोधन कर देता है, जो पहले सदन को स्वीकार न हों, तो दोनों सदनों में उस विधेयक के संबंध में गतिरोध उत्पन्न हो जाता है। यदि यह गतिरोध छह महीने तक जारी रहता है, तो इस अवधि के समाप्त होने पर राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुलाता है। इस बैठक की अध्यक्षता लोक सभा अध्यक्ष करता है। यदि इस बैठक में विधेयक उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के बहुमत से पारित हो जाता है, तो वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझा जाता है। इसके पश्चात् उसे राष्ट्रपति को स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

जब लोक सभा किसी धन विधेयक को पारित कर देती है, तो उसे राज्य सभा के पास भेजा जाता है। यदि राज्य सभा उसे 14 दिन के अंदर पारित न करे या उसमें ऐसे संशोधन कर दे, जो लोक सभा को स्वीकार न हों, तो 14 दिन समाप्त होने पर वह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हुआ समझा जाता है, चाहे राज्य सभा ने उसे पारित न भी किया हो। दूसरे शब्दों में, राज्य सभा किसी धन विधेयक को अधिक-से-अधिक 14 दिन तक रोक सकती है।

7. राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President)- संसद के दोनों सदनों द्वारा अलग-अलग पारित होने के पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसको अपने स्वीकृति दे देता है, तो वह विधेयक कानून बन जाता है। किन्तु राष्ट्रपति चाहे, तो उसके विषय में अपने सुझाव देकर उस संसद के पास पुनःविचार के लिए वापस भेज सकता है। यदि संसद के दोनों सदन उसे दोबारा अलग-अलग पारित करके राष्ट्रपति के पास भेज दें, तो राष्ट्रपति को उस विधेयक को अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है। संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर विधेयक कानून का रूप धारण कर लेता है।

(ब) बजट को पारित करने की प्रक्रिया (Procedure of Passing the Budget)- संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार राष्ट्रपति का यह दायित्व है कि वह प्रत्येक वर्ष संसद के सामने 'वार्षिक वित्तीय विवरण' (Annual Financial Statement) प्रस्तुत करवाए। इस विवरण को ही 'बजट' (Budget) कहा जाता है। इसमें सरकार की एक वर्ष की आय एवं व्यय का अनुमानित विवरण होता है। राष्ट्रपति की स्वीकृति से वित्त मंत्री द्वारा बजट लोक सभा में प्रस्तुत किया जाता है। बजट प्रति वर्ष प्रायः फरवरी की पहली तारीख को प्रस्तुत किया जाता है। पहले संसद में दो प्रकार के बजट प्रस्तुत किए जाते थे-(1) सामान्य बजट एवं (ii) रेलवे बजट। किन्तु सरकार ने 92 वर्ष से चली आ रही परम्परा को विराम देते हुए 21 मार्च, 2016 को रेलवे बजट को सामान्य बजट में विलय करने का ऐतिहासिक निर्णय लिया।

बजट में खर्च दो भागों में प्रस्तुत किया जाता है—

भारत की संचित निधि से होने वाला व्यय (Expenditures Chargel Upon the Consolidated Fund of India) एवं **अन्य खर्च** (Other Expenditures)।

संचित निधि से होने वाले व्यय के विषयों पर संसद में मतदान नहीं किया जाता है, क्योंकि ये संविधान के द्वारा संरक्षित किए गए हैं, अतः ये लोक सभा में मतदान के बिना ही पारित कर दिए जाते हैं। इस श्रेणी में निम्नलिखित विषय शामिल हैं-

(i) राष्ट्रपति का वेतन, भत्ते एवं पद से संबंधित अन्य खर्च।

(ii) राज्य सभा के सभापति एवं उप-सभापति और लोक सभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के वेतन एवं भतों में संबंधित खर्च।

(iii) सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन आदि से संबंधित खर्च।

(iv) भारत सरकार पर ऋण अथवा उसके व्याज आदि से संबंधित खर्च।

(v) उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को या उसके संबंधी को दी जाने वाली पेंशन से संबंधित खर्च।

(vi) कोई ऐसी राशि, जो किसी न्यायालय के निर्णय अथवा आदेश को लागू करने के लिए आवश्यक हो।

(vii) ऐसा कोई खर्च, जिसे संविधान अथवा संसद के किसी कानून द्वारा इस श्रेणी में रख दिया जाए।

उपर्युक्त खर्चों को छोड़कर शेष भाग पर सदन को मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। इन्हें वित्त मंत्री सदन के सामने '**अनुदान के लिए मांग' (Demands for Grant)** के रूप में रखता है। सदन में बाद-विवाद वित्त मंत्री के भाषण से आरंभ होता है और इसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दिए जाते हैं। यदि सदन इन मांगों को अस्वीकार कर दे, तो सरकार को अपना त्याग-पत्र देना पड़ता है, क्योंकि इनकी अस्वीकृति यह सिद्ध करती है कि सरकार को सदन का समर्थन प्राप्त नहीं है। जब ये मांगें लोक सभा के द्वारा पारित हो जाती हैं, तो संचित निधि से होने वाले खर्चों सहित इन्हें एक **'विनियोग विधेयक' (Appropriation Bill)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके पारित होने से सरकार को देश की निधि से धन निकालने एवं खर्च करने की स्वीकृति मिल जाती है।

सरकार की आय के लिए कर आदि लगाने के प्रस्तावों को लोक सभा के सामने एक **'वित्त विधेयक' (Finance Bill)** के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन प्रस्तावों को लोक सभा स्वीकार कर सकती है; अस्वीकार कर सकती है कम कर सकती है, किन्तु सरकार इन्हें बढ़ा नहीं सकती है। इसके पारित होने के बाद सरकार को नए कर लगाने औ इनके संग्रह करने का अधिकार मिल जाता है।

राज्य सभा में बजट (Budget in Rajya Sabha)- जब विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक लोक सभा द्वारा पारित हो जाते हैं, तो इन्हें राज्य सभा में भेज दिया जाता है। राज्य सभा में भी इन पर उसी प्रकार से विचार किया जाता है, जिस प्रकार से लोक सभा में। राज्य सभा द्वारा इनमें कुछ परिवर्तन करने के लिए सिफारिश की जा सकती है, किन्तु इनके संबंध में अन्तिम शक्ति लोक सभा के ही पास है, इसलिए यह उसी की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह इन सिफारिशों को माने या न माने। राज्य सभा इन विधेयकों को केवल 14 दिन के लिए ही अपने पास रोक सकती है। इस अवधि के समाप्त होने पर ये दोनों विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित समझे जाते हैं, चाहे राज्य सभा ने इन्हें अपनी स्वीकृति दे या न दे।

राष्ट्रपति की स्वीकृति (Assent of the President)- संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने के पश्चात् विनियोग विधेयक एवं वित्त विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिए जाते हैं। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होने पर ये पूरी तरह पारित हो जाते हैं। इस प्रकार पारित बजट अगले वित्तीय वर्ष में लागू हो जाता है।

संसद की समिति प्रणाली

(Committee System of the Parliament)

संसदीय समितियाँ विधानपालिका का अभिन्न अंग होती है। मौरिस जॉन्स के अनुसार, "वास्तव में विधानपालिका को इसकी समितियों द्वारा जाना जाता है।" विधानपालिका कानून निर्माण एवं कार्यपालिका पर नियंत्रण रखने के कार्य इन समितियों के द्वारा करती है। प्रशासकीय कार्यों के अत्यधिक तकनीकी हो जाने एवं समय की कमी होने के कारण संसद विभिन्न विषयों पर विस्तार से विचार नहीं कर पाती है। यह अपने कार्य की पूर्ति अपनी समितियों द्वारा करती है, जो विभिन्न समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श करती हैं और संसद को सही परामर्श देती हैं। भारत में संसद द्वारा अपने कार्यों के कुशल निष्पादन के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया जाता है। इन समितियों का गठन संसद के दोनों सदनों-लोक सभा एवं राज्य सभा से किया जाता है।

संसदीय समितियों की नियुक्ति (Appointment of Parliamentary Committees)- संसदीय समितियों के सदस्यों को साधारणतः दो प्रकार से नियुक्त किया जाता है।

कुछ समितियों के सदस्यों को संबंधित सदन द्वारा निर्वाचित किया जाता है और कुछ समितियों के सदस्यों को लोक सभा अध्यक्ष या राज्य सभा के सभापति द्वारा मनोनीत किया जाता है, किन्तु मंत्रियों को इन समितियों का सदस्य नहीं बनाया जाता है। प्रत्येक समिति का सभापति समिति के सदस्यों में से मनोनीत किया जाता है। यदि उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) किसी समिति का सदस्य हो, तो यह उस समिति का पदेन (Ex-officio) सभापति होता है। इन समितियों के सदस्यों की संख्या समान नहीं होती है। अधिकांश समितियों की सदस्य- संख्या 15 है। सबसे कम सदस्य पुस्तकालय समिति में हैं, जिनको संख्या नौ है और सबसे अधिक सदस्य अनुमान समिति (Estimate Committee) में हैं, जिनकी संख्या 30 है।

संसदीय समितियों की कार्य प्रणाली (Working of Parliamentary Committees)— संसदीय समितियाँ अपना कार्य निर्धारित नियमानुसार करती है। इनकी बैठके अध्यक्ष द्वारा बुलायी जाती है, किन्तु किसी भी समिति की बैठक उस समय नहीं हो सकती है, जब संसद का अधिवेशन चल रहा हो। इन समितियों की बैठक संसद भवन में ही होती है, किन्तु यदि कोई समिति किसी विशेष कारण से संसद भवन के बाहर बैठक करना चाहे, तो वह लोक सभा अध्यक्ष की अनुमति से ऐसा कर सकती है। ये समितियाँ सरकार से किसी भी विषय के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण या अभिलेख मांग सकती हैं। ये किसी व्यक्ति को अपने समक्ष प्रस्तुत होकर बयान देने के लिए बुला सकती है। ये सरकारी पत्र, रिपोर्ट एवं अभिलेखों का निरीक्षण कर सकती हैं। ये अपना कार्य सदन के सचिवालय के कर्मचारियों की सहायता से करती हैं।

प्रत्येक समिति की गणपूर्ति (Quorum) सदन द्वारा उसकी नियुक्ति के समय तय की जाती है। साधारणतः सभी समितियों की गणपूर्ति इनके समस्त सदस्यों की आधी संख्या होती है। ये समितियाँ बहुमत के आधार पर निर्णय लेती हैं। किसी विषय पर बराबर मत आने पर इनके सभापति को 'निर्णायक मत' (Casting Vote) देने का अधिकार होता है। कोई समिति कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए उप-समितियाँ नियुक्त कर सकती है। सभापति समिति द्वारा लिए गए निर्णयों की रिपोर्ट लोक सभा अध्यक्ष (Speaker) को प्रस्तुत करता है। लोक सभा अध्यक्ष समय-समय पर इन समितियों की कार्य प्रणाली के सम्बन्ध में नियम तय करता है।

संसदीय समितियों का वर्गीकरण (Classification of Parliamentary Committees)

भारत में संसदीय समितियों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है-

(क) स्थायी समितियाँ (Standing Committees) एवं (ख) तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees)।

प्रथम प्रकार की समितियाँ स्थायी समितियाँ होती है, क्योंकि इनकी स्थापना प्रति वर्ष की जाती है और ये नियमित रूप से कार्यरत् रहती हैं, जब कि दूसरे प्रकार की समितियों का गठन किसी विशेष कार्य के लिए किया जाता है और जैसे ही वह कार्य पूरा हो जाता है, इन्हें भंग कर दिया जाता है। यहाँ इन दोनों प्रकार की संसदीय समितियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

(क) स्थायी समितियाँ (Standing Committees)-स्थायी समितियों द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति एवं आधार पर ये निम्नलिखित छह प्रकार की हैं-

(1) वित्तीय समितियाँ (Financial Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य समितियाँ हैं-

(i) सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee)- जिस तरह अनुमान समिति विभिन्न विभाएं द्वारा प्रस्तुत अनुमानों की जांच-पड़ताल करती है, उसी प्रकार यह समिति प्रशासनिक विभागों द्वारा पिछले वर्ष में किए गए खचर्चा की जांच-पड़ताल करती है। यह समिति इस बात की जाँच करती है कि किसी विभाग ने उतना ही धन खर्च किय है या नहीं जितने धन की संसद ने उसे स्वीकृति दी थी और खर्च निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया गया है या नहीं।

आरम्भ में इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 थीं, लेकिन 1955 में इनकी संख्या बढ़ाकर 22 कर दी गयी, जिसमें 15 सदस्य लोक सभा द्वारा और सात सदस्य राज्य सभा के । कोई मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं हो सकता है। लोक सभा अध्यक्ष द्वारा इसके सदस्यों में से इस समिति का सभापति नियुक्त किया जाता है।

सार्वजनिक लेखा समिति निम्नलिखित कार्य करती है-

1. यह समिति यह देखती है कि जिस अधिकारी ने जो धन राशि खर्च की है, वह संसद द्वारा स्वीकृत है या नहीं।

2. यह समिति यह भी देखती है कि जिस अधिकारी ने जो धन-राशि खर्च की है उसे ऐसा करने का अधिकार है या नहीं।

3. यह समिति 'नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक' की रिपोर्ट के आधार पर सार्वजनिक नियमों के अनुसार किए गए खर्चों की जांच-पड़ताल करती है।

4. यह समिति सरकार के अधीन किसी भी संस्था के व्यय की जांच-पड़ताल कर सकती है।

5. यह समिति विभिन्न प्रशासनिक विभागों द्वारा संसद के सम्मुख प्रस्तुत लेखों (Accounts) की जांच-पड़ताल करती है।

6. यह समिति वित्तीय मामलों में धन के दुरुपयोग अथवा किसी अनुचित खर्च अथवा खर्च संबंधी भ्रष्टाचार, घुसखोरी, अनियमितता आदि बातों का ब्यौरा तैयार करती है, और इस ब्यौरे को संसद के सामने प्रस्तुत करती है। सार्वजनिक लेखा समिति संसद की अति महत्वपूर्ण समिति है। अपनी स्थापना से लेकर अब तक इसने विभिन प्रशासनिक विभागों की कमियों को उजागर किया है।

(ii) अनुमान समिति (Estimates Committees)- अनुमान समिति लोक वित्त पर संसदीय नियंत्रण का एक अन्य साधन है। इस समिति का मुख्य कार्य सरकारी कायों पर कम खर्च के बारे में संसद को परामर्श देना है। यह समिति सरकार के विभागों द्वारा होने वाले खर्चो का आंकलन करती है और सरकार को परामर्श देती है। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं , जो लोक सभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एक वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इन सदस्यों में से एक सदस्य को लोक सभा अध्यक्ष इस समिति का सभापति मनोनीत करता है। यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य है. तो वहीं इस समिति का सभापति होता है। इस समिति के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष है। परम्परा के अनुसार प्रति वर्ष इसके केवल एक -तिहाई नए सदस्य और बाकी दो-तिहाई पुराने सदस्य ही चुन लिए जाते हैं। कोई भी मंत्री इस समिति का सदस्य नहीं होता है। अगर आगे चलकर इस समिति का कोई सदस्य मंत्री नियुक्त हो जाता है, तो उसे इस समिति की सदस्यता छोड़नी होती है।

कार्य (Functions)- अनुमान समिति का मुख्य कार्य विभिन्न सरकारी विभागों द्वारा बजट के लिए प्रस्तुत आय एवं व्यय के अनुमानों (Estimates) के औचित्य की जांच-पड़ताल करना है। लोक सभा के नियम 310 के अनुसार इस समिति का कार्य सरकार के व्यय के उन अनुमानों का अध्ययन करना है, जो लोक सभा अध्यक्ष अथवा इस सदन द्वारा इसे सौंपे जाएं। यह समिति निम्नलिखित विषयों पर लोक सभा को सुझाव देती है-

1. प्रशासन में बचत एवं कुशलता लाने के लिए सुझाव।

2. प्रशासन में सुधार एवं कुशलता लाने के लिए सरकार की वर्तमान नीति के स्थान पर अन्य नीति का सुझाव।

3. इस बात की जांच करना कि प्रशासकीय कार्य में खर्च किया गया धन अनुमानों में बतायी गयी नीति की सीमा के अधीन है अथवा नहीं।

4. अनुमानों को संसद के सम्मुख रखने के संबंध में सुझाव।

अनुमान समिति विभिन्न विभागों द्वारा प्रस्तुत अनुमानों के संबंध में अपनी रिपोर्ट लोक सभा को सौंपती है। लोक सभा द्वारा इस रिपोर्ट की कापियाँ संबंधित मंत्री को भेज दी जाती हैं और उसे छह माह के अन्दर-अन्दर इस रिपोर्ट में वर्णित सुझावों पर अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए कहा जाता है।

इस समिति ने विभिन्न प्रशासकीय विभागों की कमियों को बताया और सुझाव दिया कि खचों में किस प्रकार कमी की जा सकती है।

(iii) सार्वजनिक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings)- सार्वजनिक उपक्रमों(सरकारी उद्योग) की निगरानी के लिए इस समिति की स्थापना संसद द्वारा 1 मई, 1964 को की गयी थी। इससे पहले सार्वजनिक उद्यमों के विषय में यह कार्य अनुमान समिति एवं सार्वजनिक लेखा समिति द्वारा किया जाता था। इस समिति के सदस्यों की संख्या 15 है, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा द्वारा और पाँच सदस्य राज्य सभा द्वारा चुने जाते हैं। इसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रति वर्ष सेवा निवृति हो जाते हैं और इनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित किए जाते हैं। यह समिति सरकार द्वारा स्थापित उपक्रमों के हिसाब-किताब की जाँच करती है। यह समिति यह भी देखती है कि सरकारी उपक्रम कुशलतापूर्वक एवं व्यापारिक सिद्धांतों के आधार पर चलाए जा रहे हैं या नहीं।

(व) विभाग-सम्बन्धित स्थायी समितियों (Department-Related Standing Committees)— मन्त्रालयों अथवा विभागों पर निगरानी एवं उनकी नीतियों की समीक्षा करने के लिए विभागीय समितियों की स्थापना की जाती है। भारत में जब 1993 में इनकी स्थापना की जा रही थी, तो राज्य सभा के तत्कालीन सभापति के. आर. नारायणन ने इन पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि इनका मुख्य उद्देश्य सरकार के संसद के प्रति उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करना है तथा प्रशासन को सुदृढ़ता प्रदान करना है। इनका कार्यकाल एक वर्ष होता है। एक वर्ष के पश्चात् इनका फिर से गठन किया जाता है। इस प्रकार इनका कार्य लोक सभा के पूरे कार्यकाल तक जारी रहता है। विभागीय स्थायी समितियों में 31 सदस्य होते हैं, जिनमें से 21 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। उल्लेखनीय है कि मन्त्री इन समितियों के सदस्य नहीं होते हैं। इनकी अध्यक्षता प्रायः विपक्षी दल के सांसद करते हैं। वर्तमान में इनकी संख्या 24 है। इन 24 समितियों में से आठ समितियाँ राज्य सभा के सभापति के, जब कि शेष 16 समितियाँ लोक सभा अध्यक्ष के प्रशासकीय नियन्त्रण में कार्य करती हैं। कुछ प्रमुख विभागीय समितियां इस प्रकार हैं — गृह मामले, मानव संसाधन विकास, वाणिज्य, उद्योग, परिवहन, संस्कृति एवं पर्यटन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, कार्मिक एवं सार्वजनिक शिकायत और विधि एवं न्याय, कृषि, वन, ऊर्जा, कोयला एवं स्टील, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, रसायन एवं उर्वरक, वित्त, प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, सूचना प्रौद्योगिकी, खाद्यान्न, उपभोक्ता मामले , श्रम, रेलवे, शहरी विकास, ग्रामीण विकास एवं सामाजिक न्याय एवं शक्तिकरण आदि।

3. जाँच-पड़ताल समितियाँ (Inquiry Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य संसदीय समितियाँ हैं-

(i) याचिका समिति (Committee on Petititions)- इस समिति की सदस्य संख्या 15 है। इनमें 10 सदस्य लोक सभा के और पाँच सदस्य राज्य सभा के होते हैं। इन्हें लोक सभा अध्यक्ष एक वर्ष के लिए मनोनीत करता है। इस समिति में कोई भी मंत्री शामिल नहीं होता है। यह जनता द्वारा लोक सभा को भेजी गयी याचिकाओं, प्रार्थना-पत्रों आदि पर विचार करके अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती है और संबंधित मंत्रालय को जनता को सुझाव देती है।

(ii) विशेषाधिकार समिति (Privileges Committee) - लोक सभा अध्यक्ष इस समिति के 15 सदस्यों की नियुक्ति करता है। सामान्यतया, सदन के नेता एवं कानून मन्त्री को इस समिति में शामिल किया जाता है। यदि लोक सभा उपाध्यक्ष इस समिति का सदस्य होता है, तो वही इस समिति के सभापति के रूप में कार्य करता है। संसद के सदस्यों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं, जिनका उल्लंघन करना दण्डनीय अपराध होता है। जब सदन की मान-हानि का या किसी सदस्य के विशेषाधिकार के उल्लंघन का प्रश्न सदन में लाया जाता है, तो सदन के अनुरोध पर यह समिति मामले पर विचार करती है। यह निर्णय लेने से पूर्व कथित दोषी व्यक्ति से पूछ-ताछ करती है और दोषों पाए जाने पर उसे दण्ड देती है।

(iii) आचार समिति (Ethics Committee)-इस समिति का राज्य सभा के लिए 1997 में और लोक सभा के लिए 2000 में गठन किया गया था। यह समिति संसद के सदस्यों के आचार- व्यवहार संबंधी विषय करती पर विचार करती है। यह कदाचार के मामलों की जाँच-पड़ताल करती है और उचित कार्रवाई की सिफारिश करती है। इस प्रकार यह समिति संसद में अनुशासन एवं मर्यादा लागू करती है।

4. छान-बीन एवं नियन्त्रण समितियाँ (Scrutiny and Control Committees)-इस श्रेणी में आने वाली मुख्य समितियाँ है

(1) सरकारी आश्वासनों-सम्बन्धी समिति (Committee on Government Assurances)- इस समिति की स्थापना

1953 में की गयी थी। इस समिति में 25 सदस्य होते हैं-15 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से। ये सदस्य लोक सभा अध्यक्ष द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं। इस समिति का मुख्य कार्य यह देखना है कि सरकार ने जनता को जो आश्वासन दिए हैं. वे उसके द्वारा समय-सीमा के अन्तर्गत कहां तक पूरे किए गए हैं। यह समिति इस विषय में अपनी रिपोर्ट सदन को भेजती है। इस समिति का सरकार पर थोड़ा-बहुत नियंत्रण अवश्य रहता है। हालांकि सरकार इसकी सिफारिशें मानने के लिए बाध्य नहीं है।

(ii) अधीनस्थ विधायन समिति (Committee on Subordinate Legislation)-इस समिति की स्थापन में की गयी थी। हालाकि कानून निर्माण का कार्य संसद द्वारा किया जाता है, लेकिन अत्यधिक कार्यभार और आपात स्थिति का सामना करने एवं प्रशासन को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए संसद नियम एवं उप-नियम बनाने का अधिकार संसद कार्यपालिका को सौंप देती है। संसद द्वारा कार्यपालिका को वैधानिक शक्तियों के हस्तारण करने की प्रथा को अधीनस्थ विधायन (Subordinate Legislation) कहा जाता है। ऐसे में यह देखना आवश्यक हो जाता है कि क्या कार्यपालिका इल शक्ति का दुरुपयोग तो नहीं कर रही हैं। अधीनस्थ विधायन पर विचार करने के लिए अधीनस्थ विधायन समिति की स्थापन की जाती है। इस समिति में दोनों सदनों के 15 सदस्य होते हैं, जो लोक सभा अध्यक्ष द्वारा प्रति वर्ष नियुक्त किए जाते हैं। मंत्रियों को इस समिति में शामिल नहीं किया जाता है।

(iii) अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण-संबंधी समिति (Committee on the Welfare of Scheduled Castes and Scheduled Tribes)- इस समिति की स्थापना 1968 में की गयी थी। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें 20 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। इस समिति का प्रमुख कार्य अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे कार्यों की जांच-पड़ताल करना और इस संबंध में सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना है।

(iv) लाभ के पदों-संबंधी संयुक्त समिति (Joint Committee on Offices of Profit)- इस समिति की स्थापना 1959 की गयी थी। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा से और पांच सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। यह समिति केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों एवं केंद्र शासित क्षेत्रों में कौन से पद लाभ के हैं और कौन से नहीं, ताकि विभिन्न शासकीय पदों के लिए योग्यताएँ तय की जा सकें।

(D) महिला सशक्तिकरण समिति (Committee on Empowerment of Women)-इस समिति की स्थापना 29 प्रेत, 1997 को की गयी थी। इस समिति में 30 सदस्य होते हैं, जिनमें 20 सदस्य लोक सभा से और 10 सदस्य राज्य सभा से लिए जाते हैं। यह समिति राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट पर विचार करती है और केन्द्र सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा, सम्मान एवं समानता स्थापित करने के लिए उठाए गए उपायों की समीक्षा करती है।

5. सदन के रोज़-मर्रा के कार्यों से सम्बन्धित समितियाँ (Committees Relating to the Day-to-Day Business of the House)- इस श्रेणी में निम्नलिखित संसदीय समितियाँ शामिल हैं-

(i) कार्य-मन्त्रणा समिति (Business Advisory Committee)- इस समिति का गठन लोक सभा के कार्यक्रम को तय करने के लिए किया जाता है। इस समिति का गठन लोक सभा चुनावों के तुरंत बाद किया जाता है। इसमें लोक सभा अध्यक्ष द्वारा मनोनीत 15 सदस्य शामिल होते हैं और लोक सभा अध्यक्ष स्वयं इसका सभापति होता है। यह समिति सदन का कार्यक्रम निश्चित करती है। सदन के नेता और विरोधी दल के नेता की सलाह से लोक सभा अध्यक्ष सदन का कार्यक्रम तैयार करता है। राज्य सभा की अपनी अलग कार्य-मन्त्रणा समिति होती है, जिसमें राज्य सभा के सभापति के अतिरिक्त 10 सदस्य शामिल होते हैं। यह समिति भी अपने सदन का कार्यक्रम तय करती है।

(ii) निजी सदस्य विधेयकों एवं प्रस्तावों पर समिति (Committee on Private Members Bills and Resolutions)- यह लोक सभा की एक विशेष समिति होती है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिन्हें लोक सभा अध्यक्ष मनोनीत करता है। इसका कार्यकाल एक वर्ष होता है, जो प्रत्येक वर्ष 1 मई को शुरू और अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त होता है। लोक सभा उपाध्यक्ष को इस समिति में अवश्य शामिल किया जाता है। वही इस समिति का सभापति होता है। सदन में गैर-सरकारी

सदस्य जो विधेयक प्रस्तुत करते हैं, यह समिति उन पर विचार करके उन विधेयकों पर बहस के लिए समय निश्चित करती है।
(iii) नियम समिति (Rules Committee)- इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें लोक सभा अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष भी शामिल होते हैं। इसके सदस्यों को लोक सभा अध्यक्ष मनोनीत करता है। वह स्वयं इस समिति का सभापति होता है। यह समिति सदन के कार्य-संचालन संबंधित नियमों एवं प्रक्रिया पर विचार-विमर्श करके इनमें संशोधन या परिवर्तन का सुझाव देती है। राज्य सभा की नियम समिति भी लोक सभा की नियम समिति जैसे ही हैं।

(iv) सदन की बैठकों से अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों पर समिति (Committee on Absence of Members from Sittings of the House)- यह लोक सभा की विशेष समिति है। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनको लोक सभा का अध्यक्ष एक वर्ष के लिए मनोनीत करता है। यह समिति सदन से अनुपस्थित रहने वाले सदस्यों को छुट्टी के प्रार्थना-पत्रों पर विचार करती है। यह उन सदस्यों के मामलों पर विचार करती है, जो लोक सभा अध्यक्ष की अनुमति के बिना 60 दिन या इससे अधिक समय से अनुपस्थित चल रहे होते हैं।

6. गृह-व्यवस्था समितियाँ (House-Keeping Committees)-इस श्रेणी में निम्नलिखित संसदीय समितियों आती है.

(i) सामान्य प्रयोजन समिति (General Purposes Committee)- इस समिति की स्थापना नवम्बर, 1954 में को गयी थी। इस समिति में 20 सदस्य होते हैं। इस समिति में लोक सभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं विभिन्न दलों के नेता सम्मिलित होते हैं। यह समिति सदन के संगठन एवं कार्यप्रणाली में सुधार करने पर विचार करती है और इस संबंध में लोक सभा अध्यक्ष को अपने सुझाव देती है। यह समिति उन विषयों पर विचार करती हैं, जो अन्य समितियों के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं; जैसे संसद के कार्यों के लिए अधिक स्थान या बिल्डिंग आदि का प्रबंध करना, संसद में दर्शकों को आज्ञा देने-संबंधी विषय आदि।

(ii) संसद सदस्यों के वेतन एवं भत्तों पर संयुक्त समिति (Joint Committee on Salaries and Allowances of Members of Parliament)- इस समिति की स्थापना 'संसद सदस्यों के वेतन, भत्ते एवं पेंशन अधिनियम', 1954 के तहत की गयी थी। इस समिति में 15 सदस्य होते हैं, जिनमें से 10 सदस्य लोक सभा के और पाँच सदस्य राज्य सभा के होते हैं। लोक सभा के सदस्य लोक सभा अध्यक्ष द्वारा और राज्य सभा के सदस्य राज्य सभा के सभापति द्वारा एक वर्ष के लिए मनोनीत किए जाते हैं। यह समिति सरकार से परामर्श करके संसद सदस्यों के वेतन, भत्तों एवं अन्य सुविधाओं-संबंधी अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती हैं।

(iii) आवास समिति (House Committee)-संसद के दोनों सदनों की अलग-अलग आवास समितियाँ होती हैं। लोक सभा की आवास समिति में 12 सदस्य होते हैं। ये समितियाँ अपने-अपने सदस्यों के मकानों और उनके मकानों, एवं छात्रावासों में प्रदान की जाने वाली अन्य सुविधाओं; जैसे-भोजन एवं चिकित्सा सहायता आदि काम संभालती है।

(iv) पुस्तकालय समिति (Library Committee)-यह समिति संसद के पुस्तकालय-सम्बन्धी सभी मामलों को देखती है और सदस्यों की पुस्तकालय सेवाओं को उपयोग करने में सहायता करती है। इस समिति में नौ सदस्य होते हैं, जिनमें से छह सदस्य लोक सभा द्वारा और तीन सदस्य राज्य सभा द्वारा मनोनीत किए जाते हैं।

2. तदर्थ समितियाँ (Ad-hoc Committees)— तदर्थ समितियां , वे समितियां होती है, जिनका गठन किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया जाता है और जैसे ही इनका कार्य पूरा हो जाता है, अर्थात ये अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर देती हैं, इन्हें भंग कर दिया जाता है। तदर्थ समिति दो प्रकार की होती हैं-

(i) प्रवर समितियाँ (Select Committees) - स्थायी समितियों के अतिरिक्त, संसद के दोनों सदनों द्वारा विभिन्न विधेयकों पर विचार के लिए प्रवर समितियाँ गठित की जाती हैं। किसी सदन में विधेयक पर विचार करने के पश्चात् उसे सदन की प्रथा समिति अथवा दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति के पास भेजा जाता है। सदन की प्रवर समिति में 30- 35 सदस्य तक होते हैं, जब कि दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति में 45 सदस्य (30 लोक सभा के और 15 राज्य सभा के) होते हैं। ये समितियां अस्थायी समितियाँ होती है। किसी विधेयक पर रिपोर्ट देने के बाद ये समितियाँ भंग हो जाती हैं। सदन किसी प्रवर समिति की स्थापना करते समय इसको विधेयक पर रिपोर्ट देने का समय निश्चित कर देता है।

(ii) जाँच-पड़ताल समितियाँ (Inquiry Committees)- वे समितियों, जो समय-समय पर किसी विशेष मामले की जाँच-पड़ताल के लिए गठित की जाती है, जाँच-पड़ताल समितियाँ कहलाती हैं। इन समितियों का गठन प तो इस विषय में संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित प्रस्ताव के द्वारा या फिर लोक सभा अध्यक्ष राज्य सभा के सभापति के द्वारा किया जाता है। बोफोर्स घोटाले एवं 2-जो स्पेक्ट्रम घोटाले की जाँच करने के लिए जिन संयुक्त समितियों का गठन किया गया था, वे इसी श्रेणी में आती हैं।

संसदीय समितियाँ की रिपोर्ट बाध्यकारी नहीं होती हैं, हालाँकि इनकी अधिकांश सिफारिशें संसद द्वारा स्वीकार कर सो जाती हैं और सरकार द्वारा लागू कर दी जाती हैं। यदि किसी समिति की रिपोर्ट को लेकर समिति एवं सरकार में मतभेद होता है और इसका कोई समाधान नहीं होता है, तो मामला अन्तिम निर्णय के लिए संसद को सौंपा जाता है। ऐसे में, संसद सरकार के वैकल्पिक सुझावों पर विचार करती है। भारत में संसदीय समितियाँ सरकार को संसद के प्रति उत्तरदायी बनाने का कार्य अवश्य ही करती हैं।

आलोचनात्मक मूल्याँकन (Critical Appraisal)- संसद अपना अधिकांश कार्य अपनी समितियों के माध्यम से करती है। संसदीय समितियाँ ही संसद को चलाती हैं, इसके बावजूद भी संसदीय समितियों में अनेक दोष हैं; जैसे-

1. **दलीय राजनीति से प्रभावित** (Influenced by Party Politics)- संसदीय समितियों का मुख्य दोष यह है कि इन समितियों के सदस्य दलीय आधार पर नियुक्त किए जाते हैं और नियुक्त किए जाने बाद भी ये सदस्य दलीय आधार पर ही कार्य करते हैं। समितियों के गठन में दलीय प्रभाव इतना हावी होता है कि योग्य सदस्य इन समितियों में नियुक्त नहीं हो पाते हैं। इन समितियों में होने वाला वाद-विवाद भी दलीय वाद-विवाद बन जाता है।

2. **सदस्यों का अल्प कार्यकाल** (Short Tenure of the Members)- संसदीय समितियों के सदस्यों का कार्यकाल बहुत कम होता है, क्योंकि इनके अधिकतर सदस्य केवल एक वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं। जब सदस्यों को समिति को कार्य-प्रणाली समझ आने लगती है और वे अपने कार्य में रुचि लेने लगते हैं, तो उन्हें पद से हटा दिया जाता है और उनके स्थान पर नए सदस्यों को नियुक्त कर दिया जाता है।

3. **स्थायी समितियों का अभाव** (Lack of Permanent Committees) भारत में स्थायी संसदीय समितियों का अभाव है। यहां ऐसी कोई स्थायी समिति नहीं है, जिसका कार्य सदन में प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयकों पर विचार करना हो। संसद किसी विधेयक को प्रवर समिति को भेजे बिना भी पारित कर सकती है। यह बात सदन को इच्छा पर निर्भर करती है कि किसी विधेयक को प्रवर समिति के पास भेजा जाए या न भेजा जाए।

4. **वित्तीय समितियों की रिपोटों पर विचार-विमर्श नहीं** (No Discussion on the Reports of Finance Committees)- संसद की तीन वित्तीय समितियाँ हैं और ये समितियाँ कार्यपालिका पर संसदीय नियंत्रण का प्रभावी साधन पी है, किन्तु समय के अभाव के कारण ये समितियाँ अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाती हैं। ये तीनों समितियाँ अपनी रिपोर्ट संसर को भेजती हैं. किन्तु इनकी रिपोटों पर विचार करने के लिए संसद के पास समय ही नहीं होता है।

5. **समितियों के संगठन में सदन की विशेष भूमिका नहीं** (No Special Role of a House in the Formation of Committees) - संसदीय समितियों के गठन में किसी भी सदन की कोई विशेष भूमिका नहीं होती है, क्योंकि अधिकांश समितियों के सदस्य सदनों के पीठासीन अधिकारियों द्वारा मनोनीत किए जाते हैं। अनेक समितियों का सभापतित्व भी सदन का पीठासीन अधिकारी ही करता है। समितियों एवं सदन के मध्य मात्र इतना संबंध होता है कि ये समितियाँ अपना प्रतिवेदन सदन के समक्ष रखती हैं।

6. **बैठकों में सदस्यों की कम रुचि** (Less Interest of the Members in the Meetings)- प्रायः संसद समितियों की बैठकों में संसद सदस्य कम दिलचस्पी रखते हैं। लगभग एक-तिहाई सदस्य इन समितियों की बैठकों में भाग नहीं लेते हैं और लगभग एक-तिहाई सदस्य समिति की बैठकों में केवल अपनी नाममात्र की उपस्थिति दर्ज कराने के लिए शामिल होते हैं।

7. **समितियों की कार्यवाहियों का प्रकाशित न होना** (Proceedings of the Committee are not published)--

संसदीय समितियों की कार्यवाही गुप्त होनी चाहिए अथवा खुली, यह वाद-विवाद का एक विषय है। इन समितियों की कार्यवाही को गुप्त रखने के कारण आम जनता समितियों की कार्यवाही में रुचि नहीं लेती, क्योंकि उसको इन समितियों के बारे में कोई ज्ञान ही नहीं होता है। यह माना जा सकता है कि समितियों की कार्यवाही का संचालन गुप्त रूप से किया जाए, किन्तु इनकी कार्यवाहों के संबंध में प्रेस को अवश्य ही कुछ जानकारी होनी चाहिए, ताकि आम जनता को समितियों के महत्व का पता चल सके।

8. समितियों की सहायता के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति नहीं (No Appointment of Experts to Assist Committees)— कुछ समितियाँ ऐसी है, जिनका संबंध तकनीकी विषयों से है। ऐसी समितियाँ तभी कुशलतापूर्वक कार्य कर सकती हैं, जब इन्हें अपने-अपने विषय से संबंधित विशेषज्ञों (Experts) की सहायता प्राप्त हो जाए। सार्वजनिक उपक्रम समिति तब तक अपना काम सफलतापूर्वक नहीं कर सकती है, जब तक कि विभिन्न सार्वजनिक उपक्रमों से संबंधित विशेषज्ञ इस समिति की सहायता न करें, लेकिन इनकी सहायता के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति नहीं होती है।

9. परामर्शदात्री समितियों में सुधार (Reform in Consultative Committees) भारतीय संसद की अनेक परामर्शदात्री समितियाँ हैं, जो भिन्न-भिन्न मंत्रालयों से संबंधित हैं। इन समितियों की अध्यक्षता संबंधित मंत्री करता है औ इन समितियों में संसद द्वारा मनोनीत कोई भी सदस्य नहीं होता है। इसी कारण इन्हें संसदीय समितियाँ नहीं कहा जा सकत है। इन समितियों की बैठक संबंधित मंत्री की इच्छा से बुलायी जाती है, अतः इनकी बैठकें बहुत कम होती हैं। इन समितियं के अस्तित्व को कायम रखने के लिए इनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)- भारत में संसदीय समितियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, इनकी कार्यप्रणाली में सुधार किए जाने की आवश्यकता है ताकि भारतीय लोकतंत्र में संसद अपनी प्रभावशाली भूमिका निभा सके।

लोक सभा अध्यक्ष

(Speaker of Lok Sabha)

लोक सभा संसद का निम्न, किन्तु जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदन है। वास्तव में लोक सभा ही संसद की शक्तियों का प्रयोग करती है। लोक सभा की बैठकों की अध्यक्षता इसके अध्यक्ष (Speaker) द्वारा की जाती है, जिसका उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 93 में किया गया है। लोक सभा अपने अध्यक्ष के नेतृत्व में कार्य करती है। लोक सभा के भंग होने पर भी अध्यक्ष नई लोक सभा के अस्तित्व में आने तक कार्यरत् रहता है।

चुनाव (Election)-लोक सभा अपने सदस्यों में से एक को अध्यक्ष और एक को उपाध्यक्ष चुनती है। लोक स आम चुनावों के पश्चात् अपनी पहली बैठक में इन दोनों पदाधिकारियों का चुनाव करती है। संविधान के **अनुच्छेद 93 के अनुसा**र, "लोक सभा यथाशीघ्र सदन के दो सदस्यों को अपना अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष चुनेगी।"

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का चुनाव या तो सर्वसम्मति से किया जाता है या फिर मतदान करवाया जाता है। 18वीं लोकसभा में श्री ओम बिरला जी को अध्यक्ष चुना गया है।

कार्यकाल (Tenure) - लोक सभा के समान लोक सभा अध्यक्ष का कार्यकाल पांच वर्ष है, किन्तु लोक सभा भंग होने पर भी अध्यक्ष तब तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक नई लोक सभा अपने अध्यक्ष का चुनाव न कर ले। यदि अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष लोक सभा के सदस्य न रहें, तो उन्हें अपना पद त्यागना पड़ता है। अनुच्छेद 94 के अनुसार लोक सभा सभी सदस्यों के बहुमत से प्रस्ताव पारित करके लोक सभा अध्यक्ष को पांच वर्ष की अवधि से पहले भी पद से हटा सकती है। इसके लिए अध्यक्ष को 14 दिन पहले इस आशय का नोटिस देना जरूरी है। जब लोक सभा अध्यक्ष के विरुद्ध इस तरह के प्रस्ताव पर सदन में चर्चा हो रही होती है, तो उस समय बैठक की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है। लोक सभा अध्यक्ष के विरूद्ध कई बार सदन में 'अविश्वास प्रस्ताव' प्रस्तुत किए गए।, किन्तु अभी तक एक बार भी उसके विरुद्ध 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित नहीं हो पाया।

वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances) - लोक सभा अध्यक्ष का पद अति महत्त्वपूर्ण पद है। लोकसभा अध्यक्ष को 4,50,000 लाख रुपए मासिक वेतन मिलता है । इसके अलावा, उसको दैनिक भत्ता और रहने के लिए निःशुल्क आवास की सुविधाएं भी प्राप्त हैं। लोक सभा अध्यक्ष का वेतन भारत की संचित निधि से दिया जाता है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

लोक सभा अध्यक्ष को अनेक कार्य करने पड़ते हैं। उसको शक्तियाँ और कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. प्रशासकीय शक्तियाँ (Administrative Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को निम्नलिखित प्रशासकीय शक्तियां प्राप्त हैं-

(i) वह सदन की कार्यवाहियों एवं अभिलेखों की सुरक्षा का प्रबंध करता है।

(ii) वह लोक सभा में दर्शकों एवं प्रेस प्रतिनिधियों के प्रवेश को नियंत्रित करता है।

(iii) सदन में कार्य करने वाले सभी अधिकारी एवं कर्मचारी उसके अधीन कार्य करते हैं।

(iv) वह सदन के सदस्यों को प्राप्त विशेषाधिकारों की रक्षा करता है।

(v) वह सदन की बैठकों के लिए, विभिन्न समितियों के कार्य-संचालन के लिए और सदन के सदस्यों के लिए उपयुक्त स्थानों की व्यवस्था करता है।

2. नियन्त्रणात्मक शक्तियाँ (Regulatory Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को निम्नलिखित नियंत्रणात्मक शक्तियां प्राप्त हैं-

(i) यह सदन के नेता की सलाह पर सदन की गुप्त बैठकों की आज्ञा देता है।

(ii) वह यह सुनिश्चित करता है कि सदन की गणपूर्ति के लिए आवश्यक संख्या में सदस्य उपस्थित है या नहीं।

(iii) वह सदन में सदस्यों को उनकी मातृ-भाषा में बोलने की आज्ञा देता है।

(iv) वह सदन में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखता है।

(v) वह सदन के नेता से सलाह करके सदन का कार्यक्रम निर्धारित करता है।

(vi) यदि किसी प्रस्ताव पर बराबर मत आ जाएं तो वह उस पर अपना निर्णायक मत (Casting Vote) डाल सकता है।

(vii) वह सदन के सदस्यों की जानकारी के लिए किसी विशेष महत्व के मामले पर सदन को सम्बोधित करता है।

(viii) जब किसी विधेयक पर वाद-विवाद समाप्त हो जाता है, तो वह उस पर मतदान करवाता है; मतों की गिनती करता है और परिणाम घोषित करता है।

(ix) वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है।

3. न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)- लोक सभा अध्यक्ष को कुछ न्यायिक कार्य भी करने होते हैं; जैसे-

(i) वह किसी भी विषय की महत्ता पर अन्तिम फैसला देता है।

(ii) सदन में भिन्न प्रकार के नोटिसों, प्रश्नों, संशोधनों एवं स्थगन प्रस्तावों पर उसका फैसला अन्तिम होता है।

(iii) वह किसी विषय पर निर्णय लेने के लिए किसी भी सरकारी अधिकारी से कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है।

(iv) वह नियम-संबंधी आपत्तियों (Points of Order) पर फैसला देता है।

(v) वह अनुच्छेद 110 के अन्तर्गत विवाट होने पर धन विधेयकों को प्रमाणित करता है।

4. काट-छांट-संबंधी शक्तियाँ (Censoring Powers)- लोक सभा अध्यक्ष के पास कई कांट-छांट-संबंधी शक्तियों भी हैं: जैसे-

(i) यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में बाधा डालता है, तो वह उसे निलम्बित कर सकता है।

(ii) वह सदन की कार्यवाही से ऐसे शब्दों को निकाल देने का आदेश दे सकता है, जो उसके मतानुसार अशिष्ट, असंगत, अनुचित एवं अपमानजनक हों। वह सदस्यों को अपमानजनक शब्द वापस लेने के लिए भी कह सकता है।

5. निरीक्षणात्मक शक्तियाँ (Supervisory Powers)- लोक सभा अध्यक्ष के पास निरीक्षण संबंधी शक्तियाँ भी है: जैसे-

(i) वह सदन में भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों के कार्य का निरीक्षण करता है।

(ii) वह सदन की कुछ समितियों का सभापतित्व करता है। इनमें नियम समिति (Rules Committee), कार्य-मन्त्रणा समिति (Business Advisory Committee), सामान्य प्रयोजन समिति (General Purposes Committee) आदि उल्लेखनीय है।

(ii) वह कुछ समितियों के सभापतियों एवं सदस्यों को मनोनीत करता है। इनमें निजी सदस्य विधेयक समिति (Private Members' Bill Committee), याचिका समिति (Committee on Petitions) विशेषाधिकार समिति (Committee on Privileges), सरकारी आश्वासन समिति (Committee on Government Assurance) आदि उल्लेखनीय हैं।

6. पुलिस-संबंधी शक्तियाँ (Police Powers) अपने अधिकारों को उचित प्रकार से लागू करने के लिए लोक सभा अध्यक्ष को कुछ पुलिस शक्तियाँ भी प्राप्त हैं; जैसे-

(i) वह आवश्यकता पड़ने पर दर्शकों एवं प्रेस प्रतिनिधियों को सदन से बाहर जाने का आदेश दे सकता है।

(ii) यदि कोई सदस्य सदन की कार्यवाही में बाधा डालता है और उसके कहने पर वह सदन से बाहर नहीं जाता है. तो वह उस सदस्य को जबरन बाहर निकलवा सकता है।

(iii) सदन में अनुशासन एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी उसी की होती है।

7. दल-बदल संबंधी शक्तियाँ (Powers regarding Anti-defection)- लोक सभा अध्यक्ष 52वें संशोधन अधिनियम (1985) के अन्तर्गत दल-बदल संबंधी मामले तय करता है। एक जून, 1999 को लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने जनता दल (अ) के शेष 16 सदस्यों को एक गुट के रूप में मान्यता दी थी। आगे चलकर 91वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा 1/3 सदस्यों की व्यवस्था को अवैध कर दिया गया और केवल संपूर्ण दल के विलय को मान्यता दी गयी। वह दल-बदल करने वाले सदस्यों की सदस्यता रद्द कर सकता है।

अध्यक्ष की स्थिति (Position of the Speaker)- भारत में लोक सभा अध्यक्ष का पद अति महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक पद है। यह सत्य है कि भारत में लोक सभा अध्यक्ष का पद इतना सम्मानजनक नहीं है, जितना कि ब्रिटेन की कॉमन संभा (House of Commons) के अध्यक्ष का। फिर भी, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि लोक सभा के अध्यक्ष का पद बहुत प्रभावशाली एवं सम्मानित है। वस्तुतः लोक सभा अध्यक्ष की स्थिति तभी महत्वपूर्ण एवं सम्मानजनक हो सकती है, जब इस पद पर आसीन व्यक्ति अपने दल से संबंध न रखे। ब्रिटेन में जब कॉमन सभा के किसी सदस्य को अध्यक्ष के पद पर चुन लिया जाता है, तो वह अपने दल से संबंध तोड़ देता है। लोक सभा अध्यक्ष सम्पूर्ण सदन का प्रतिनिधि होता है. इसलिए उसको दलगत राजनीति में कोई रुचि नहीं रखनी चाहिए। वस्तुतः किसी पद का महत्व पद से संबंधित शक्तियों पर इतना निर्भर

नहीं होता है, जितना कि उस पद पर आसीन व्यक्ति के व्यक्तित्व पर। यदि लोक सभा अध्यक्ष उच्च विचारों एवं उच्च चरित्र वाला व्यक्ति होगा, तो उसे ब्रिटिश कॉमन सभा के अध्यक्ष जैसा सम्मान अवश्य मिलेगा।

भारतीय संसदीय पद्धति मुख्य की विशेषताएँ

(Main features of Indian Parliamentary System)

भारतीय संसदीय पद्धति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. राष्ट्रपति का मन्त्रिमण्डल से अलग होना (Exclusion of the President from the Cabinet)-इंग्लैण्ड के सम्राट की भाँति भारत का राष्ट्रपति भी राज्य का नाममात्र अध्यक्ष (Nominal Head) है। यद्यपि समस्त देश का शासन उसी के नाम पर चलाया जाता है, परन्तु व्यावहारिक रूप में वह देश की राजनीति में कोई भाग नहीं लेता। वह प्रधानमन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श के अनुसार अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति न तो मन्त्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है और न ही उनमें भाग लेता है।

2. मन्त्रिमण्डल तथा संसद में सहयोग (Co-operation between cabinet and parliament)-भारत में मन्त्रिमण्डल तथा संसद के बीच गहरा सम्बन्ध रहता है, प्रधानमन्त्री तथा मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य संसद के एक अथवा दूसरे सदन के सदस्य होते हैं। यदि प्रधानमन्त्री अथवा मन्त्रिमण्डल का कोई सदस्य अपना पद ग्रहण करते समय संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता, तो 6 महीने के अन्दर उसे संसद का सदस्य बनना पड़ता है। मन्त्री के पद को ग्रहण करने के पश्चात् भी वे संसद के सदस्य बने रहते हैं, वे संसद की बैठकों में भाग लेते हैं, बिल पेश करते हैं तथा उन्हें पास करवाते हैं। वास्तव में संसद में मन्त्रिमण्डल के सम्पर्क के बिना किसी भी बिल के पास होने की सम्भावना नहीं होती। संसद द्वारा पास किए गए कानूनों को मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों द्वारा ही लागू किया जाता है, मन्त्री संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

3. मन्त्रिमण्डल का संसद के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility of Cabinet towards Parliament)-भारतीय संसदीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि मन्त्रिमण्डल सामूहिक रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। मन्त्रिमण्डल केवल उत्तने समय तक ही अपने पद पर बना रहता है, जब तक उन्हें लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। यदि वह लोकसभा में बहुमत का समर्थन खो बैठता है तो उसे अपना त्यागपत्र देना पड़ता है। लोकसभा कई प्रकार से मन्त्रिमण्डल में अपना अविश्वास - प्रकट कर सकती है-(i) उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके (ii) किसी मन्त्री द्वारा रखे गए - किसी प्रस्ताव को अस्वीकृत करके (iii) किसी निजी बिल को, जिसे सरकार का समर्थन प्राप्त न हो, पास करके (iv) बजट में कटौती करके तथा मन्त्रियों के वेतन आदि में कटौती करके। मन्त्रियों की लोकसभा तथा राज्यसभा के सदस्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व की एक अन्य विशेषता इसका सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective - Responsibility) है, इसका अर्थ यह है कि मन्त्रिमण्डल का कोई भी सदस्य कोई भी कार्य करता है अर्थात् किसी भी नीति को अपनाता है तो वह समस्त मन्त्रिमण्डल द्वारा किया गया कार्य अथवा नीति माना जाता है और यदि लोक सभा किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या उस द्वारा रखे गए किसी प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे, तो सारी मन्त्रिपरिषद् को अपना त्याग पत्र देना पड़ेगा।

4. राजनीतिक एकरूपता (Political Homogeneity)-मन्त्रिमण्डल का निर्माण करते समय प्रायः सभी मन्त्री एक ही राजनीतिक दल (जिसे लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है) से लिये जाते हैं। यदि कई दलों की मिली-जुली सरकार का गठन किया जाता है तो भी सरकार को चलाने के लिए एक साझा कार्यक्रम (Common Programme) तैयार किया जाता है जिसका पालन मन्त्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को करना होता है।

5. प्रधानमन्त्री का नेतृत्त्व (Leadership of the Prime Minister)-केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल का गठन प्रधान मन्त्री द्वारा किया जाता है और मन्त्री उसी के नेतृत्व में कार्य करते हैं। राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधानमन्त्री की सिफारिश के अनुसार ही

की जाती है और वह जब चाहे, किसी भी मन्त्री को हटा सकता है। प्रधानमन्त्री अपनी इच्छानुसार कभी भी मन्त्रियों के विभागों में फेर-बदल कर सकता है, कोई भी मन्त्री प्रधानमन्त्री की इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। प्रधानमन्त्री का त्यागपत्र पूरे मन्त्रिपरिषद् का त्याग पत्र माना जाता है।

6. मन्त्रिमण्डल के कार्यकाल की अनिश्चितता (Tenure of the cabinet is not fixed)- भारत के मन्त्रिमण्डल का कार्यकाल निश्चित नहीं होता। यद्यापि मन्त्रियों की नियुक्ति एक निश्चित काल के लिए की जाती है, परन्तु व्यवहार में वे उतने समय तक उपने पद पर बने रहते हैं जब तक उन्हें लोकसभा में बहुमत का समर्थन प्राप्त रहता है। लोकसभा का विश्वास खो देने पर उन्हें त्यागपत्र देना पड़ता है।

7. गोपनीयता (Secrecy)-भारत में संसदीय व्यवस्था के संचालन की एक अन्य विशेषता गोपनीयता है। प्रत्येक मन्त्री को अपना पद ग्रहण करते समय राष्ट्रपति के सामने इस सम्बन्ध में एक शपथ लेनी पड़ती है। प्रत्येक मन्त्री से यह उम्मीद की जाती है कि वह मन्त्रिमण्डल में होने वाले विचार-विमर्श को गुप्त रखे और उसे संसद अथवा देश के सामने प्रकाशित न करे। यह व्यवस्था सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को लागू करने के लिए भी बहुत आवश्यक है।

8. मन्त्रिमण्डल का लोकसभा को भंग कराने का अधिकार (The Cabinet can get the Lok Sabha dissolved)-जब कभी मन्त्रिमण्डल तथा संसद के बीच किसी विषय पर गतिरोध उत्पन्न हो जाए अथवा संसद मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करने पर विचार करने। लगे, तो प्रधानमन्त्री को राष्ट्रपति से कहकर लोकसभा को भंग करने का अधिकार है, प्रधानमन्त्री द्वारा ऐसे परामर्श दिये जाने पर राष्ट्रपति लोकसभा को भंग कर देता है। उदाहरणस्वरूप सन् 1997 में प्रधानमन्त्री इन्द्रकुमार गुजराल तया 1998 में प्रधानमन्त्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने का परामर्श दिया गया था।

9. अन्तरंग मन्त्रिमण्डल (Inner Cabinet)-मन्त्रिमण्डल एक बड़ी संस्था होती है, जिसमें शीघ्रता तया सफलता के साथ निर्णय ले पाना प्रायः सम्भव नहीं होता। इस कारण से मन्त्रिमण्डल के जो सदस्य प्रधानमन्त्री के अधिक नजदीक होते हैं और उसके विश्वास पात्र होते हैं, प्रधानमन्त्री सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उन से विचार विमर्श कर लेता है। साधारणतः गृह, सुरक्षा, वित्त आदि विभागों के मन्त्रियों को अन्तरंग मन्त्रिमण्डल में शामिल समझा जाता है,

10. विरोधी दल के नेता को मान्यता (Recognition to the Leader of the opposition)-भारत की संसदीय प्रणाली की एक अन्य विशेषता यह है कि ब्रिटिश संसदीय प्रणाली का अनुसरण करते हुए सन् 1977 में भारत में प्रथम बार विरोधी दल के नेता के पद को मान्यता प्रदान की गई वर्तमान 18वीं लोकसभा में कांग्रेस पार्टी के श्री राहुल गांधी इस पद पर कार्य कर रहे हैं।

भारत में संसदीय प्रणाली की कार्यविधि (Working of Parliament form of Government in India)-भारत में संसदीय शासन प्रणाली की कार्यविधि को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम भाग में सन् 1950 से 1989 तक का काल है जबकि केन्द्र में केवल दो वर्ष (1977-79) के अपवाद को छोड़कर कांग्रेस पार्टी का ही शासन रहा। दूसरे भाग में 1989 से लेकर अब तक का काल है जिसमें अल्पमत की सरकारें बनीं। इस काल में प्रायः मिली-जुली या अल्पमत सरकारों का काल कहाँ जा सकता है।

(क) संसदीय सरकार की 1950 से लेकर 1989 तक कार्यविधि (Working of Parliamentary system from 1950 to 1989)-

(i) सन् 1950 से लेकर 1966 तक भारतीय लोकतन्त्र पर कांग्रेस दल का ही प्रभुत्व बना रहा। पं० जवाहरलाल नेहरू के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण तथा कांग्रेस के प्रभुत्व के कारण राष्ट्रपति का पद केवल सम्मान तथा प्रतिष्ठा का ही पद बनकर रह गया। इस काल में केन्द्र के अलावा सभी राज्यों (केवल केरल को छोड़कर) में कांग्रेस की सरकारें रहीं।

(ii) सन् 1967 से 1979 तक (Working of Parliamentary government from 1967 to 1979)-सन् 1967

में हुए चौथे आम चुनावों के पश्चात् भारत में संसदीय प्रणाली की कार्यविधि में परिवर्तन हुए। इन चुनावों में कांग्रेस की लोकसभा में 285 स्थान प्राप्त हुए। श्रीमती इंदिरा गाँधी प्रधानमन्त्री बनी और मोरारजी देसाई को उप-प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया। परन्तु शीघ्र ही कांग्रेस पार्टी गुट-बन्दी का शिकार हुई। कांग्रेस का एक गुट, जिसका नेतृत्त्व श्रीमती इंदिरा गाँधी कर रही थी, प्रगतिशील नीतियों को अपनाने के पक्ष में था जबकि दूसरा गुट (मोरारजी देसाई के नेतृत्त्व में) पुरानी नीतियों को ही चालू रखने के पक्ष में था। शीघ्र ही यह मतभेद खुलकर सामने आए जिसके परिणामस्वरूप इन्दिरा गाँधी द्वारा विरोधी गुट के महत्त्वपूर्ण नेता मोरारजी देसाई को उप-प्रधानमन्त्री और मन्त्री पद से हटा दिया गया। उसी समय सन् 1969 में, राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन की मृत्यु हो जाने के कारण राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार चुनने में कांग्रेस के दोनों गुटों में मतभेद और बढ़ गए। राष्ट्रपति के चुनाव में कांग्रेस के सरकारी उम्मीदवार (Official Candidate) चुनाव हार गए और स्वतन्त्र उम्मीदवार (Independent candidate) वी.वी. गिरी प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के आशीर्वाद तथा समर्थन से चुनाव जीत गए। इसके परिणामस्वरूप सितम्बर, 1969 में कांग्रेस का पूर्ण रूप से विभाजन हो गया। इस विभाजन के कारण श्रीमती इंदिरा गाँधी की सरकार अल्पमत में आ गई और उसे भारतीय समाजवादी दल (C.P.I.) तथा डी. एम.के. (D.M.K.) के समर्थन से सरकार का संचालन करना पड़ा। परन्तु अपनी कई नीतियां 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा राजाओं के प्रिवी पर्सेज़ समाप्त करने से सम्बन्धित बिल आदि संसद में पास न करवा सकने के कारण इंदिरा गाँधी ने पूर्ण बहुमत प्राप्त करने के लिए लोकसभा का मध्यावधि चुनाव (Mid term Election) कराने का निर्णय किया। प्रधानमन्त्री की सलाह को मानते हुए राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया और 1971 में मध्यावधि चुनाव कराए गए।

सन् 1971में हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को 350 स्थान प्राप्त हुए और उसने श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्त्व में सरकार का गठन किया। सन् 1971 तथा 1972 में कई राज्यों में भी चुनाव कराए गए उनमें भी कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ।

सन् 1971 के चुनावों में श्रीमती इंदिरा गाँधी ने रायबरेली (उत्तर-प्रदेश) निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव जीता था। उनसे पराजित हुए उम्मीदवार राजकरण ने उनके चुनाव के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनाव-याचिका (Election Petition) दायर की थी 12 जून, 1975 को उच्च न्यायालय द्वारा इंदिरा गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया और श्रीमती गाँधी को चुनाव में भ्रष्ट साधनों का प्रयोग करने के अपराध में 7 वर्ष के लिए संसद तथा विधान सभा का चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया। इस पर सभी विरोधी दलों द्वारा साम्यवादी दलों को छोड़कर इंदिरा गाँधी के त्यागपत्र की माँग की गई। विरोधी दलों के नेताओं ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से भी अपील की कि वह प्रधानमन्त्री को त्यागपत्र देने का आदेश दे। परन्तु राष्ट्रपति ने उनकी माँग पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर विरोधी दलों ने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चलाने का निर्णय किया। ऐसी स्थिति में प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा संविधान की धारा 352 के अन्तर्गत भारत की सुरक्षा को खतरा व आन्तरिक गड़बड़ (Internal Disturbance) के कारण आपातकाल की घोषणा कर दी गई। आपातकाल के दौरान विपक्ष के कई नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया और प्रैस पर कई प्रतिबन्ध लगा दिये गए।

लोकसभा का 5 वर्ष का कार्यकाल समाप्त होने के कारण मार्च 1976 में इसके लिए चुनाव होने थे, परन्तु, आपात स्थिति के कारण जनवरी, 1976 में इसकी अवधि को एक वर्ष के लिए और दिसम्बर, 1976 में पुनः एक वर्ष के लिए (दिसम्बर, 1977 तक) बढ़ा दिया गया। परन्तु जनवरी, 1977 में ही प्रधानमन्त्री की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया और नए चुनावों की घोषणा कर दी गई। चुनावों की घोषणा होने पर कांग्रेस संगठन (Congress-O) भारतीय लोकदल, जनसंघ सोशलिस्ट पार्टी (Socialist Party) तथा विद्रोही कांग्रेस नेता चन्द्रशेखर तथा कृष्णकान्त आदि ने मिलकर जनता पार्टी (Janta Party) का गठन किया। मोरारजी देसाई को पार्टी का अध्यक्ष तया चौ० चरणसिंह को उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया।

सन् 1977 में हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पार्टी को पहली बार भारी हार का सामना करना पड़ा और उसे लोकसभा में केवल 153 स्थान प्राप्त हुए। स्वयं प्रधानमन्त्री इंदिरा गाँधी भी चुनाव हार गई। इन चुनावों में जनता पार्टी को भारी सफलता गिली और उसने श्री मोरारजी देसाई के नेतृत्त्व में सरकार का गठन किया। इससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के इतिहास में एक नये अध्याय का आरम्भ हुआ। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् जनता पार्टी में फूट पड़ गई जिसके परिणामस्वरूप 15 जुलाई, 1979 को प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने अपना त्यागपत्र दे दिया। उससे पहले प्रधान मन्त्री ने चौ० चरण सिहं तथा राजनारायण जो पार्टी में उनका खुल कर विरोध कर रहे थे से उनका त्यागपत्र ले लिए थे। उन दोनों ने 30 जून, 1978 को ही

अपने त्यागपत्र दे दिए थे। प्रधानमन्त्री के त्यागपत्र देने के पश्चात् राष्ट्रपति संजीवा रेड्डी ने चौ. चरण सिंह को सरकार का गठन करने के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु साथ में राष्ट्रपति ने चरण सिंह जी को अपना बहुमत प्रकट करने के लिए कहाँ। यह पहला अवसर था जब किसी राष्ट्रपति ने प्रधानमन्त्री से ऐसा करने के लिए कहाँ था। परन्तु प्रधानमन्त्री चरणसिंह ने लोकसभा में अपने समर्थन बहुमत न मिलते देख, पहले ही अपना त्याग पत्र दे दिया और उनकी सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया और नए चुनावों की घोषणा कर दी गई।

सन् 1980-1989 तक (From 1980 to 1989)

जनवरी, 1980 में नई लोकसभा के चुनाव कराए गए। इन चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली और एक बार फिर श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्त्व में कांग्रेस पार्टी की सरकार बनी।

31 अक्तूबर, 1984 को श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या हो जाने के कुछ ही घंटों बाद राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा उनके पुत्र श्री राजीव गाँधी को देश का प्रधानमन्त्री नियुक्त कर दिया गया। उसके कुछ ही दिनों के पश्चात् (दिसम्बर, 1984) में आठवीं लोकसभा के चुनाव कराए गए। इन चुनावों में राजीव गाँधी के नेतृत्त्व में कांग्रेस को भारी सफलता मिली और उनके नेतृत्त्व में बनी कांग्रेस पार्टी की सरकार ने सत्ता सम्भाली। दल-बदल की बुराई को समाप्त करने के लिये सन् 1985 में संविधान का 52वां संशोधन पास किया गया। अपने शासन काल में प्रधानमन्त्री राजीव गाँधी के राष्ट्रपति के साथ आरम्भ में सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे, परन्तु बाद में दोनों के आपसी सम्बन्धों में कई कारणों से तनाव उत्पन्न हो गया था। सन् 1987 में आर. वेंकटरमन राष्ट्रपति बन गए जिनके प्रधानमन्त्री के साथ सम्बन्ध प्रायः अच्छे ही रहे।

सन् 1989 से वर्तमान तक (from 1989 to the present)

भारत में संसदीय प्रणाली का बदलता स्वरूप (Changing nature of Parliamentary form of Government in India)— नवम्बर, 1989 में लोकसभा के चुनाव हुए, भारत में पहली बार ऐसा हुआ कि संसद में चुनावों के परिणामस्वरूप किसी भी राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत (Absolute Majority) नहीं मिला। यद्यपि कांग्रेस को इन चुनावों में अन्य दलों के मुकाबले में सब से अधिक स्थान 193 प्राप्त हुए, परन्तु दल के नेता राजीव गाँधी ने सरकार बनाने का अपना दावा पेश नहीं किया और प्रधानमन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया। ऐसी स्थिति में जनता दल तथा राष्ट्रीय मोर्चा द्वारा जनता दल के नेता श्री वी. पी. सिंह को अपना नेता चुन लिया गया और सरकार बनाने का दावा पेश किया, राष्ट्रपति द्वारा वी. पी. सिंह को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया गया और उन्हें 30 दिन के अन्दर लोकसभा में विश्वास प्राप्त करने के लिए कहाँ। 21 दिसम्बर, 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा की यह सरकार लोकसभा में विश्वास प्रस्ताव करने में सफल हो गई। राजीव गाँधी लोकसभा में विरोधी दल के नेता (Leader of the opposition) बने। परन्तु अक्तूबर, 1990 में भारतीय जनता पार्टी द्वारा इस सरकार से अपना समर्थन वापस लेने की घोषणा के परिणामस्वरूप यह सरकार अल्पमत में आ गई और इसे अपना त्यागपत्र देना पड़ा। उसके पश्चात् कांग्रेस पार्टी के समर्थन में जनता दल (स) के नेता श्री चन्द्रशेखर देश के प्रधानमन्त्री बने। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् 6 मार्च, 1991 को कांग्रेस से मतभेद उत्पन्न हो जाने के कारण चन्द्रशेखर जी ने अपना त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रपति से लोकसभा भंग करने तथा नए चुनाव कराने की सिफारिश की, 13 मार्च, 1991 को राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया।

10वीं लोकसभा के चुनाव मई, जून, 1991 में कराए गए और इन चुनावों में भी किसी राजनीतिक दल को लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। लोकसभा में सब से बड़ा दल होने के कारण राष्ट्रपति के द्वारा कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया गया। कांग्रेस पार्टी के नेता श्री नरसिम्हा राव भारत के नए प्रधानमन्त्री बने। भारतीय जनता पार्टी के नेता श्री लालकृष्ण आडवाणी लोकसभा में विरोधी दल के नेता बने।

सन् 1996 में 11वीं लोकसभा के चुनाव हुए। इन चुनावों में भी किसी एक राजनीतिक दल को लोकसभा में बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी-भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। परन्तु लोकसभा में अपना बहुमत न जुटा पाने के कारण उन्हें कुछ ही दिनों के पश्चात् त्यागपत्र देना पड़ा। उनके त्यागपत्र देने के पश्चात् राष्ट्रपति ने संयुक्त मोर्चा (United Front) के नेता श्री एच. डी. देवेगौडा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया

गया। इस प्रकार कांग्रेस के समर्थन से 13 दलों की मिली-जुली सरकार का गठन किया गया। परन्तु 28 नवम्बर, 1997 को कांग्रेस द्वारा इस से भी अपना समर्थन वापस ले लिया गया, जिसके परिणामस्वरूप यह सरकार भी गिर गई 4 दिसम्बर, 1997 की राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा को भंग कर दिया गया।

12वीं लोकसभा का चुनाव फरवरी मार्च, 1998 में हुआ। इन चुनावों के परिणामस्वरूप लोकसभा में किसी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हो सका। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा भारतीय जनता पार्टी के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया गया जिन्होंने 13 दलों की मिली-जुली सरकार (Coalition Government) का गठन किया। किंतु यह सरकार शीघ्र ही अल्पमत में आ गई। प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी लोकसभा में 'विश्वास मत' एक वोट से हार गए।

13वीं लोकसभा के चुनाव सितम्बर, अक्तूबर 1999 में कराए गए। इन चुनावों में राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन (National Democratic Alliance) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ और गठबन्धन के नेता श्री अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्त्व में गठबन्धन की सरकार का गठन किया गया। श्री वाजपेयी ने 13 अक्तूबर, 1999 को प्रधानमन्त्री के रूप में शपथ ग्रहण की। अटल बिहारी वाजपेयी ने 22 मई, 2004 तक शासन किया।

इसके बाद 2004 से 2014 तक कांग्रेस के नेतृत्व में गठबंधन सरकार का नेतृत्व डॉ. मनमोहन सिंह ने किया। वह भारत के पहले सिक्ख प्रधानमंत्री थे तथा प्रधानमंत्री के पद पर उन्होंने कुल 10 साल और 2 दिन तक कार्य किया। गठबंधन सरकारों के दौर को समाप्त करने का श्रेय भारतीय जनता पार्टी के नेता नरेन्द्र मोदी को जाता है। उनके नेतृत्व में भाजपा ने 26 मई, 2014 को स्पष्ट बहुमत वाली सरकार का गठन किया। प्रधानमंत्री मोदी भारत के चौथे ऐसे प्रधानमंत्री हैं जिन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में 2 कार्यकाल पूरे कर लिए हैं। 2024 के आम चुनावों में फिर से श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी है। लेकिन इस बार भाजपा को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ है।

श्री नरेंद्र मोदी के शासनकाल में भारतीय संसदीय पद्धति में काफी बदलाव हुए। स्पष्ट बहुमत की सरकार होने के बाद भी चुनावपूर्ण गठबंधन में शामिल साथी दलों को वे एक साथ लेकर चल रहे हैं। केन्द्र में एक शक्तिशाली सरकार का गठन भी इनके कार्यकाल की अन्य उपलब्धि है। कुछ राजनीतिक आलोचक इस सरकार को निरंकुश बताकर इसकी आलोचना करते हैं।

'भारत में संसदीय प्रजातंत्र का क्षरण' की समीक्षा कीजिए। (Erosion of Parliamentary Democracy in India. Comment.)

अथवा

भारत में संसदीय जनतन्त्र की क्रियाशीलता संकट में है। इसको भली-भांति समझाइए । (The working of Parliamentary Democracy in India is in crisis. Elucidate.)

अथवा

भारत में संसदीय प्रणाली प्रत्याशाओं को पूर्ण करने में असफल हो गई है। तर्क दीजिए। (Parliamentary Demoracy in India has failed to fulfil expectations, Agree.)

अथवा

भारत में संसदीय प्रणाली की कार्यवली पर एक निबन्ध लिखें। (Write an essay on the working of Parliamentary System in India.)

उत्तर -भारत में संसदीय प्रणाली ने सफलतापूर्वक कार्य किया है तथा लोकतंत्र मजबूत व परिपक्व हुआ है, किन्तु इसमें कुछ

ऐसे दोष उत्पन्न हो गए हैं, जिन्होंने इसके औचित्य पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। ऐसे में यह उन आशाओं को पूरा नहीं कर पाई, जिनको पूरा करने की उम्मीदें इससे थीं। समय के चलते इसमें अनेक दोष आ गए हैं, जिन्होंने इसको क्षीण किया है। भारतीय संसदीय प्रणाली के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं-

1. लंबे समय तक एक दल का प्रभुत्व (Dominance of One Party for a Long Time)- 1952 में देश में प्रथम आम चुनाव हुए। अन्य दलों के होते हुए भी 1952 से लेकर 1967 तक राज्यों में और 1977 तक केन्द्र में लगातार कांग्रेस की ही सरकारें बनी। 1977 से लेकर 1979 तक केन्द्र व अधिकांश राज्यों में जनता पार्टी का शासन रहा। तब भी एक ही दल का प्रभुत्व रहा, सिर्फ अन्तर यह या कि कांग्रेस के स्थान पर जनता पार्टी का शासन स्थापित हो गया था। 1980 से लेकर 1989 तक फिर से एक ही दल (अब कांग्रेस) का शासन केन्द्र व राज्यों में रहा। इस प्रकार से 1950 से लेकर 1989 तक अधिकांशतः एक ही दल का देश में प्रभुत्व रहा। इसके कारण देश में ऐसी राजनीतिक संस्कृति का विकास नहीं हुआ, जिससे संसदीय प्रणाली की ठीक से कार्य कर सके ।

2. संगठित व जिम्मेवार विरोधी दल का अभाव (Lack of Responsible and Organised Opposition)-केन्द्र व राज्यों में एक दल के प्रभुत्व के चलते देश में मजबूत, संगठित व जिम्मेवार विरोधी दल का विकास नहीं हुआ, जो किसी भी लोकतन्त्र के लिए, विशेष रूप से संसदीय लोकतन्त्र के लिए आवश्यक है। भारत में अनेक राजनीतिक दल विरोधी खेमे में रहे, किन्तु वे उद्देश्यात्मक एकता नहीं दिखा पाए तथा संकीर्ण हितों के आधार पर बंटे रहे। ये विरोधी दल शासक दल पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने में नाकामयाब रहते हैं, जिससे भारत में संसदीय प्रणाली का विकास नहीं हो पाया।

3. बहु-दलीय प्रणाली (Multi-party System)- बहुदलीय प्रणाली ने भी भारत में संसदीय प्रणाली की सफलता में बाधा का काम किया है, क्योंकि बहु-दलीय प्रणाली से मतदाता कई समूहों में बंट जाता है, जिससे संसदीय प्रणाली के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं बनता है। ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली की सफलता का एक प्रमुख कारण यह है कि वहाँ पर दो ही प्रमुख राजनीतिक दल हैं-अनुदार दल और श्रमिक दल। इनमें से एक शासक दल के रूप में कार्य करता है, तो दूसरा मजबूत व जिम्मेवार विपक्ष की भूमिका निभाता है। राजनीतिक दलों की बढ़ती संख्या के कारण चुनावों में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत मिलना कठिन हो जाता है, जिससे देश में राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है।

4. स्वतंत्र सदस्यों की बढ़ती संख्या (Increasing Number of Independent Candidates)- भारत में संसदीय लोकतन्त्र के सामने एक और बड़ी चुनौती यह है कि यहाँ चुनावों में निर्दलीय सदस्यों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। चुनाव चाहे किसी भी स्तर का हो, निर्दलीय सदस्यों की संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है। प्रायः निर्दलीय सदस्य चुनावों के प्रति गंभीर नहीं होते। अगर ये निर्दलीय सदस्य चुनाव में जीत जाते हैं, तो ये सरकार को निर्माण में दखलअंदाजी करते हैं। सरकार बनाने व तोड़ने में ये निर्दलीय सदस्य अहम भूमिका अदा कर रहे हैं। निर्दलीय सदस्यों की इन भूमिकाओं से संसदीय प्रणाली कमजोर हुई है।

5. अवसरवादी प्रवृत्ति (Tendency of Opportunism)- 1980 के दशक के बाद भारतीय राजनीति पर अवसरवाद का रंग चढ़ता चला गया, जिससे दल-बदल होने लगा, सरकारें गिरने लगीं व राजनीतिक अस्थिरता बढ़ने लगी। इसके कारण वे आधार कमजोर हो गए, जिन पर संसदीय प्रणाली कार्य करती है। वर्तमान की राजनीति में अवसरवाद चर्म सीमा पर है। यही कारण है कि आज संसदात्मक शासन के अस्तित्व व औचित्य पर ही प्रश्न उठने लगे हैं।

6. संसद की प्रभाविकता में कमी (Decline in the Effectiveness of Parliament)- भारत में नए राजनीतिक माहौल का शिकार खुद संसद भी बन गयी है। संसद के सदस्यों की पृष्ठभूमि का प्रभाव संसद की कार्य-विधि पर पड़ना स्वाभाविक ही है। जो गंभीरता व समर्पण संसद सदस्यों में होना चाहिए, वह अक्सर देखने को नहीं मिलता है। संसद में वाद-विवाद का स्तर गिरता जा रहा है और समय कम होता जा रहा है। संतद का अधिकांश समय नारेबाजी, आरोप व प्रत्यारोपों में गुजर जाता है जिसके कारण किसी भी विषय पर पर्याप्त विचार-विमर्श नहीं हो पाता है। प्रायः दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों की स्थिति असहाय नजर आती है। संसद के अधिवेशनों का कार्यकाल व कार्य-समय (Working Hours) घट रहे हैं, जब कि ससद का खर्च बढ़ गया है। ऐसे में संसद कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने की अपनी प्रमुख जिम्मेवारी को नहीं निभा - रही है,

क्योंकि एक प्रकार की रबड की मोहर बन चुकी है। संसद का समय बेकार की बातों में खराब हो जाने से मुख्य विषयों पर निर्णय जल्दबाजी में लिए जाते हैं। इस प्रकार संसद की प्रभाविकता व स्तर में भारी कमी आयी है, जिससे या तो संसदीय प्रणाली का विकल्प तलाशने की आवश्यकता पड़ने लगी है या इसमें संशोधन करने की बात होने लगी है।

7. सिद्धांतहीन समझौते (Unprincipled Alliances)- पिछले 20 वर्षों की राजनीति में लगभग सभी राजनीतिक दलों का ऐसा व्यवहार रहा है, जिसे देखकर ऐसा लगता कि कोई भी दल सत्ता के बिना नहीं रह सकता है, भले ही इसके बदले उसे किसी भी दल के साथ समझौता करना पड़े। पिछले 20-25 वर्षों में सरकार बनाने व सरकार तोड़ने के उद्देश्य से सिद्धांतहीन समझौते हुए हैं।

8. जन संपर्क में कमी (Want of Contact with People)- राजनीति एक कल्याणकारी कार्य है, जिसमें जन सहयोग की आवश्यकता है। संसदीय लोकतन्त्र में राजनीतिक दलों को जनसंपर्क में रहना चाहिए और जन समस्याओं को हल के लिए सरकार के पास लाना चाहिए। आज भारत में राजनीतिक दलों का जनता के साथ संपर्क कम हो गया है। सभी राजनीतिक दल केवल चुनावों के समय जनता के बीच आना पसंद करते हैं। दूर-दराज के गाँव व खालिहानों से दूर राजनीतिक दलों के लिए राजनीति सेवा ना बनकर व्यवसाय बन गया है। संसदीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि शासक व शातितों में संपर्क बना रहे।

9. क्षेत्रीय दलों का बढ़ता हुआ प्रभाव (Increasing Influence of Regional Parties)-1980 के दशक के बाद से भारत में क्षेत्रीय दलों की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है। यहाँ विभिन्न राज्यों में विभिन्न आधारों पर अनेक क्षेत्रीय दल अस्तित्व में आए हैं। यहाँ तक कि एक-एक राज्य में कई-कई क्षेत्रीय दल भी बने हैं। इन क्षेत्रीय दलों के उदय के कुछ निश्चित कारण रहे हैं और इनकी कुछ उपयोगिता भी समझी जा सकती है किन्तु कुल मिलाकर संसदात्मक लोकतंत्र पर इनका प्रभाव नकारात्मक ही रहा है। क्षेत्रीय दलों के कारण क्षेत्रवाद भी बढ़ा है व कभी - कभी क्षेत्रवाद अलगाववाद में भी बदला है, जिसका राष्ट्रीय एकता व अखंडता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। क्षेत्रीय दलों के कारण राजनीतिक अस्थिरता की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिससे भारतीय संसदीय प्रणाली की राह में बाधा उत्पन्न हुई है।

10. सामूहिक जिम्मेवारी का अभाव (Lack of Collective Responsibility)- संसदीय प्रणाली को एक मुख्य विशेषता यह होती है कि इसमें सरकार के सभी मंत्री व्यक्तिगत व सामूहिक रूप से संसद व जनता के प्रति जिम्मेवार होते हैं। मिली-जुली सरकारों के दौर व राजनीति दलों में अनुशासनहीनता के कारण कार्यपालिका (मन्त्रि-परिषद) के निर्णयों में समरूपता सनाप्त हो रही है तथा नीतिगत सामूहिक दृष्टिकोण व सामूहिक जिम्मेवारी में कमी बढ़ती जा रही है, जिससे संसदीय सरकार विफल हो रही है।

11. सांझी/गठबंधन सरकारें (Coalition Governments) — लोक लुभावनी राजनीति और तुष्टिकरण की राजनीति ने भारतीय समाज को राजनीतिक स्तर पर अनेक वर्गों में बाँट दिया है। 1989 के बाद से, मई, 2014 तक लगातार त्रिशंकु संसद (Hung Parliament) अस्तित्व में रही है। अन्य शब्दों में, कोई भी दल चुनावों में उतने स्थान प्राप्त नहीं कर पाता, जितने सरकार बनाने के लिए चाहिए। इसी स्थिति में मिली-जुली सरकार बनती हैं। किन्तु अनुभव भी यह बताता है कि आवश्यक राजनीतिक तालमेल के अभाव में मिली-जुली सरकारें सफल नहीं होती हैं।

12. दल-बदल की प्रवृत्ति (Tendency of Defection)- भारतीय संसदीय प्रणाली का एक दोष यह भी है कि इसमें दल-बदल की प्रवृत्ति जोरों पर रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि जन-प्रतिनिधि सत्ता की तलाश में रहते हैं। प्रारंभ में छोटे स्तर पर दल-बदल होता था, किन्तु आगे चलकर इस समस्या ने बड़ा रूप धारण कर लिया। हरियाणा 'आया राम गया राम' का जनक बनकर उभरा है। 1979 में तत्कालीन मुख्य मंत्री भजनलाल मन्त्रिमण्डल के साथ जनता पार्टी छोड़कर कांग्रेस में शामिल हो गए। 1985 में दल-बदल की प्रवृत्ति को कम करने के लिए राजीव गांधी सरकार दल-बदल विरोधी कानून (Anti-Defection Law) के रूप में 52वां संविधान संशोधन लाई, जिसमें निश्चित परिस्थितियों में दल-बदल करने पर जनप्रतिनिधियों की सदस्यता समाप्त करने की व्यवस्था की गई, किन्तु दल-बदल तब भी जारी रहा। 91वें संविधान संशोधन, 2003 द्वारा दल-बदल की प्रवृत्ति पर कठोर नियन्त्रण लगाने की व्यवस्था की गई, किन्तु प्रकारान्तर से यह अब भी जारी है।

13. राजनीति का व्यवसायीकरण व अपराधीकरण (Commercialisation and Criminalisation of Politics)-भारत में राजनीति में पिछले कुछ दशकों से धन की भूमिका बहुत बढ़ी है। यहाँ सभी राजनीतिक दल धन का प्रयोग मतदाताओं को रिझाने के लिए करते हैं। भारतीय राजनीति में प्रवेश करने वाली एक अन्य प्रवृत्ति है, राजनीति का अपराधीकरण अर्थात् राजनीति में आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का प्रवेश हो गया है। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि कोई भी ऐसा राजनीतिक दल नहीं है, जिसमें अपराधिक लोगों ने प्रवेश न किया हो। इस कारण न केवल आम आदमी की राजनीति में रुचि कम हुई है, बल्कि सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था की विश्वसनीयता भी कम हुई है। यह भारतीय संसदीय प्रणाली की कमी भी है व इसके लिए राजनीतिक संकट भी।

भारतीय संसदीय प्रणाली में सुधार के सुझाव (Suggestions for Reforms in Indian Parliamentary System)-संसदीय लोकतंत्र को पुनः स्थापित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं-

1. राजनीतिक दलों की संख्या में कमी होनी चाहिए।

2. साम्प्रदायिक व जातिगत राजनीतिक दलों पर पाबंदी होनी चाहिए।

3. दल-बदल पर पूर्ण प्रतिबन्ध होना चाहिए।

4. राजनीति में काले धन का प्रयोग प्रतिबंधित होना चाहिए।

5. आपाराधिक प्रवृत्ति के लोगों के राजनीति में प्रवेश पर पाबंदी होनी चाहिए।

6. नागरिकों के लिए मतदान में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए।

7. मिली-जुली सरकारें चलाने के लिए सकारात्मक वातावरण का निर्माण होना चाहिए।

8. राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सख्त कदम उठाए जाने चाहिए।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. "राज्य सभा न केवल दूसरा सदन, वरन् दूसरे दर्जे का सदन भी है।" इस कथन के संदर्भ में राज्य सभा के पक्ष एवं विपक्ष में अपने तर्क दें। ("Rajya Sabha is not only a second chamber but also a secondary chamber." In the light of this statement give your arguments in favour and against Rajya Sabha.)

2. राज्य सभा की संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। (Describe the composition, powers and functions of Rajya Sabha.)

3. भारतीय संसद की रचना एवं शक्तियों का वर्णन कीजिए। (Describe the composition and powers of the Indian Parliament.)

4. लोक सभा के अध्यक्ष को शक्तियों एवं स्थिति का वर्णन करो। (Describe the powers and position of the Speaker of Lok Sabha.)

5. लोक सभा एवं राज्य सभा की शक्तियों की तुलना कीजिए और अन्तर बताइए।

(Compare and contrast the powers of Lok Sabha with those of Rajya Sabha.)

6. लोक सभा की रचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

(Discuss the composition and functions of Lok Sabha.)

7. भारतीय संसद की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। क्या यह एक सम्प्रभुतासम्पन्न संस्था है? (Discuss the powers and functions of the Indian Parliament. Is it a sovereign body?)

8. भारतीय संसद की प्रतिष्ठा में पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।

(Describe the causes of the decline in the prestige of the Indian Parliament.)

9. भारतीय संसद की कार्य प्रणाली के दोषों का वर्णन कीजिए।

(Describe the defects in the workings of the Indian Parliament.)

10. लोक सभा की संरचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन करें।

11. भारत में संसदीय कार्य प्रणाली की समीक्षा कीजिए।

Unit-4

राज्यपाल (Governer)

राज्यपाल के पद का प्रावधान → अनुच्छेद 153 के अनुसार, "प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल होगा और यह अनुच्छेद एक ही व्यक्ति की दो या अधिक राज्यों में राज्यपाल के रूप में नियुक्ति को नहीं रोकेगा।"
इसका अर्थ यह निकलता है कि एक व्यक्ति को दो या दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।

नियुक्ति → संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राष्ट्रपति राज्यपाल की नियुक्ति करता है, लेकिन वह राज्यपालों की नियुक्ति केंद्रीय मंत्रिपरिषद् की सलाह से ही करता है।

- राज्यपाल की नियुक्ति करते समय निम्नलिखित दो परंपराओं को ध्यान में रखा जाता है –

i) किसी व्यक्ति को उस राज्य में राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाता है, जिसका वह निवासी होता है।

ii) राज्यपाल की नियुक्ति करते समय संबंधित राज्य के मुख्यमंत्री (CM) से परामर्श लिया जाता है और उस व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाता जो उस राज्य के मुख्यमंत्री को स्वीकार नहीं हो।

योग्यताएँ → संविधान के अनुच्छेद 157 के अनुसार राज्यपाल की योग्यताएँ इस प्रकार हैं –

i) वह भारत का नागरिक हो।
ii) उसकी आयु 35 वर्ष से कम न हो।

शर्तें → राज्यपाल के पद के लिए संविधान में निम्न शर्तें इस प्रकार हैं –

i) वह केंद्र अथवा राज्य सरकार के अंतर्गत लाभ के किसी पद पर आसीन न हो।
ii) वह संसद या राज्य विधानमंडल का सदस्य न हो।
iii) उसमें अन्य कोई ऐसी अयोग्यता न हो, जो किसी कानून द्वारा निश्चित की गई हो।

शपथ → राज्यपाल को पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) के मुख्य न्यायाधीश के सम्मुख (सामने) शपथ लेनी होती है।

वेतन एवं भत्ते → राज्यपाल के वेतन एवं भत्ते संसद तय करती है।

- फरवरी 2018 के बाद से राज्यपाल को 3,50,000 रुपये प्रतिमाह वेतन तथा अन्य भत्ते तथा रहने के लिए निःशुल्क निवास स्थान दिया जाता है।
- राज्यपाल का वेतन एवं भत्ते उसके कार्यकाल में कम नहीं किए जा सकते हैं।
- किंतु अनुच्छेद 360 के तहत वित्तीय आपातकाल की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल के वेतन एवं भत्तों में कटौती की जा सकती है।

कार्यकाल (Term) –

- राज्यपाल पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता है। (अनुच्छेद 156 के अनुसार)
- 5 वर्ष से पहले भी राष्ट्रपति राज्यपाल को उसके पद से हटा सकता है।
- राज्यपाल स्वयं भी अपने पद से त्याग-पत्र दे सकता है।

अक्टूबर 2004 में कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार ने बिहार के राज्यपाल रामा जोइस, पंजाब के राज्यपाल ओ. पी. वर्मा एवं तमिलनाडु के राज्यपाल पी. एस राममोहन को राष्ट्रपति से बर्खास्त करवाया था।

o राज्यपाल को राष्ट्रपति द्वारा एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित किया जा सकता है।

न्यायिक उन्मुक्तियाँ —

न्यायिक उन्मुक्तियाँ इस प्रकार हैं —

i) राज्यपाल अपनी शक्तियों तथा कर्तव्यों के पालन के लिए किसी न्यायालय में उत्तरदायी नहीं होता है।

ii) उसके कार्यकाल में उस पर कोई फौजदारी मुकद्दमा नहीं चलाया जा सकता है।

iii) किसी कोर्ट द्वारा उसके कार्यकाल में उसे बंदी बनाने के लिए आदेश जारी नहीं किया जा सकता है।

iv) उसके खिलाफ व्यक्तिगत रूप से दीवानी केस (Civil Case) करने की स्थिति में, उसे 2 महीने पहले सूचना देना अनिवार्य है।

(राज्यपाल की शक्तियाँ एवं कार्य)

1. वैधानिक शक्तियाँ — राज्यपाल की वैधानिक शक्तियाँ इस प्रकार हैं —

i) राज्यपाल राज्य विधानमंडल का अधिवेशन बुलाता है, इसे स्थगित (बीच में रोकना) कर सकता है तथा इसकी अवधि बढ़ा सकता है।

ii) राज्यपाल प्रत्येक राज्य आम चुनाव के पश्चात पहले सत्र को तथा प्रतिवर्ष प्रथम सत्र को संबोधित करता है।

iii) राज्यपाल विधानपरिषद के 1/6 सदस्यों को मनोनीत करता है।

iv) (अनुच्छेद 213) आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल अध्यादेश जारी कर सकता है।

v) राज्यपाल मुख्यमंत्री की सिफारिश पर विधानसभा को भंग कर सकता है।

vi) वह राज्य लोक सेवा आयोग, राज्य वित्त आयोग

तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की वार्षिक रिपोर्ट को विधानसभा के सामने प्रस्तुत करता है।

vii) राज्यपाल राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों (Bills) को ~~पारित~~ अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। वह अपने विवेकानुसार किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

viii) वह राज्य विधानपरिषद तथा विधानसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष का पद खाली होने की स्थिति में किसी भी सदस्य को विधान अध्यक्षता करने के लिए कह सकता है।

कार्यपालिका या कार्यकारी शक्तियाँ –

i) राज्य का प्रशासन राज्यपाल के नाम पर चलाया जाता है।

ii) राज्यपाल मुख्यमंत्री (CM) की नियुक्ति तथा उसकी सलाह पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है।

iii) वह मुख्य मंत्री से प्रशासन के बारे में कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकता है।

iv) राज्यपाल राज्य के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है।

v) जब राज्यपाल के अनुसार राज्य में शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा हो, तो राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश कर सकता है।

vi) राज्यपाल मुख्य मंत्री की सलाह से मंत्रियों को हटा सकता है।

vii) राज्यपाल राज्य के महाधिवक्ता (Advocate General) और राज्य महिला आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों, राज्य ~~लोक~~ सेवा आयोग के ~~की~~ अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति करता है।

viii) वह राज्य विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति के रूप में कार्य करता है तथा राज्य विश्वविद्यालयों के कुलपति की नियुक्ति करता है।

न्यायिक शक्तियाँ → इस प्रकार हैं-

i) राज्यपाल राज्य हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को शपथ दिलाता है।

ii) राज्यपाल जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, पदोन्नति तथा स्थानांतरण कर सकता है।

iii) (अनुच्छेद 161) राज्यपाल, राज्य कानून के उल्लंघन पर दंड/सजा प्राप्त अपराधी के दंड को क्षमा कर सकता है, कम कर सकता है अथवा कुछ समय के लिए स्थगित (रोक) कर सकता है।

वित्तीय शक्तियाँ - इस प्रकार हैं-

i) राज्यपाल का राज्य की आकस्मिक निधि (Contigency fund) पर नियंत्रण होता है। वह आवश्यकता पड़ने पर इसमें से खर्च कर सकता है। परंतु बाद में राज्य विधानमंडल से इस खर्च की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है।

ii) कोई भी धन विधेयक राज्य विधानसभा में राज्यपाल की स्वीकृति के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

iii) (अनुच्छेद 202) राज्यपाल वित्त मंत्री से विधान सभा में वार्षिक बजट प्रस्तुत करवाता है।

iv) कोई भी अनुदान मांग (Demands for Grant) राज्यपाल की अनुमति के बिना प्रस्तुत नहीं की जा सकती है।

स्व-विवेकी शक्तियाँ - संविधान के अनुच्छेद 163(1) के तहत राज्यपाल को कुछ स्व-विवेकी शक्तियाँ दी गई हैं, इस संबंध में वह स्वयं ही तय करता है कि किसी कार्य

को अपने विवेक (समझ) से करे और किसको नहीं।
इस विषय में उसका फैसला अंतिम होता है, क्योंकि इसको किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

- राज्यपाल की स्व-विवेकी शक्तियाँ इस प्रकार हैं -

i) जब विधान सभा के चुनावों में किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता तो राज्यपाल अपने विवेक से विधान सभा के किसी भी सदस्य को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित कर सकता है।

ii) राज्यपाल विधानमंडल से पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

iii) केंद्र सरकार समय-समय पर राज्यों को निर्देश भेजती रहती है। इन निर्देशों का पालन न करने पर राज्यपाल राज्य सरकार के विरुद्ध केंद्र सरकार को रिपोर्ट भेज सकता है।

iv) राज्यपाल संवैधानिक मशीनरी की असफलता पर राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजता है। राष्ट्रपति इस रिपोर्ट के आधार पर राष्ट्रपति शासन की घोषणा कर सकता है।

v) यदि की किसी मुख्यमंत्री के पास विधानसभा में बहुमत न हो और वह सरकार गिरने के भय से विधानमंडल का अधिवेशन नहीं बुला रहा हो, तो ऐसे में राज्यपाल उस मुख्यमंत्री को पदच्युत (पद से हटाना) कर सकता है।

vi) असम व सिक्किम के राज्यपाल को कई अन्य प्रकार की स्व-विवेकी शक्तियाँ प्राप्त है।

निष्कर्ष -> राज्यपाल को राज्यों में संवैधानिक अध्यक्ष होने के नाते कुछ शक्तियाँ प्रदान की गई है। राज्य की कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति

में निहित हैं। परंतु इन शक्तियों का प्रयोग वह मंत्रिपरिषद की सलाह पर करता है।

राज्यपाल की स्थिति (Position of Governor)

एक ओर राज्यपाल राज्य का संवैधानिक मुखिया है, तो दूसरी ओर राज्य की कार्यपालिका शक्तियाँ उसमें निहित हैं। उसकी वास्तविक स्थिति को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

→

1. राज्यपाल संवैधानिक मुखिया के रूप में -
भारत में संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है। इसके तहत राज्यपाल को राज्य का संवैधानिक मुखिया बनाया गया है तथा उसे नाममात्र की शक्तियाँ सौंपी गई हैं। अनुच्छेद 163 के अनुसार, "राज्यपाल को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मुख्य मंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्रि-परिषद होगी।" अतः राज्यपाल केवल नाममात्र का संवैधानिक अध्यक्ष है। वह मुख्यमंत्री के परामर्श पर ही सारे निर्णय लेता है।

2. संवैधानिक अध्यक्ष से अधिक के रूप में
राज्यपाल के पास कुछ स्व-विवेकी शक्तियाँ भी होती हैं तथा इनके विषय में उसका निर्णय अंतिम होता है। जब वह अपनी इन शक्तियों का प्रयोग करता है, तो वह संवैधानिक अध्यक्ष से अधिक होकर कार्य करता है। राज्यपाल की स्व-विवेकी शक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं—

i) यदि विधानसभा चुनावों में किसी भी दल (पार्टी) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो, या कई बार मुख्यमंत्री पद पर कई दावेदार अपने सामने आते हैं, तब राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संबंध में अपने स्व-विवेक से

निर्णय करता है।
अनेक बार राज्यपालों ने अपने स्व-विवेक से मुख्यमंत्री नियुक्त किए हैं। उदाहरण के तौर पर 1990 में जम्मू-कश्मीर के मुख्य मंत्री शेख अब्दुल्ला के त्याग-पत्र के बाद कांग्रेस पार्टी के विधायक दल के नेता को सरकार बनाने का अवसर नहीं दिया था, जबकि कांग्रेस पार्टी को जम्मू-कश्मीर विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त था।

ii) राज्यपाल राष्ट्रपति से राज्य सरकार को भंग करके राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश कर सकता है। राज्यपाल द्वारा निम्न परिस्थितियों में सरकार को बर्खास्त किया जा सकता है—

(a) राज्य विधानसभा में बहुमत समाप्त होने पर, राज्यपाल मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कह सकता है। ऐसे में यदि मुख्यमंत्री विधानसभा का अधिवेशन बुलाने के लिए तैयार न हो और न ही अपना त्याग-पत्र दे, तो राज्यपाल मुख्यमंत्री को पदच्युत कर सकता है।

- यदि विधानसभा में 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित हो जाने के बाद मुख्यमंत्री इस्तीफा न दे, तो राज्यपाल उसे हटा सकता है।
- यदि किसी स्वतंत्र ट्रिब्यूनल द्वारा मुख्य मंत्री को भ्रष्टाचार के आरोप में दोषी ठहराया गया हो, तो राज्यपाल राज्य सरकार को भंग कर सकता है।
- यदि सरकार संविधान के अनुसार कार्य न कर रही हो, या उसकी नीतियों से देश की एकता एवं अखंडता को खतरा उत्पन्न हो गया हो, तो क्या या केंद्र व राज्य के बीच बार-बार संघर्ष

की स्थिति पैदा की जा रही हो, तो ऐसे में राज्यपाल सरकार को बर्खास्त कर सकता है। जनवरी 1976 में तमिलनाडु सरकार को इसी आधार पर बर्खास्त किया गया था।

ii) यदि सरकार को समर्थन दे रहे दल सरकार से अपना समर्थन वापस ले लेते हैं, तो ऐसे में राज्यपाल सरकार को हटा सकता है।

iii) सामान्यतया राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से विधानमंडल का अधिवेशन बुलाता है, लेकिन असाधारण परिस्थितियों में राज्यपाल अपने स्व-विवेक से बिना मुख्यमंत्री के परामर्श के भी राज्य विधानमंडल का अधिवेशन बुला सकता है।

iv) संसदीय लोकतंत्र में संविधान अनुसार राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श पर विधानसभा को भंग कर देता है, किंतु विशेष परिस्थितियों में राज्यपाल मुख्यमंत्री की विधानसभा भंग करने की सिफारिश को मानने से इंकार भी कर सकता है अथवा मुख्यमंत्री की सिफारिश के बिना भी विधानसभा भंग कर सकता है। 1995 में आंध्र प्रदेश के राज्यपाल कृष्ण कांत ने विधान सभा भंग करने की मुख्य मंत्री एन. टी रामाराव की सलाह नहीं मानी थी।

v) राज्यपाल के द्वारा स्व-विवेक से कुछ अन्य कार्य भी किए जाते हैं—

- वह मुख्यमंत्री से किसी भी विषय में सूचना माँग सकता है।
- वह मुख्य मंत्री को कह सकता है कि वह

ऐसे मामले को, जिस पर अकेले किसी मंत्री ने निर्णय लिया है, मंत्रि-परिषद के सामने विचार हेतु रखे।

- वह विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है या विधेयक (Bill) को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है।

3. राज्यपाल केंद्र सरकार के प्रतिनिधि / एजेन्ट के रूप में - भारतीय संविधान के तहत राज्यपाल केंद्र सरकार का अभिकर्ता (Agent) है। राज्यों एवं केंद्र के बीच संबंध बने रहे तथा राष्ट्रीय एकता कायम रखी जा सके। इसके लिए राज्यपाल का पद एक साधन की तरह काम करता है। राज्यपाल की नियुक्ति केंद्र में राष्ट्रपति द्वारा की जाती है।

केंद्र सरकार के अभिकर्ता के रूप में राज्यपाल निम्नलिखित कार्य करता है —

i) अनुच्छेद 256 व 257 के अंतर्गत केंद्र सरकार राज्य सरकारों को उनकी कार्यपालिका शक्ति के संबंध में आवश्यक निर्देश दे सकती है। केंद्र सरकार राज्यों को राष्ट्रीय मार्गों तथा संचार साधनों की रक्षा का काम सौंप सकती है। राज्यपाल ऐसे निर्देशों को राज्य में लागू करवाते हैं।

ii) अनुच्छेद 258 के अंतर्गत केंद्र सरकार अपने कुछ प्रशासनिक कार्यों को भी राज्य सरकारों को हस्तांतरित कर सकती है। ऐसे में केंद्र सरकार राज्यपाल के माध्यम से निर्देश देती है तथा राज्यपाल का कर्तव्य यह होता है कि वह राज्य सरकार से इन निर्देशों का पालन करवाए।

iii) यदि राज्य सरकार केंद्र सरकार के निर्देशों का पालन नहीं करती है, तो

राज्यपाल उसे चेतावनी दे सकता है।
राज्यपाल ऐसी परिस्थितियों में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य सरकार के विरुद्ध रिपोर्ट भेज सकता है। जिस आधार पर राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता है।

iv) अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल अपने विवेक अनुसार राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी विधेयक को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है।

v) अनुच्छेद 213 के अनुसार, राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार है, किंतु उसे कुछ विशेष विषयों के संबंध में राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी होती है।

निष्कर्ष → संविधान निर्माताओं के द्वारा यह सोचा गया था कि राज्यपाल की भूमिका राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष तथा राज्य में केंद्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में होगी। लेकिन व्यवहार में राज्यपाल बाद वाली भूमिका ही ज्यादा निभाते हैं। अतः आवश्यक है कि राज्यपाल की दोनों भूमिकाओं - केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में तथा राज्य के संवैधानिक मुखिया के रूप में भूमिका में सामंजस्य स्थापित किया जाए। अतः राज्यपाल को केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।

मुख्यमंत्री एवं मंत्रि-परिषद

मुख्यमंत्री

नियुक्ति- संविधान के अनुच्छेद 164 के अनुसार, "मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाएगी।" लेकिन मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल स्वतंत्र नहीं है क्योंकि राज्यपाल को उस पार्टी के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करना पड़ता है जिसे विधानसभा के चुनाव में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो जाता है।

जब विधानसभा के चुनाव में किसी एक पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता तो राज्यपाल अपनी स्व-विवेकी शक्तियों का प्रयोग करके किसी भी दल के नेता अथवा विधायक को मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है। हरियाणा में 2009 के विधानसभा चुनाव में किसी भी दल(या पार्टी) को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि कुल 90 सीटों में से कांग्रेस पार्टी को 40 सीट और इनेलो पार्टी को 32 सीटें प्राप्त हुई थी, ऐसे में उस समय के राज्यपाल ए. आर. किदवई ने कांग्रेस विधायक दल के नेता भूपेंद्र सिंह हुड्डा को मुख्यमंत्री नियुक्त किया था।

आवश्यक शर्त— राज्य विधानमंडल की सदस्यता अनिवार्य- संसदीय शासन प्रणाली के अनुसार राज्यों में मुख्यमंत्री बनने के लिए राज्य विधानमंडल का सदस्य होना आवश्यक है किंतु राज्यपाल ऐसे व्यक्ति को भी मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकते हैं , जो नियुक्ति के समय राज्य विधानमंडल (विधानसभा या विधान परिषद) का सदस्य नहीं हो, लेकिन ऐसे मुख्यमंत्री को 6 महीने की अवधि के अंदर राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण करनी होती है, यदि वह इस अवधि में राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण नहीं कर पाए तो संविधान के अनुच्छेद 164(4) के तहत उसे अपना पद छोड़ना पड़ता है अर्थात मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा देना पड़ता है।

शपथ — राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के समय निर्धारित तिथि को मुख्यमंत्री को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। जिसमें मुख्यमंत्री प्रतिज्ञा करता है कि वह श्रद्धापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन करेगा और अपनी पूरी योग्यता से संविधान एवं विधि का परिक्षण, संरक्षण एवं प्रतिरक्षण करेगा।

वेतन एवं भत्ते — अनुच्छेद 164 के अनुसार मुख्यमंत्री का वेतन एवं भत्ते राज्य विधान मंडल द्वारा तय किए जाते हैं ऐसे में अलग-अलग राज्यों में मुख्यमंत्री को मिलने वाला वेतन एवं भत्ते अलग-अलग होते हैं उदाहरण के लिए सितंबर 2013 को हरियाणा विधानसभा ने एक अधिनियम के द्वारा मुख्यमंत्री का मासिक वेतन 40000 से बढाकर 50,000 ₹ (रुपये) कर दिया था।

कार्यकाल— संविधान के अनुच्छेद 164(1) के अनुसार मंत्री राज्यपाल के प्रसाद-पर्यंत(अर्थात राज्यपाल की इच्छाअपने पद पर बने रहते हैं। व्यवहार में मुख्यमंत्री तब तक अपने पद पर बना रहता है जब तक सरकार को विधानसभा का विश्वास प्राप्त होता है अर्थात मुख्यमंत्री के दल का विधानसभा में बहुमत होता है। अन्य शब्दों में जब विधानसभा सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित कर देती है तो सरकार का पतन हो जाता है (अर्थात मुख्यमंत्री को अपना इस्तीफा देना पड़ता है।) अनुच्छेद 356 के तहत भी राज्यपाल की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा राज्य सरकार को भंग किया जा सकता है।

शक्तियां एवं कार्य

1. मंत्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में - संविधान के अनुच्छेद 163 में राज्य की मंत्रिपरिषद की व्यवस्था की गई है जिसमें मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का अध्यक्ष है मंत्री परिषद के अध्यक्ष के रूप में मुख्यमंत्री निम्नलिखित कार्य करता है

(i) मंत्रियों की नियुक्ति की सिफारिश- संविधान के अनुसार मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल द्वारा मंत्रियों की नियुक्ति की जाती है किंतु राज्यपाल द्वारा मंत्रियों की नियुक्ति करना मात्र एक औपचारिकता है क्योंकि राज्यपाल अपनी मर्जी से किसी व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त नहीं कर सकता है। मुख्यमंत्री अपने विवेक से मंत्रियों की एक सूची तैयार करके राज्यपाल को सौंप देता है और राज्यपाल उसे सूची के अनुसार व्यक्तियों को मंत्री के रूप में नियुक्त कर देता है।

(ii) मंत्रियों में विभागों का आबंटन— मुख्यमंत्री अपने मंत्रियों में विभागों का आवंटन भी करता है इस कार्य में उसे काफी सोच समझकर कार्य करना पड़ता है क्योंकि पार्टी के मुख्य नेताओं से परामर्श करने के बाद वह मंत्रियों को विभागों का आवंटन करता है इसके अलावा गृह, वित्त, कराधान, शहरी निकाय जैसे विभाग सभी मंत्री प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन अंतत: इस विषय में उसका निर्णय अंतिम होता है। इसके अलावा मुख्यमंत्री ,मंत्रियों को कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री, राज्य मंत्री स्वतंत्र प्रभार और उप-मंत्री आदि का दर्जा (Rank) देता है।

(iii) मंत्रि-परिषद का पुनर्गठन या मंत्रि-परिषद में फेरबदल- मुख्यमंत्री कभी भी मंत्री परिषद का पुनर्गठन कर सकता है अर्थात् वह कभी भी नए व्यक्तियों को मंत्रि-परिषद में शामिल कर सकता है और वर्तमान मंत्रियों को पद से हटा भी सकता है।

(iv) मंत्रियों को हटाना कोई भी मंत्री तब तक ही अपने पथ पर बना रहता है जब तक मुख्यमंत्री की इच्छा हो अन्य शब्दों में मुख्यमंत्री कभी भी किसी मंत्री को पद से हटा सकता है।

(v) मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करना- मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का अध्यक्ष होता है इसमें आते वह मंत्रिमंडल मंत्री परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है वह मंत्रिमंडल की फैसला मुख्यमंत्री के ही फैसले होते हैं यह मंत्रिमंडल की बैठकों की तिथि एवं कार्य सूची भी तय करताहै

(vi) मंत्री परिषद का निलंबन या विघटन मुख्यमंत्री कभी भी अपने पद से त्यागपत्र (इस्तीफा) देकर मंत्री परिषद को निलंबित या भंग कर सकता है क्योंकि सैद्धांतिक रूप से मुख्यमंत्री का त्यागपत्र संपूर्ण मंत्री-परिषद का त्यागपत्र माना जाता है।

2. विधानमंडल का नेता मुख्यमंत्री मंत्री परिषद का ही नेता नहीं होता बल्कि राज्य विधानमंडल का भी नेता होता है मुख्यमंत्री विधानसभा में बहुमत प्राप्त दल का नेता होता है इसलिए विधान सभा का भी नेता कहलाता है इस दृष्टि से निम्नलिखित कार्य करता है
(i) उसकी सलाह से ही राज्य विधानमंडल के अधिवेशन बुलाए जाते हैं। वह चाहे तो विधानमंडल का विशेष अधिवेशन भी बुला सकता है ।
(ii) वह राज्यविधान मंडल की कार्य सूची तय करता है ताकि विधानमंडल के सदनों की कार्रवाई चलाई जा सके
(iii) वह राज्य विधानमंडल में विधेयकों को प्रस्तुत करवाता है तथा विधेयकों को पारित करवाने में उसकी मुख्य भूमिका होती है।
(iv) वह विधानमंडल में सरकार की ओर से नीतियों एवं कार्यक्रमों की घोषणा करता है तो आवश्यकता पड़ने पर उनके विषय में स्पष्टीकरण भी देता है।
(v) वह राज्यपाल से विधानसभा भंग करने के सिफारिश भी कर सकता है हालांकि राज्यपाल को अधिकार होता है कि वह मुख्यमंत्री की इस प्रकार की सिफारिश को माने अथवा न माने।

3. उच्च अधिकारियों की नियुक्तियां— राज्यपाल मुख्यमंत्री के परामर्श से ही राज्य में उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करता है। इन अधिकारियों में राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य महिला आयोग की अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य सूचना आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्य , राज्य निर्वाचन आयोग के अध्यक्ष, राज्य का महाधिवक्ता, राज्य के विश्वविद्यालय के कुलपति आदि शामिल है।

4. राज्यपाल के मुख्य सलाहकार के रूप में — मुख्यमंत्री राज्यपाल का मुख्य सलाहकार होता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 163 में लिखा है कि राज्यपाल को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता एवं परामर्श लेने के लिए एक मंत्री परिषद होगी जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होगा। मुख्यमंत्री राज्यपाल के सलाहकार के रूप में कार्य करता है, हालांकि संवैधानिक दृष्टि से मुख्यमंत्री की सलाह मानना या नहीं मानना राज्यपाल की इच्छा पर निर्भर करता है किंतु सामान्यतया राज्यपाल उसकी सलाह मान लेता है।

5. राज्यपाल एवं मंत्री परिषद के बीच कड़ी— संविधान के अनुसार राज्यपाल एवं मंत्रियों के बीच कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है ऐसे में मुख्यमंत्री राज्यपाल एवं मंत्री परिषद को जोड़ने का काम करता है। मुख्यमंत्री मंत्री -परिषद द्वारा लिए गए फैसलों से राज्यपाल को अवगत कराता है तथा राज्यपाल के विचार मंत्री परिषद के सामने रखता है। जब राज्यपाल को किसी विभाग के बारे में कोई सूचना प्राप्त करनी होती है, तो राज्यपाल वह सूचना मुख्यमंत्री से प्राप्त करता है।

6. विभागों में विभागों में तालमेल— शासन की कुशलता के लिए विभागों में आपसी ताल में होना आवश्यक है इसलिए

मुख्यमंत्री विभिन्न प्रशासनिक विभागों में ताल में स्थापित करने का कार्य करता है जब कभी दो विभागों के बीच में किसी मुद्दे पर विवाद उत्पन्न होता है , तो मुख्यमंत्री अपने प्रभाव का प्रयोग करके उसको हल करता है।

7. अपने दल का नेता - मुख्यमंत्री केवल मंत्री-परिषद का नेता नहीं होता बल्कि अपने दल का प्रमुख नेता भी होता है। मुख्यमंत्री की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसका अपने डाल पर किस सीमा तक प्रभाव है जो मुख्यमंत्री की पकड़ दल के संगठन पर ढीली हो जाती है तो मुख्यमंत्री का प्रभाव कम होने लगता है और कभी-कभी ऐसी स्थिति में उसे अपना पद भी छोड़ना पड़ जाता है जैसे की 20 फरवरी 2015 को बिहार के मुख्यमंत्री जीतन राम मांझी को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा था। मुख्यमंत्री आम चुनावों में अपने दल के उम्मीदवार के पक्ष में चुनाव प्रचार भी करता है।

मुख्य मन्त्री की स्थिति (Position of Chief Minister)

यद्यपि संविधान के अन्तर्गत मुख्य मंत्री की स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं है, जितनी कि प्रधान मंत्री की, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 168 के अनुसार उसे राज्यपाल को समस्त विषयों में नहीं, बल्कि उन्हीं विषयों में परामर्श देने का अधिकार है, जिनमें राज्यपाल स्व-विवेक से निर्णय नहीं लेता है। साथ ही, यह भी तय करने का अधिकार राज्यपाल को ही है कि वह किस विषय में स्व-विवेक से निर्णय लेगा और किस में नहीं। फिर भी, राज्य में मुख्य मंत्री की स्थिति काफी सुइद है, क्योंकि संसदीय प्रणाली की दृष्टि से वह राज्य की वास्तविक कार्यपालिका है। यह मंत्रि-परिषद का निर्माण करता है , मंत्रियों के बीच विभागों का वितरण करता है और कभी भी किसी मंत्री से त्याग पत्र माँग सकता है। यहां तक कि अपना त्याग पत्र देकर या राज्यपाल को सिफारिश करके मंत्रि-परिषद को भंग करा सकता है। इतना ही नहीं, वह राज्यपाल को सिफारिश करके, विधान सभा को उसका कार्यकाल पूरा होने से पहले भंग करा सकता है। वस्तुतः मुख्य मंत्री की स्थिति निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है-

1. विधान सभा में मुख्य मंत्री की स्थिति (Position of Chief Minister in Legislative Assembly)- मुख्य मंत्री की स्थिति इस बात पर बहुत अधिक निर्भर करती है कि विधान सभा में उसके दल के पास कितनी सीटें हैं। यदि विधान सभा में उसके दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त है, तो उसकी स्थिति मजबूत होगी। 2004-2009 के दौरान हरियाणा के मुख्य मंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के दल को विधान सभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त था, अतः उनकी स्थिति बहुत मजबूत यौ। इसके विपरीत, यदि विधान सभा में मुख्य मंत्री के दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो और मुख्य मंत्री अन्य दलों के सहयोग पर निर्भर हो अर्थात राज्य में मिली-जुली सरकार (Coalition Government) हो, तो मुख्य मंत्री की स्थिति कमजोर होगी, वर्तमान (जून 2024) में बिहार के मुख्य मन्त्री नीतिश कुमार की सुदृढ़ स्थिति न होने का मुख्य कारण यही है।

2. दलीय नेतृत्व का समर्थन (Support of Party Leadership) - यदि मुख्य मंत्री को अपने दल के शीर्षस्थ नेतृत्व का समर्थन प्राप्त होगा. तो उसकी स्थिति सुदृढ़ होगी विशेष रूप से तब, जब मुख्य मंत्री का संबंध किसी राष्ट्रीय दल से हो। दलीय नेतृत्व का समर्थन गंवा देने पर मुख्य मंत्री को त्याग-पत्र देना या फिर पद छोड़ना पड़ सकता है; जैसे - 20 फरवरी, 2015 को बिहार के मुख्य मंत्री जीतनराम मांझी को, 9 मार्च, 2021 को उत्तराखण्ड के मुख्य मन्त्री त्रिवेन्द्र सिंह रावत को, 26 जुलाई, 2021 को कर्नाटक के मुख्य मन्त्री बाई. एस. यदुरप्पा को, 11 सितम्बर, 2021 को गुजरात के मुख्य मन्त्री विजय रूपाणी को, 18 सितम्बर, 2021 को पंजाब के मुख्य मन्त्री कैप्टन अमरिन्दर सिंह को और 12 मार्च, 2024 को हरियाणा के मुख्य मन्त्री मनोहर लाल खट्टर दल के नेतृत्व का समर्थन प्राप्त न होने पर त्याग-पत्र देना पड़ा था।

3. राज्यपाल से संबंध (Relations with the Governor)- मुख्य मंत्री को स्थिति बहुत सीमा तक इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसके राज्यपाल से कैसे संबंध है। यदि राज्यपाल प्रभावी व्यक्तित्व वाला और संविधान का जानकार होगा, तो मुख्य मंत्री की स्थिति सुदृढ़ नहीं होगी। इसी प्रकार यदि राज्यपाल केन्द्र में सत्तारूढ़ दल का सदस्य रह चुका हो और मुख्य मंत्री विपक्षी दल का हो, तो राज्यपाल मुख्य मंत्री को परेशान कर सकता है। यहां तक कि राज्यपाल केन्द्र को राज्य में संवैधानिक तंत्र के विफल होने की रिपोर्ट भेजकर सरकार को कभी भी भंग करा सकता है। इसके विपरीत, यदि राज्यपाल का संबंध उस दल से रहा हो, जिसकी राज्य में सरकार है, तो मुख्य मंत्री की स्थिति सुदृढ़ होगी।

4. केन्द्र सरकार से सम्बन्ध (Relations with Central Government)- यदि मुख्य मंत्री के केन्द्र सरकार (व्यवहार में प्रधान मंत्री) से मधुर संबंध हों और ऐसा तब ही हो सकता है, जब केन्द्र में भी उसी दल की सरकार हो, जिस दल की सरकार

राज्य में कार्य कर रही है, तो मुख्य मंत्री की स्थिति बहुत सुदृढ़ होगी, क्योंकि उसे राज्य के विकास के लिए केन्द्र से पर्याप्त अनुदान मिलता रहेगा और राज्य में उसका जनाधार मजबूत हो जाएगा। केन्द्र से संबंध अच्छे न होने का प्रभाव मुख्य मंत्री पर अवश्य ही पड़ता है। पश्चिम बंगाल की मुख्य मंत्री ममता बनर्जी के केन्द्र से कटुतापूर्ण सम्बन्धों ने, मुख्य मंत्री के रूप में उनको बहुत प्रभावित किया।

मन्त्रि-परिषद (Council of Ministers)

भारत में केन्द्र (संघ) की तरह, राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली लागू की गयी है, जिसके तहत दोहरी कार्यपालिका नाममात्र की कार्यपालिका एवं वास्तविक कार्यपालिका की व्यवस्था की गयी है। राज्यों में राज्यपाल नाममात्र को कार्यपालिका और मंत्रि-परिषद वास्तविक कार्यपालिका कहलाती है। **संविधान के अनुच्छेद 163 में** राज्य की मंत्रि-परिषद के कार्यों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है, "जिन बातों में संविधान के द्वारा या अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्य अपने विवेक अनुसार करे, उनको छोड़कर राज्यपाल के कार्यों में सहायता एवं परामर्श देने के लिए मुख्य मंत्री की अध्यक्षता वाली एक मंत्रि-परिषद होगी।"

1. मन्त्रि-परिषद का गठन (Formation of Council of Minister)- मंत्रि-परिषद के गठन के लिए सबसे पहले राज्यपाल द्वारा मुख्य मंत्री की नियुक्ति की जाती है। इसके बाद मुख्य मंत्री के परामर्श से राज्यपाल अन्य मन्त्रियों की नियुक्ति करता है। इसके लिए मुख्य मंत्री मंत्रि-परिषद में शामिल किए जाने वाले व्यक्तियों के नामों की एक सूची तैयार करके राज्यपाल को सौंप देता है और राज्यपाल उसमें शामिल व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त कर देता है।

2. विभागों का आवंटन (Allocation of Portfolios)- सविधान के अनुसार मंत्रियों में विभागों के आवंटन का कार्य राज्यपाल को सौंपा गया है, किन्तु व्यवहार में यह कार्य मुख्य मंत्री द्वारा ही किया जाता है। विभागों का आबंटन करते समय मुख्य मंत्री को बड़ी सूझबूझ से काम करना होता है, क्योंकि ऐसा करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना होता है कि कौन-सा मंत्री किस विभाग को कुशलतापूर्वक संभाल सकता है, साथ पार्टी/गठबंधन के नेताओं का दबाव को भी सहन करना होता है।

3. राज्य विधानमंडल की अनिवार्य सदस्यता (Compulsory Membership of State Legislature)- मुख्य मंत्री सहित सभी मंत्रियों के लिए राज्य विधानमंडल का सदस्य होना अनिवार्य है, किंतु किसी ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, जो नियुक्ति के समय राज्य विधानमंडल (विधान सभा या विधान परिषद) का सदस्य न हो, लेकिन ऐसे व्यक्ति को 6 महीने की अवधि के अंदर राज्य विधानमंडल की सदस्यत ग्रहण करनी होती है। यदि वह मंत्री इस अवधि में राज्य विधानमंडल की सदस्यता ग्रहण नहीं कर पाता है, तो उसे अनुच्छेद 164(4) के तहत अपना पद छोड़ना पड़ता है।

4. वेतन एवं भत्ते (Salary and Allowances)- अनुच्छेद 164 के अनुसार मत्रियों को मिलने वाले वेतन एव भत्ते राज्य विधानमंडल द्वारा तय किए जाते हैं। इस नाते अलग-अलग राज्यों में मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते अलग-अलग हो सकते हैं। सितम्बर, 2013 को हरियाणा विधान सभा द्वारा एक विधेयक पारित करके मंत्रियों का मासिक वेतन ₹40,000 से बढ़ाकर ₹ 50,000 कर दिया गया। वेतन के अलावा, मंत्रियों को आवास, टेलीफोन आदि की सुविधाएं भी दी जाती है।

5. मंत्रियों की श्रेणियां (Ranks of Ministers)- मंत्रि-परिषद में निम्नलिखित तीन प्रकार के मंत्री शामिल होते हैं—

(i) केबिनेट मंत्री (Cabinet Ministers)- केबिनेट मंत्री सर्वोच्च स्तर के मंत्री होते हैं, जो किसी-न-किसी विभाग के प्रभारी होते हैं। प्रायः एक केबिनेट मंत्री को अनेक विभाग सौंपे जाते हैं। कैबिनेट मन्त्रियों की संख्या निर्धारित तो नहीं होती है, किन्तु इनकी संख्या प्रायः कम ही रखी जाती है। इनका कार्य नीति-निर्माण करना होता है।

(ii) राज्य मंत्री (Ministers of State)- राज्य मंत्री केबिनेट मंत्रियों से नीचे स्तर वाले मंत्री होते हैं। ये केबिनेट मंत्रियों की

उनके कार्य में सहायता करते हैं। इनको स्वतंत्र रूप से किसी कम महत्वपूर्ण विभाग का प्रभारी बनाया जा सकता है, किन्तु ये मंत्रिमंडल (Cabinet) की बैठकों में भाग नहीं लेते हैं।

(iii) उप-मंत्री (Deputy Ministers)-उप-मंत्री सबसे नीचे स्तर वाले मंत्री होते हैं। ये केबिनेट मंत्रियों एवं राज्य मंत्रियों की सहायता के लिए नियुक्त किए जाते हैं। ये किसी विभाग के प्रभारी नहीं होते हैं और न ही ये मंत्रिमंडल (Cabinet) की बैठकों में भाग लेते हैं। ये प्रायः केबिनेट मंत्रियों एवं राज्य मंत्रियों द्वारा सौंपे गए कार्य करते हैं।

(iv) संसदीय सचिव (Parliamentary Secretaries)- तकनीकी दृष्टि से संसदीय सचिव मंत्री नहीं माने जाते हैं, क्योंकि इनकी नियुक्ति मुख्य मंत्री द्वारा की जाती हैं और वहीं इनको पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाता है। इनका मुख्य कार्य विभागीय मंत्रियों की विधानमंडल में सहायता करना होता है। हरियाणा के मुख्य मंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा ने नवम्बर, 2009 में छः और जनवरी, 2011 में तीन विधायकों को संसदीय सचिव नियुक्त किया था।

6. उप-मुख्य मंत्री (Deputy Chief Minister)- यद्यपि संविधान द्वारा राज्यों में उप-मुख्य मंत्री की व्यवस्था नहीं की गयी है। फिर भी, राज्यपाल द्वारा मुख्य मंत्री की सिफारिश पर राज्य में उप-मुख्य मंत्रों की नियुक्ति की जा सकती है। हरियाणा में कांग्रेस सरकार के कार्यकाल (2004-2009) में चन्द्रमोहन को उप-मुख्य मंत्री बनाया गया था। इसी प्रकार अक्टूबर, 2019 में हरियाणा के मुख्य मन्त्री ने जननायक जनता पार्टी के नेता दुष्यन्त चौटाला को उप-मुख्य मन्त्री बनाया। गठबंधन सरकारों के इस दौर में उप-मुख्य मंत्री एक अनिवार्यता-सी बन चुकी है।

7. मन्त्रि-परिषद का आकार (Size of Council of Ministers)- 91वें संशोधन अधिनियम (2003) द्वारा मंत्रि-परिषद का आकार तय कर दिया गया। इस संशोधन के अनुसार राज्य में मुख्य मंत्री सहित मंत्रियों की संख्या विधान सभा की सदस्य-संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है, लेकिन जिन राज्यों की विधान सभा की सदस्य संख्या कम है, वहां मंत्रियों की संख्या 12 तक हो सकती है। किन्तु दिल्ली विधान सभा की सदस्य-संख्या 70 होने के बावजूद भी, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली अधिनियम (1993) के अनुसार दिल्ली में मुख्य मंत्री सहित मंत्रियों की संख्या सात निर्धारित की गयी है।

शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions)

राज्यों में मंत्रि-परिषद (और व्यवहार में मंत्रिमंडल) की शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित है-

1. नीतियों का निर्माण (Formulation of Policies)— मंत्रि-परिषद का मुख्य कार्य शासन-संबंधी नीतियों का निर्माण करना है। अन्य शब्दों में, मंत्रि-परिषद यह तय करती है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों; जैसे कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग, खेलकूद के विषय में सरकार की क्या नीतियाँ होंगी। विधान सभा के चुनावों के अवसर पर प्रायः सभी राजनीतिक दल अपने घोषणा-पत्र जारी करते हैं। चुनाव जीतने के बाद सत्तारूढ़ दल इन्हीं नौतियों के माध्यम से चुनावी घोषणा पत्र में वर्णित अपने वादों को पूरा करने का प्रयास करता है।

2. प्रशासन पर नियंत्रण (Control over Administration)- शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रशासन को अनेक विभागों में बांटा जाता है और प्रत्येक विभाग किसी मंत्री को सौंप दिया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रशासनिक विभाग किसी-न-किसी मंत्री के नियंत्रण में कार्य करता है, जो मंत्रि-परिषद द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार अपने विभाग का संचालन करता है।

3. कानूनों का क्रियान्वयन (Implementation of Laws)- राज्य विधानमंडल द्वारा जिन कानूनों का निर्माण किया जाता है, उनको क्रियान्वित करना मंत्रि-परिषर का दायित्व होता है। यदि मंत्रि-परिषद द्वारा इन कानूनों को सही ढंग से क्रियान्वित नहीं किया जाएगा, तो शासकीय नीति विफल हो जाएगी और राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना कठिन हो जाएगा।

4. विभिन्न विभागों में तालमेल (Co-ordination among Various Departments)- कुशल शासन-संचालन के लिए, विभिन्न प्रशासनिक विभागों में तालमेल होना आवश्यक है और विभिन्न प्रशासनिक विभागों में तालमेल स्थापित करने का यह

कार्य मंत्रि-परिषद द्वारा किया जाता है। विभिन्न प्रशासनिक विभागों के मध्य उत्पन्न विवाद मंत्रि-परिषद की बैठकों में प्रस्तुत किए जाते हैं, जहां बातचीत द्वारा इनको सुलझा लिया जाता है।

5. नियुक्तियाँ (Appointments)— राज्यपाल द्वारा राज्य में जो भी नियुक्तियाँ की जाती हैं, ये मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही की जाती हैं। वस्तुतः उच्च पदों पर नियुक्ति-संबंधी निर्णय मंत्रि-परिषद द्वारा ही लिए जाते हैं. क्योंकि राज्यपाल इसके निर्णयों के अनुसार ही नियुक्तियाँ करता है। इन पदों में मुख्य है-राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य महिला आयोग की अध्यक्षा एवं सदस्य, राज्य सूचना आयोग का अध्यक्ष एवं सदस्य, राज्य के महाधिवक्ता एवं विश्वविद्यालयों के कुलपति आदि।

6. कानूनों का निर्माण (Enactment of Laws) - यद्यपि कानून निर्माण का कार्य राज्य विधानमंडल का होता है लेकिन व्यवहार में यह कार्य भी मंत्रि-परिषद द्वारा ही किया जाता है। वस्तुतः सरकारी विधेयक सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा तैयार किए जाते हैं और राज्य विधानमंडल में प्रस्तुत किए जाते हैं। दलीय समर्थन के कारण मंत्रि-परिषद इन्हें विधानमंडल से आसानी से पारित करा लेती है।

7. वित्तीय कार्य (Financial Functions)- मंत्रि-परिषद का राज्य की वित्त व्यवस्था पर पूरा नियंत्रण होता है। यह राज्य की वित्तीय नीति तय करती है। वित्त मंत्री द्वारा सभी धन विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किए जाते हैं। मंत्रि-परिषद द्वारा स्वीकृत वार्षिक बजट वित्त मंत्री द्वारा विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है, जो दलीय समर्थन के कारण आसानी से पारित हो जाता है।

8. न्यायिक कार्य (Judicial Functions)- मंत्रि-परिषद न्यायिक कार्य भी करती है, क्योंकि राज्यपाल अपनी न्यायिक शक्तियों का प्रयोग मंत्रि-परिषद के परामर्श से ही करता है। उदाहरण के लिए जब राज्यपाल मृत्यु दण्ड को छोड़कर किसी अन्य अपराध के लिए सजा प्राप्त व्यक्ति को क्षमा करता है, तो वह यह कार्य मत्रि-परिषद के परामर्श से ही करता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (Important Questions)

1. राज्य के मुख्य मंत्री की नियुक्ति कैसे होती है? मुख्य मंत्री की शक्तियाँ एवं स्थिति का वर्णन कीजिए।
(How the Chief Minister of state is appointed? Discuss the powers and position of Chief Minister)

2. राज्य के मुख्य मंत्री की शक्तियों और स्थिति की व्याख्या कीजिए।(Explain the powers and position of the Chief Minister of State.)

3. किसी राज्य के मुख्य मंत्री की नियुक्ति, एवं उसकी शक्ति का वर्णन करें। (Discuss the appointment and powers of the Chief Minister of a state.)

4. राज्य में मंत्रि-परिषद का निर्माण कैसे होता है? उसकी शक्तियों, कार्यों एवं स्थिति का वर्णन कीजिए। (How is the Council of Ministers in a state formed? Discuss its powers, functions and position.)

राज्य विधानमण्डल [State Legislature]

भारतीय संविधान के द्वारा प्रत्येक राज्य के लिए एक विधानमंडल की व्यवस्था की गयी है, जिसमें राज्यपाल, विधान परिषद (Legislative Council) एवं विधान सभा (Legislative Assembly) शामिल होते हैं। वर्तमान में भारत में अधिकांश राज्यों में एक-सदनीय विधानमंडल हैं। इस समय 28 राज्यों में से केवल छः राज्यों— आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र एवं तेलंगाना में द्वि-सदनीय विधानमंडल हैं अर्थात केवल इन छः राज्यों में ही विधान परिषद एवं विधान सभा मौजूद हैं। बाकी राज्यों में अकेली विधान सभाएँ हैं। यहाँ राज्य विधानमंडल के दोनों सदनों- विधान सभा एवं विधान परिषद का विवरण प्रस्तुत है-

विधान सभा (Legislative Assembly)

गठन (Composition)- विधान सभा को जनता का सदन कहा जाता है। इस सदन के सदस्यों की संख्या राज्य की जनसंख्या पर निर्भर करती है। संविधान के अनुसार किसी राज्य की विधान सभा की अधिकतम संख्या 500 एवं न्यूनतम संख्या 60 हो सकती है। फिर भी, सिक्किम विधान सभा की सदस्य संख्या 32, मिजोरम विधान सभा की सदस्य-संख्या 30 और गोवा विधान सभा की सदस्य संख्या 40 है, जब कि उत्तर प्रदेश विधान सभा को सदस्य संख्या 403 है। उल्लेखनीय है कि सभी विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या में 2026 तक कोई वृद्धि नहीं की जाएगी। वर्तमान में हरियाणा विधान सभा की सदस्य संख्या 90 है।

योग्यताएँ (Qualification)- विधान सभा का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योगयताएँ होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. वह कम-से-कम 25 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।

3. वह केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के अधीन लाभ के किसी पद पर आसीन न हो।

4. वह न्यायालय द्वारा पागल या दिवालिया घोषित न किया गया हो।

5. वह संसद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताएँ रखता हो।

कार्यकाल (Tenure)- विधान सभा का कार्यकाल पाँच वर्ष होता है, किन्तु, मुख्य मन्त्री की सिफारिश पर राज्यपाल द्वारा इसे पाँच वर्ष पूरा होने से पहले भी भंग किया जा सकता है।

चुनाव (Election)- विधान सभा के सदस्यों का चुनाव सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर राज्य के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इसके लिए सम्पूर्ण राज्य को अनेक निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जात है और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से स्थानीय मतदाताओं द्वारा एक व्यक्ति (उम्मीदवार) का चुनाव किया जाता है। अनुच्छे 333 के अनुसार यदि राज्यपाल को ऐसा लगे कि एंग्लो-इण्डियन समुदाय को विधान सभा में समुचित प्रतिनिधित्व नहाँ मिला है , तो वह इस समुदाय के एक व्यक्ति को विधान सभा में मनोनीत कर सकता था, किन्तु दिसम्बर, 2019 में यह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी है।

अधिवेशन (Session)- विधान सभा का अधिवेशन राज्यपाल द्वारा बुलाया जाता है। संविधान के अनुसार विधान सभा के दो अधिवेशनों के मध्य छः महीने से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए । जरूरत पड़ने पर राज्यपाल विधान सभा का विशेष अधिवेशन भी बुला सकता है।

गणपूर्ति (Quorum)- विधान सभा की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी कुल सदस्य-संख्या का 1/10वां भाग सदन में मौजूद हो।

अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष (Speaker and Deputy Speaker)- विधान सभा की कार्यवाही के संचालन के लिए विधान सभा के सदस्य अपने में से एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष चुनते हैं। यह कार्य नयी विधान सभा की पहली बैठक में किया जाता है। विधान सभा के अध्यक्ष का यह कार्य होता है कि वह इस सदन की कार्यवाही का सुचारू रूप से संचालन करें । अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कार्य उपाध्यक्ष द्वारा किए जाते हैं।

विधान परिषद (Legislative Council)

गठन (Composition)- राज्य विधानमंडल के ऊपरी सदन को 'विधान परिषद्' (Legislative Council) कहा कता है। यह सदन राज्यों में अल्पसंख्यकों एवं विशेष हितों के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में इस समय केवल 6 राज्यों (उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, महाराष्ट्र, एवं तेलंगाना) में ही विधान परिषद् कार्यरत् हैं। संविधान के अनुच्छेद 169 के अनुसार कोई भी राज्य, विधान सभा के विशेष बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद् को स्थापित करने अथवा मौजूदा विधान सभा को समाप्त करने की मांग कर सकता है। इस प्रस्ताव के आधार पर संसद साधारण बहुमत से संशोधन विधेयक पारित कर सकती है। विधान परिषद् का गठन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष निर्वाचन के आधार पर किया जाता है। इसके सदस्यों की संख्या विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के 1/3 भाग से अधिक और 40 से कम नहीं हो सकती है। विधान परिषद् के सदस्य निम्नलिखित प्रकार में चुने जाते हैं-

1. इसके 1/3 सदस्य राज्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

2. इसके 1/3 सदस्य राज्य की स्थानीय शासन संस्थाओं(पंचायत एवं नगरपालिका) के सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं।

3. इसके 1/12 सदस्य उन अध्यापकों के द्वारा चुने जाते हैं, जो राज्य के सीनियर सेकेण्डरी स्कूलों या उच्च शिक्षण संस्थाओं अर्थात् कालेजों में कम-से-कम तीन वर्षों से पढ़ा रहे हों।

4. इसके 1/12 सदस्य राज्य के उन निवासियों द्वारा चुने जाते हैं, जो भारत के किसी विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि-धारक हों और कम-से-कम तीन वर्ष पहले स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हों।

5. इसके शेष 1/6 सदस्य राज्यपाल उन व्यक्तियों में से मनोनीत करता है, जो साहित्य, कला, विज्ञान एवं समाज-सेवा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त किए हों।

योग्यताएँ (Qualifications)- विधान परिषद् का सदस्य बनने के लिए उम्मीदवार के पास निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिए-

1. वह भारत का नागरिक हो।

2. उसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो।

3. वह राज्य का निवासी होना चाहिए और उसका नाम राज्य की मतदाता सूची में अंकित होना चाहिए।

4. वह केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन लाभ के किसी पद पर आसीन नहीं होना चाहिए।

5. वह किसी न्यायालय द्वारा दिवालिया अथवा पागल घोषित नहीं होना चाहिए।

अवधि (Tenure)- विधान परिषद् एक स्थायी सदन होता है, इसलिए यह कभी भी भंग नहीं किया जाता है। विधान परिषद के एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दो वर्ष के बाद अवकाश ग्रहण करते रहते हैं और उनका स्थान नए सदस्य लेते रहते हैं। इसके प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल छः वर्ष का होता है। उसको दोबारा भी चुना जा सकता है।

अधिवेशन (Session) - राज्यपाल मुख्य मंत्री के परामर्श से विधान सभा के साथ-साथ विधान परिषद् का अधिवेशन भी

बुलाता है। एक वर्ष में इसका दो बार अधिवेशन बुलाना आवश्यक है क्योंकि इसके दो अधिवेशनों के बीच छः महीने में अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर राज्यपाल द्वारा इसका विशेष अधिवेशन भी बुलाया जा सकता है।

गणपूर्ति (Quorum) - विधान परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए इसके कुल सदस्यों का 1/10वां भाग उपस्थित होना आवश्यक है। स्पष्ट है कि गणपूर्ति के अभाव में इसकी कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जा सकती है।

सभापति एवं उप-सभापति (Chairman and Deputy Chairman)- विधान परिषद् के सदस्य अपने में से एक सभापति एवं एक उप-सभापति चुनते हैं। सभापति सदन की कार्यवाही को सुचारू रूप से चलाता है। सभापति की अनुपस्थिति में उसके कार्य उप-सभापति द्वारा किए जाते हैं।

राज्य विधानमण्डल के कार्य
(Functions of State Legislature)

राज्य विधानमंडल के कार्यों का वर्णन इस प्रकार निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है-

1. वैधानिक कार्य (Legislative Functions)- राज्य विधानमण्डल का प्रमुख कार्य कानून बनाना है। राज्य विधानमण्डल 'राज्य सूची' में दिए गए 66 विषयों पर कानून बनाता है। राज्य विधानमण्डल 'समवर्ती सूची' में शामिल 47 विषयों पर भी कानून बना सकता है, किन्तु इसके द्वारा निर्मित कानून एवं संसद द्वारा निर्मित कानून में टकराव होर पर संसद का कानून ही मान्य होता है। साधारण विधेयक अर्थात गैर-धन विधेयक राज्य विधानमण्डल के किसी भी सदर में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि कोई साधारण विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किया जाता है, तो उसका विधान सभा द्वारा पारित होना अनिवार्य है। जब विधेयक विधान सभा द्वारा पारित हो जाने के बाद विधान परिषद में भेजा जाता है, तो अनुच्छेद 197(1) के अनुसार विधान परिषद उसको अधिक-से-अधिक तीन महीने तक रोके रख सकती है। यदि वह उस विधेयक को पारित कर देती है, तो उसे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। यदि वह तीन महीने तक उस पर कोई निर्णय नहीं लेती है या उसको अस्वीकार कर देती है या फिर उसमें ऐसे संशोधन कर देती है, जो विधान सभा को स्वीकार न हों, और विधान सभा उसको पुनःपारित करके विधान परिषद के पास भेज देती है, तो अनुच्छेद 197 (2) के अंतर्गत विधान परिषद उस विधेयक को एक महीने तक रोकने के सिवा कुछ नहीं कर सकती है। यदि इस एक महीने की अवधि में वह उसे पारित नहीं करती है य उसमें ऐसे संशोधन कर देती है, जो विधान सभा को स्वीकार न हों, तो भी वह विधेयक राज्य विधानमण्डल के दोनों सदने द्वा पारित मान लिया जाता है, क्योंकि संविधान में राज्य विधानमण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को व्यवस्था नहीं की गयी है।

2. वित्तीय कार्य (Financial Functions)- राज्य के वित्त पर विधानमण्डल का नियन्त्रण होता है। सभी धन विधेयक एवं बजट वित्त मन्त्री के द्वारा तैयार कराए जाते हैं। कोई धन विधेयक विधान सभा में ही प्रस्तुत किया जा सकड है। जब धन विधेयक विधान सभा द्वारा पारित हो जाता है, तो यह विधान परिषद् में भेजा जाता है (अगर उस राज्य में विधान परिषद् हो)। विधान परिषद धन विधेयक को अधिक से अधिक 14 दिन तक रोक सकती है। यदि यह 14 दिन के अन्दर किसी विधेयक को अस्वीकार कर देती है या फिर 14 दिन तक इस पर कोई निर्णय नहीं लेती है, तो भी था विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है और राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। राज्यपात को स्वीकृति के बाद विधेयक कानून बन जाता है। उल्लेखनीय है कि कोई भी धन विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बिन विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है।

3. कार्यपालिका-सम्बन्धी कार्य (Executive Functions) -भारत में केन्द्र के समान राज्यों में भी संसदीय शासन प्रणाली लागू है, अतः राज्यों में भी मन्त्रि-परिषद अर्थात सरकार विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होती है। विधानमंडल के सदान कार्यपालिका के सदस्यों अर्थात मन्त्रियों से प्रश्न पूछते हैं; उनकी आलोचना करते हैं और कभी-कभी उनका बहिष्कार भी कर देते हैं। इस प्रकार ये सदस्य कार्यपालिका पर अपना दबाव बनाए रखते हैं। संसदीय प्रणाली के तहत कार्यपालिका, विधानमंडत के निचले सदन अर्थात विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होती है और विधान सभा कार्यपालिका के विरुद्ध कभी भी 'अविश्वास प्रस्ताव' पारित करके इसे पद से हटा सकती है। वस्तुतः कार्यपालिका अपने पद पर तब तक ही बनी रहती है, जब तक उसे विधान सभा का विश्वास प्राप्त होता है।

4. सवैधानिक कार्य (Constitutional Functions) - अनुच्छेद 368 के तहत संविधान में संशोधन के मामले में राज्य विधानमण्डलों को बहुत ही सीमित शक्तियाँ दी गयी हैं. क्योंकि कोई भी सशोधन विधेयक राज्य विधानमण्डल में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। केवल कुछ संशोधन विधेयकों (जिनसे राज्यों के अधिकार प्रभावित होते हैं) पर ही आधे में अधिक राज्यों के विधानमण्डलों के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।

5. चुनाव-संबंधी कार्य (Electoral Functions)- राज्य विधानमण्डल को कुछ चुनावी कार्य भी करने होते हैं। इसके चुनाव-संबंधी प्रमुख कार्य इस प्रकार है-

(i) विधान सभा के निर्वाचित सदस्य राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। (a) विधान सभा के सदस्य राज्य सभा के सदस्यों के चुनावों में भाग लेते हैं।
(ii) विधान सभा के सदस्य विधान परिषद् के एक-तिहाई सदस्यों के चुनाव में भाग लेते हैं।
(iii) विधान सभा एवं विधान परिषद् के सदस्य अपने-अपने पौठासीन अधिकारियों का चुनाव करते हैं।

6. विचार-विमर्श का मंच (Forum of Discussion)- राज्य विधानमण्डल विचार-विमर्श का एक ऐसा मंच है। जिसमें राज्य-संबंधी विभिन्न विषयों पर खुलकर चर्चा या वाद-विवाद किया जाता है। इससे स्वस्थ्य जनमत का निर्माण होता है।

स्थिति (Position)- राज्य विधानमण्डल का अपना महत्त्व है। यह 'राज्य सूची' में दिए गए सभी विषयों पर कानून बनाता है और वित्त पर प्रभावी नियन्त्रण रखता है। संसदीय प्रणाली के अनुसार राज्य विधानमण्डल का राज्य सरकार (कार्यपालिका) पर पूरा नियन्त्रण होता है, क्योंकि सरकार अपने पद पर तब तक बनी रहती है, जब तक कि उसको विधानमण्डल के निम्न सदन अर्थात विधान सभा का समर्थन प्राप्त होता है। इस दृष्टि से राज्य की शासन-प्रणाली में राज्य विधानमण्डल का महत्वूपर्ण स्थान है, किन्तु दलीय प्रणाली के चलते अब उलटे राज्य सरकार राज्य विधानमण्डल को नियन्त्रित करने लगी है। जब तक सत्तारूद दल का विधान सभा में स्पष्ट बहुमत होता है. तब तक सरकार विधान सभा को नियन्त्रित करती रहती है, लेकिन जब सरकार विधान सभा में अल्पमत में आ जाती है या वह विधान सभा का विश्वास खो बैठती है. तो उसका पतन हो जाता है।

विधान परिषद का गठन या समाप्ति (Formation or Abolition of Legislative Council)

संविधान के अनुच्छेद 169 में विधान परिषद का गठन एवं समाप्ति की व्यवस्था की गयी है। इसी कारण देश में विधान परिषदों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है। इस अनुच्छेद के अनुसार किसी राज्य की विधानसभा विशेष बहुमत अर्थात उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत और कुल सदस्यों के स्पष्ट बहुमत से प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति के लिए संसद से अनुरोध कर सकती है और संसद उसके अनुरोध पर साधारण बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति के लिए कानून बना सकती है। वह विधान सभा के अनुरोध को स्वीकार भी कर सकती है और नहीं भी कर सकती है। इसी आधार पर 1969 में पंजाब एवं पश्चिम बंगाल की विधान परिषदें समाप्त कर दी गयी थीं।

आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद् की पुनःस्थापना (Revival of Andhra Pradesh Legislative Council)- आन्ध्र प्रदेश विधान परिषद् समाप्ति अधिनियम 1985 के द्वारा आन्ध्र प्रदेश की विधान परिषद समाप्त कर दी गयी थी। लेकिन 2005 में आन्ध्र प्रदेश की विधान सभा ने विधान परिषद की स्थापना के लिए निर्धारित बहुमत से एक प्रस्ताव पारित करके संसद के पास भेज दिया था। इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए संसद ने दिसम्बर 2005 में इस आशय का विधेयक पारित करके राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया था। इस विधेयक को 7 फरवरी 2007 को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने के उपरान्त विधान परिषद के लिए मार्च 2007 में चुनाव हुए थे। वर्तमान में आंध्र प्रदेश में विधान परिषद कार्यरत है।

तमिल नाडु में विधान परिषद् की पुनःस्थापना के लिए प्रयास (Effort for Revival of Legislative Council in Tamil Nadu) - तमिल नाडु विधान परिषद समाप्ति अधिनियम, 1986, के अन्तर्गत अगस्त, 1986 में तमिल नाडु विधान परिषद समाप्त कर दी गयी थी। किन्तु अप्रैल, 2010 में तमिल नाडु विधान सभा ने निर्धारित बहुमत से प्रस्ताव पारित करके संसद के पास भेजा था, जिसमें राज्य में विधान परिषद की फिर से स्थापना की माँग की गयी थी। संसद ने मई, 2010 को इस प्रस्ताव

पर अपनी स्वीकृति दे दी थी। तमिल नाडु में 78-सदस्यीय विधान परिषद का गठन किया जाना था और इसके लिए अक्टूबर, 2010 में मतदाता सूचियाँ भी तैयार कर ली गयी थीं, किन्तु इसी बीच तमिल नाडु में सत्ता-परिवर्तन हो गया और नव-नियुक्त मुख्य मन्त्री जयललिता ने विधान परिषद का गठन न किए जाने की घोषणा कर डाली। इस प्रकार तमिल नाडु में विधान परिषद के गठन का मामला अधर में लटक गया। इसी क्रम में पश्चिम बंगाल विधान सभा ने 6 जुलाई, 2021 को विधान परिषद की स्थापना के विषय में प्रस्ताव पारित करके, इसको संसद के पास भेज दिया।

स्पष्ट है कि विधान परिषद की स्थापना या समाप्ति एक राजनीतिक मामला है, क्योंकि राज्य की विधान सभाएं एव संसद अपनी-अपनों सुविधानुसार इस विषय पर निर्णय लेती हैं। यही कारण है कि लम्बे अरसे बाद भी मध्य प्रदेश में विधान परिषद की स्थापना नहीं हो पायी है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न (IMPORTANT QUESTIONS)

1. राज्य विधानमण्डल की रचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। powers and functions of State Legislature) (Describe the composition,

2. राज्य विधानमण्डल की शक्तियों, कार्यों एवं स्थिति पर प्रकाश डलिए। (Throw light on the powers, functions and position of State Legislature.)

3 . कोई विधान सभा मन्त्रि-परिषद पर किस प्रकार नियन्त्रण रखती है ? (How does a Legislative Assembly control the Council of Ministers?

4. विधान सभा एवं विधान परिषद की शक्तियों की तुलना कीजिए? (Make a comparision between the powers of Legislative Assembly and those of Legislative Council)

5. राज्य विधान सभा की रचना, शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। (Discuss the composition, powers and functions of State Legislative Assembly.)